जगद्गुरु श्री कृपालु जी महाराज

रजिस्टर्ड ट्रेड मार्क
प्रेम-रस

839
80 प्रे

प्रेम रस मदिरा

मोहन लाल

गोलोकधाम, रजिस्टर्ड नं० १८१६/vii २०३३५

वृन्दावनविहारिणे नमः

प्रेम-रस-मदिरा

भाग १

लेखक
श्रीमात्पदवाक्यप्रमाणपारावारीण, वेदमार्गप्रतिष्ठापनाचार्य, निखिलदर्शन-समन्वयाचार्य, सनातनवैदिकधर्मप्रतिष्ठापनसत्संप्रदायपरमाचार्य, भक्तियोगरसावतार, भगवदनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्री १००८
स्वामी कृपालुजी महाराज

(सर्वाधिकार पूर्णतया सुरक्षित)

भावार्थ लेखिका
पद्मादेवी

—प्रकाशक—
भक्तियोग प्रकाशन
पोस्ट—मनगढ़, जिला—प्रतापगढ़

चतुर्थ संस्करण]

संवत् २०४१ वि०
सन् १९८४ ई०

मूल्य ११ रुपया मात्र

प्रकाशक :

भक्तियोग प्रकाशन

पोस्ट-मनगढ़, जिला-प्रतापगढ़

८९१.४३१
व८८७ क्र

Memorial Library
Kathmandu, Nepal
W.N. 873

नवीन संस्करण, १९८६

मुद्रक :

भार्गव आफसेट

२, राधानगर, दारागंज,

इलाहाबाद-६

प्राक्कथन

प्रेम-रस-रसिक पाठक समुदाय—

वैसे तो ग्रन्थ के नाम से ग्रन्थ के विषय का आशय स्पष्ट है तथापि शिष्टाचार के नाते कुछ लिखना अनिवार्य-सा है।

समस्त वेदों, शास्त्रों, पुराणों आदि के द्वारा यह निर्विवाद सिद्ध सिद्धान्त है कि प्रत्येक जीव का चरम लक्ष्य आनन्द प्राप्ति ही है और वह आनन्द या रस, स्वयं रसिक शिरोमणि परब्रह्म श्रीकृष्ण ही है; यथा "रसो वै स:" "आनन्दोब्रह्मे ति व्यजानात्", आदि।

किन्तु उन आनन्दस्वरूप, आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र को भी क्रीतदास बना लेने वाला उन्हीं का परमांतरंग प्रेम तत्व है तथा यही अन्तिम तत्व है। उसी प्रेमरस को लक्ष्य बनाकर यह "प्रेम-रस-मदिरा" ग्रन्थ लिखा गया है। किन्तु इसमें, मुझे कितनी सफलता प्राप्त हुई है, इसका निर्णय पाठक स्वयं करें।

प्रेम-रस-मदिरा के १००८ पदों को चार भागों में विभक्त किया गया है। अत: प्रस्तुत प्रथम भाग में २५२ पद संकलित हैं।

सम्पूर्ण पुस्तक को १५ माधुरियों में विभक्त किया गया है, जो इस प्रकार हैं—१. सद्गुरु-माधुरी, २. रसिया-माधुरी, ३. सिद्धान्त-माधुरी, ४. दैन्य-माधुरी, ५. मुरली-माधुरी, ६. बाललीला-माधुरी, ७. मिलन-माधुरी, ८. श्रीकृष्ण-माधुरी, ९. श्रीराधा-माधुरी, १०. महासखी-माधुरी, ११. लीला-माधुरी, १२. युगल-माधुरी, १३. निकुंज-माधुरी, १४. मान-माधुरी और १५. विरह-माधुरी।

प्रत्येक माधुरी के नाम से उसके पदों का विषय स्पष्ट हो जाता है। ये समस्त माधुरियाँ प्रेम-रस-मधुरिमा से ओत-प्रोत हैं। इनमें श्रीराधाकृष्ण की

विभिन्न लीलाओं का वर्णन, वेद-शास्त्र-पुराणादि-सम्मत एवं अनेक महापुरुषों की वाणियों के मतानुसार, किया गया है। सगुण-साकार-ब्रह्म की सरस लीलाओं का रस वैलक्षण्य विशेषरूपेण श्रीकृष्णावतार में ही हुआ है। अतः इन सरस पदों का आधार उसी अवतार की लीलाएँ हैं। यदि किसी महानुभाव को कुछ भी सन्तोष या लाभ न प्राप्त हो तो वे इसे 'स्वान्तः सुखाय' ही समझ कर सन्तोष कर लेंगे।

कृपालु

शरद् पूर्णिमा वि० सं० २०३४
बुधवार, दिनांक २६-१०-७७

'प्रेम-रस-मदिरा' ग्रन्थ पर भारत के प्रख्यात कवियों तथा विद्वानों द्वारा प्रेषित कतिपय सम्मतियाँ—

* *

जीवन-सागर की तरंगों में बहता हुआ मानव सुख-दुःख के थपेड़े खाता हुआ, एक ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है, जब उसे अपने से महान् एक शक्ति का बोध होता है। फूलों की मुसकान, सरिता का कल-कल प्रवाह, ऊषा की राग-रंजित शोभा, सागर की विशालता, सभी में उसे उस परम-शक्ति की अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है। किन्तु वह उसे अपने और भी निकट देखना चाहता है, उसकी इस इच्छा की पूर्ति उस परम-शक्ति के साकार रूप की उपासना द्वारा होती है। वह अपना तादात्म्य भगवान् राम के सेवकों के साथ करना चाहता हैं, वह वृन्दावन-विहारी घनश्याम के साथ गोप-गोपी के रूप में गोलोक-वास करने की कामना करता है जहाँ रसावतार कृष्ण की चिरन्तन रासलीला होती है। उसे उस भूमि की रज के कण-कण में राधा-श्याम की उपस्थिति अनुभव होती है, और वह प्रेम-विभोर होकर उनकी लीला का गान करने लगता है। उन्हें वह अपने से अलग नहीं समझता, अपना सखा समझता है, जो अकारण ही उस पर कृपा करते हैं; आवश्यकता केवल इस बात की है कि वह वासना-रहित अपने आप को समर्पित कर दे। श्रीकृष्ण और स्वामिनी राधा की कृपा से उसके सभी कष्ट भयानक स्वप्न की तरह समाप्त हो जावेंगे और लोकोत्तर-आनन्द की प्राप्ति होगी।

संत कृपालुदास आज के इस वैज्ञानिक-युग की विभीषिकाओं के बीच भी प्रेम-साधना करते हुए अपने स्वर सूर, मीरा, रसखान की स्वर-लहरी के साथ, मिलाते हैं। उनकी वाणी में सूर का माधुर्य, मीरा की आत्म-वेदना, रसखान की सरलता और सरसता है। प्रेम-रस की मदिरा से ओत-प्रोत उनके पद स्वामिनी श्रीराधा और श्रीकृष्ण के मद से हमें पूर्ण कर देते हैं।

'प्रेम-रस-मदिरा' के तेरह कलश अपनी-अपनी विशेष मादकता लिए हुए हैं; चौदहवें कलश में शेष मदिरा है। उस मदिरा में माधुर्य है, बेसुध कर देने की क्षमता है, जिसके पान के अनन्तर केवल एक ही भावना रह जाती है; वह है युगल का प्रेम, हमारी सभी कामनायें समाप्त हो जाती हैं, और हम श्रीराधा और श्रीकृष्ण के अनुराग सागर में डूब जाते हैं।

सर्वप्रथम इसमें 'रसिया-माधुरी' की छवि है। श्री कृपालुदास जी के लिए ब्रज और बरसाने का आनन्द कोटि-ब्रह्मानन्द से भी अधिक है। वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण ने लीला की थी और आज भी वह धाम उनसे पूर्ण है। रसिक-वर मुरलीधर के प्रेम की प्राप्ति के समान किस वस्तु की इच्छा की जाय। वृन्दावन की वह भूमि धन्य है, जहाँ नित्य जीवन-मुक्त सनकादिक परमहंस भी शुक, मयूर, चक्रवाक आदि पक्षियों के रूप में रहते हैं, जहाँ शरद और वसन्त का नित्य-विलास है, वह रसिकों की राजधानी है जिसकी महारानी स्वामिनी राधिका जी हैं। जिस रस की एक बूंद भी वेदों को प्राप्त न हो सकी, उसे श्रीराधा और श्रीकृष्ण ने मिलकर ब्रज की गलियों में प्रवाहित किया।

श्रीराधा और कृष्ण के प्रेभ की प्राप्ति के लिए किसी दुष्कर साधना की आवश्यकता नहीं है। प्रेमतत्व का सार श्रीराधे का नाम पुकारने से ही उनका सहज-प्रेम प्राप्त हो सकता है। श्यामसुन्दर भी उनके चरणों को वार-बार अपने हृदय और नेत्र से लगाकर आत्म-विभोर हो जाते हैं। सांसारिक विषय वासना से अपना मन हटाकर श्री राधाकृष्ण के प्रेम में लगाने से मानव के समस्त कष्टों का अन्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त न किसी जप-तप की आवश्यकता है, न योगयाग की।

जीव का कलुष उसकी मनोव्यथा का कारण बनता है। अपनी दीनता की उसे अनुभूति होती है, आराध्य की महानता देखकर वह आर्त-वाणी में उन्हें पुकारकर उनसे सहायता की याचना करता है और उसे प्राप्त भी करता है।

भक्त को श्रीराधा-कृष्ण की सभी लीलाएँ समान रूप से प्रिय हैं। उनके रास में तो उसे लोकोत्तरानन्द की प्राप्ति होती ही है, बाल-लीला के गान से भी उसका अनुरागी-चित्त सन्तोष की प्राप्ति करता है और श्याम-रस में स्नात होकर निरन्तर उज्ज्वल होता जाता है। मान-लीला, महासखी (ललिता), गान आदि में भी उसे ब्रह्मानन्द-सा ही रस मिलता है; किन्तु विरह में उसकी समस्त वेदना शब्दों के माध्यम से साकार हो उठती है। श्रीराधाकृष्ण के वियोग में उसके समस्त सुखों का अन्त हो जाता है, उसे जो-जो वस्तुएँ आनंद देती थीं, प्रिय के अभाव में वे ही उसकी वेदना को और भी अधिक तीव्र करती हैं। प्रेम-रस-मदिरा में सबसे अधिक पद 'विरह-माधुरी' के निरूपण में ही हुए हैं।

आज के इस युग में प्रेम-रस-मदिरा का महत्व अत्यधिक है। विज्ञान नित्य अपने क्षेत्र का विस्तार करता जा रहा है और उसकी प्रवृत्ति निर्माण की अपेक्षा संहार की ओर अधिक है। उसके विकास ने हमारी भावनाओं के क्षेत्र पर काफी प्रभाव डाला है, साथ ही उसने भौतिकवाद और बुद्धिवाद को ही आश्रय दिया है। ऐसे समय में हमारी संवेदना और मानवीय गुणों के विकास के लिए यह आवश्यक है कि हमारे हृदय में दैवी प्रवृत्तियों का संचरण हो, जिससे युग की विभीषिका का हम सरलता से सामना कर सकते हैं।

संत कृपालुदास की प्रस्तुत कृति सूर, मीरा, नन्ददास, रसखान, भारतेन्दु आदि समर्थ कवियों की कला कृतियों की परम्परा का एक नवीन पुष्प है, जिसका हास-विलास लोकोत्तर-भावों की सफल अभिव्यक्ति से ओत-प्रोत है। उनके पदों की कोमल पदावली संगीतात्मक है, उसमें अनुभूति की तीव्रता है और उसकी कुशल अभिव्यक्ति भी है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रस्तुत ग्रन्थ का एक विशेष स्थान होगा, क्योंकि इस काल में इस प्रकार की अन्य कोई सफल रचना नहीं हुई है। मेरा विश्वास है कि प्रेम-रस-मदिरा श्रीराधाकृष्ण के अनुरागियों के अन्तर का, आत्मपरिष्कार कर, प्रत्येक भक्त की जिह्वा पर उतर आवेगी।

'प्रेम-रस-मदिरा' के तेरह कलश अपनी-अपनी विशेष मादकता लिए हुए हैं; चौदहवें कलश में शेष मदिरा है। उस मदिरा में माधुर्य है, बेसुध कर देने की क्षमता है, जिसके पान के अनन्तर केवल एक ही भावना रह जाती है, वह है युगल का प्रेम, हमारी सभी कामनायें समाप्त हो जाती हैं, और हम श्रीराधा और श्रीकृष्ण के अनुराग सागर में डूब जाते हैं।

सर्वप्रथम इसमें 'रसिया-माधुरी' की छवि है। श्री कृपालुदास जी के लिए ब्रज और बरसाने का आनन्द कोटि-ब्रह्मानन्द से भी अधिक है। वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण ने लीला की थी और आज भी वह धाम उनसे पूर्ण है। रसिक-वर मुरलीधर के प्रेम की प्राप्ति के समान किस वस्तु की इच्छा की जाय। वृन्दावन् की वह भूमि धन्य है, जहाँ नित्य जीवन-मुक्त सनकादिक परमहंस भी शुक, मयूर, चक्रवाक आदि पक्षियों के रूप में रहते हैं, जहाँ शरद् और वसन्त का नित्य-विलास है, वह रसिकों की राजधानी है जिसकी महारानी स्वामिनी राधिका जी हैं। जिस रस की एक बूंद भी वेदों को प्राप्त न हो सकी, उसे श्रीराधा और श्रीकृष्ण ने मिलकर ब्रज की गलियों में प्रवाहित किया।

श्रीराधा और कृष्ण के प्रेभ की प्राप्ति के लिए किसी दुष्कर साधना की आवश्यकता नहीं है। प्रेमतत्व का सार श्रीराधे का नाम पुकारने से ही उनका सहज-प्रेम प्राप्त हो सकता है। श्यामसुन्दर भी उनके चरणों को बार-बार अपने हृदय और नेत्र से लगाकर आत्म-विभोर हो जाते हैं। सांसारिक विषय वासना से अपना मन हटाकर श्री राधाकृष्ण के प्रेम में लगाने से मानव के समस्त कष्टों का अन्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त न किसी जप-तप की आवश्यकता है, न योगयाग की।

जीव का कलुष उसकी मनोव्यथा का कारण बनता है। अपनी दीनता की उसे अनुभूति होती है, आराध्य की महानता देखकर वह आर्त-वाणी में उन्हें पुकारकर उनसे सहायता की याचना करता है और उसे प्राप्त भी करता है।

भक्त को श्रीराधा-कृष्ण की सभी लीलाएँ समान रूप से प्रिय हैं। उनके रास में तो उसे लोकोत्तरानन्द की प्राप्ति होती ही है, बाल-लीला के गान से भी उसका अनुरागी-चित्त सन्तोष की प्राप्ति करता है और श्याम-रस में स्नात होकर निरन्तर उज्ज्वल होता जाता है। मान-लीला, महासखी (ललिता), गान आदि में भी उसे ब्रह्मानन्द-सा ही रस मिलता है; किन्तु विरह में उसकी समस्त वेदना शब्दों के माध्यम से साकार हो उठती है। श्रीराधाकृष्ण के वियोग में उसके समस्त सुखों का अन्त हो जाता है, उसे जो-जो वस्तुएँ आनंद देती थीं, प्रिय के अभाव में वे ही उसकी वेदना को और भी अधिक तीव्र करती हैं। प्रेम-रस-मदिरा में सबसे अधिक पद 'विरह-माधुरी' के निरूपण में ही हुए हैं।

आज के इस युग में प्रेम-रस-मदिरा का महत्व अत्यधिक है। विज्ञान नित्य अपने क्षेत्र का विस्तार करता जा रहा है और उसकी प्रवृत्ति निर्माण की अपेक्षा संहार की ओर अधिक है। उसके विकास ने हमारी भावनाओं के क्षेत्र पर काफी प्रभाव डाला है, साथ ही उसने भौतिकवाद और बुद्धिवाद को ही आश्रय दिया है। ऐसे समय में हमारी संवेदना और मानवीय गुणों के विकास के लिए यह आवश्यक है कि हमारे हृदय में दैवी प्रवृत्तियों का संचरण हो, जिससे युग की विभीषिका का हम सरलता से सामना कर सकते हैं।

संत कृपालुदास की प्रस्तुत कृति सूर, मीरा, नन्ददास, रसखान, भारतेन्दु आदि समर्थ कवियों की कला कृतियों की परम्परा का एक नवीन पुष्प है, जिसका हास-विलास लोकोत्तर-भावों की सफल अभिव्यक्ति से ओत-प्रोत है। उनके पदों की कोमल पदावली संगीतात्मक है, उसमें अनुभूति की तीव्रता है और उसकी कुशल अभिव्यक्ति भी है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रस्तुत ग्रन्थ का एक विशेष स्थान होगा, क्योंकि इस काल में इस प्रकार की अन्य कोई सफल रचना नहीं हुई है। मेरा विश्वास है कि प्रेम-रस-मदिरा श्रीराधाकृष्ण के अनुरागियों के अन्तर का, आत्मपरिष्कार कर, प्रत्येक भक्त की जिह्वा पर उतर आवेगी।

युगल-लीला की एक सुन्दर झांकी देखिये—

बलि जाऊँ निकुंज बिहार की।
नागरि श्री वृषभानुकुंवरि अरु, नागर नन्दकुमार की।
जनु धरि रूप अनूप प्रगट भई, मूरति छवि सिंगार की।
करत केलि भुजमेलि विविध विधि, बरसावत रस धार की।
संग नवेलिन, अति अलबेलिन, हेलिन जूथ अपार की।
पियत 'कृपालु' रसिक निशिवासर, सुधा प्रेम-रस-सार की।

रामकुमार वर्मा
एम० ए०, पी० एच० डी०
रीडर, हिन्दी डिपार्टमेन्ट
प्रयाग विश्वविद्यालय।

साकेत।
२०-९-१९५५

(डाक्टर रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय)

पुस्तक मुझे कृपापूर्वक प्राप्त हुई और मैंने उसे आद्योपान्त बड़े चाव-भाव से पढ़ा। प्रत्येक पद से महात्मा का महत्व झलक रहा है। सारे पदों, शब्दों में प्रेमात्मक भक्ति की पावन धारा वह रही है। क्यों न हो महात्माओं की ही पुनीत रचनाएँ इस प्रकार की पदावलियाँ व्यक्त करने में सक्षम होती हैं। यों तो प्रायः सामान्य कवि प्रेम और भक्ति पर लिखा ही करते हैं; किन्तु इस प्रकार लिखना कि उससे भक्ति-प्रेमरस संचरित हो, केवल उन्हीं पवित्रात्माओं और भावानुभूत सहृदयों का काम है जिनमें वस्तुतः प्रेम और भक्ति का सत्य स्वरूप प्रकाशित होता है। प्रेम और भक्ति पर लिखा तो प्रायः जाता है और बहुत लिखा जाता है, किन्तु उसमें सत्यता और शुद्धता का यथेष्टांश प्रायः बहुत ही कम रहता है। मुझे हर्ष है कि यह रचना हिन्दी-साहित्य-सेवियों को श्री कृपालु दास जी की कृपा से प्राप्त हुई है।

इधर की ओर तो महात्माओं की दिव्य रचनायें प्राप्त ही नहीं हो रही हैं, कदाचित् महात्मा लोग रचना कार्य से विरक्त हो रहे हैं—अथवा रचना कार्य करते हैं किन्तु प्रकाश में उसे नहीं लाते।

अतीवोत्साह और प्रसन्नता की बात है कि आपने इस अमूल्य रचना को प्रकाशित कर मार्ग खोलने का सत्कार्य, जो साधु-जनों के लिए स्वभावजन्य है, किया है।

सारी रचना ब्रजभाषा में है। भाषा अपने स्वाभाविक माधुर्य, मार्दव और मांजुल्य के साथ और भी अधिक मधुर हो रही है। उसमें स्वाभाविकता, सरसता, सरलता और सुबोधता है। ब्रजभाषा का रूप इसमें निखरा हुआ और साहित्योचित है। पर्याप्त रूप में वह परिमार्जित है। व्यंजकता अपनी रंजकता के साथ पूर्ण रूप में है।

भावानुभूति की सर्वत्र अभिव्यक्ति बड़े ही मार्मिक और स्वाभाविक ढंग से हुई है। कथन या भाव-प्रकाशन में यथार्थता, अकृत्रिमता और स्पष्टता है; काव्य की भी कला है और हृदयाभिव्यक्ति भी है।

कहीं-कहीं भाषा कुछ अन्य प्रान्तीय बोलियों से भी प्रभावित-सी है—किन्तु विशुद्धता यथेष्ट रूप में है।

कृष्ण-काव्य-परम्परा का निर्वाह करते हुए दैन्य, धाम जैसे कुछ भाव और भी लिये गये है। यहाँ इतना ही कहना अलम् है कि रचना रचना के ही लिये नहीं, प्रेम और भक्ति के सभी प्रमुख भाव भुक्तभोगी के से रक्खे गये है। यहाँ आलोचना का स्थानावसर नहीं, केवल कहना यह है कि रचनाएँ सभी रमणीय हैं—रसिक जन इनका रसास्वादन करके ही देख सकेंगे—हम तो केवल उनका ध्यानाकर्षण मात्र कर रहे हैं।

रचनाओं का भावार्थ देते हुए उन पर पर्याप्त प्रकाश डालकर उनकी रम्यता भावगम्यतादि की ओर सांकेतिक निर्देश करने का स्तुत्यकार्य लेखिका के द्वारा सुन्दरता के साथ किया गया है। मैं संक्षेप में यही कहता हूं कि इस युग में जब खड़ी बोली की गीत शैली में लिखी गई रचनाएँ अनाथा रूप में चल रही हैं, इस प्रकार की ब्रजभाषा में भक्ति-प्रेम-परम्परा-पालिनी रम्य रचना और वह भी एक महात्मा के करों से आकर वास्तव में अत्यादरणीय, अवलोकनीय और प्रशंसनीय है।

(श्री सुमित्रानन्दनजी पंत, डायरेक्टर, आल इण्डिया रेडियो, हिन्दी प्रोग्राम)

श्री महात्मा कृपालुदास जी की 'प्रेम-रस-मदिरा' पान करने का अवसर मिला। श्री राधाकृष्ण की मधुर भक्ति से प्लावित इन सरस पदों में परम भक्त श्री कृपालुदास जी ने मानव हृदय की पवित्रतम भावना को वाणी देकर रसिक भक्तजनों का बड़ा उपकार किया है। कृपालुदास जी की स्वान्तः सुखाय

वाणी में माधुर्य का सहज प्रवाह है। उनका प्रत्येक छन्द रस के समुद्र की भाँति भक्ति की तन्मयता से तरंगित है। भगवत् प्राप्ति के उपायों में जप-तप आदि के कठिन नियमों से मुक्त श्री राधाकृष्ण के चरणों के प्रति सहज प्रीति ही सब में सुलभ, सरस तथा श्रेष्ठ उपाय है। उसी पथ की ओर प्रेरित करने की शक्ति श्री कृपालुदास जी के इन अनमोल गीतों में है जिन्हें पढ़कर हृदय स्वतः ही आनन्द, प्रेम, मधुरिमा के दिव्य रस में निमज्जित हो उठता है। श्री राधा-कृष्ण की मधुर लीला का अनेक रूपों से इन सुललित पदों में वर्णन कर भक्त प्रवर कवि ने जैसे अमूर्त ब्रह्मानन्द को मूर्तिमान कर दिया है। आशा है भक्तगण 'प्रेम-रस-मदिरा' की दिव्य चेतना का पान कर अपना जीवन सफल बनायेंगे।

⁂

(डा० ब्रजेश्वर वर्मा, एम० ए०, डी० फिल०, हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय)

श्री कृपालुदास जी की पुस्तक 'प्रेम-रस-मदिरा' में उस वातावरण की पुनरावृत्ति मिलती है जो सोलहवीं शताब्दी में सूरदास, हरिवंश और हरिदास जैसे भक्तों ने निर्मित किया था। 'प्रेम-रस-मदिरा' की अनेक पंक्तियाँ ज्यों की त्यों जैसे सूरदास और हरिवंश के पदों से ली गई हैं। ऐसा नहीं है लेखक ने इन्हें वहाँ से उठा लिया हो, वरन् कारण यह है कि लेखक भक्त कवियों की रचनाओं और उनके भक्तिभाव में इतना लीन हो गया है कि उसकी समस्त मानसिक प्रक्रिया और उसका परिणाम, उसकी पद-रचना उन्हीं का अनुसरण करती है। वर्तमान युग के अनुकूल विद्वान् भक्त कवि ने कृष्ण-भक्ति के समन्वयात्मक रूप को ग्रहण किया है। राधा-कृष्ण-भक्ति का प्रचारक होते हुए भी उसमें साम्प्रदायिक कट्टरता नहीं मिलती। भक्ति धर्म में ज्ञान और कर्म की भी स्वीकृति है, जो युग के अनुकूल है। 'प्रेम-रस-मदिरा' भक्तों को प्रेमोन्मत्त बनाकर ब्रह्मानन्द देने में समर्थ हो सकेगी, ऐसी मैं कल्पना कर सकता हूँ।

⁂

(श्री हृदयनारायन पाँडे, 'हृदयेश' साहित्य अलंकार, सभापति आचार्य श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी परिषद्—कानपुर)

मैंने संत श्री कृपालुदास जी कृत 'प्रेम-रस-मदिरा' गीत-संग्रह का अवलोकन किया, प्रेमरस से भीगे सराबोर हृदय की मधुर मदिर झनकारें इसमें प्रतिध्वनित हो रही हैं। सरल भाषा, मधुर भाव और गेय-पदावली की त्रिवेणी में मैंने अवगाहन किया; मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ, विशेषत:—

'श्यास तोरी मुरली ने जुलुम करी', 'सखी तोहे काउ की डीठ लगी', 'श्री राधे तोहे कौन बलाय लगी', 'सखी हम इन पाँचन ते हारे', 'कुँवरि तू कितै गई डरपाय', 'प्राण हित पावस-ग्रीषम धायो', 'धीर अब कैसेहु नाहिं बँधात', और 'सखी ये कारे सब ठगहार' शीर्षक पद वहुत पसन्द आये। श्री राधा-कृष्ण के चरण-कमलानुरागियों से इसे पान करने की अनुशंसा करता हूँ।

⁂

(डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, एम० ए०, डी० एस-सी० (लन्दन) वाइस चान्सलर, सागर विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश)

'प्रेम-रस-मदिरा' नामक पुस्तक प्राप्त हुई, पढ़ी। बड़ा आनन्द हुआ। जिस तन्मयता से आपने उसे लिखा है, लगा कि आपने भक्ति के तत्व को समझ लिया है और सचमुच आप प्रेम-रस में अवगाहन करने वाले भक्त जीव हैं। आशा है कि पुस्तक को हिन्दी-साहित्य-प्रेमियों से, विशेष, भक्ति-काव्य के मर्मज्ञों से उचित सम्मान प्राप्त होगा। आपकी कविता में जान है, और वह सूर, नन्ददास आदि भक्त कवियों की परम्परा की रक्षा करती है।

अनुक्रमणी

क्रमांक	ध्रुव पंक्ति	पृष्ठ सं०
१.	अँखियाँ झर-झर लागीं बरसन ।····	१८९-१९०
२.	अजिर महँ, बिहर ब्रह्म साकार ।	७४
३.	अपनी ओर टुक हेरो री किशोरी राधे ।	४५-४६
४.	अरि देखो आली लाली को फुलन सिंगार ।	१९१
५.	अरी कोउ उर उरझी सुरझावे ।	१९०-१९१
६.	अरी तोय कहा भयो ? 'कछु नाहिं' ।	१९१-१९२
७.	अरे मन ! अवसर बीत्यो जात ।	२१
८.	अरे मन ! मूरख निपट गंवार ।	२२
९.	अरे मन ! मोहन सों बचि रहियो ।	१९२-१९३
१०.	अरे मन ! सुनु इक अटपट बात ।	२२-२३
११.	अरे मन ! सुनु गुरु-तत्व विचार ।	क
१२.	अरे मन ! हरि हरिजन नहिं दोय ।	२३-२४
१३.	अली ! मोरि मुरली कौन लई ।	७४-७५
१४.	अली ! यह मुरली बुरी बलाय ।	७१
१५.	अशरण-शरण ! शरण तव आयो ।	५०
१६.	अस रस महँ मोहिं सद्गुरु बोरी ।	क
१७.	अहो हरि ! अब न बिरह सहि जात ।	१९३
१८.	अहो हरि ! अब हौं गयो अघाय ।	४७-४८
१९.	अहो हरि ! ओहू दिन कब अइहैं ।	४६
२०.	अहो हरि ! कब ते द्वार खड़ो ।	४७
२१.	अहो हरि ! सोचहु पाछिल बात।	४९
२२.	अहो हरि ! हौं पातक अवतार ।	४८-४९

क्रमांक	ध्रुव पंक्ति	पृष्ठ सं०
२३.	आजु निकुंज मंजु बिच पिउ को, प्यारी …।	१-४
२४.	आजु मन देखहुँ शक्ति तिहार ।	२४-२५
२५.	आजु लखि ललिहिं गई बलिहार ।	१६२-१६३
२६.	अजु सखि ! ह्वै गये नैना चार ।	१०८
२७.	इकली जनि जइयो कहुँ गोरी ।	१०९-११०
२८.	इन्दुलेखा सखियन गल हार ।	१४२
२९.	उरहनो सुनि-सुनि खीझी माय ।	७५-७७
३०.	ऊधो ! कहियो हरि समुझाय ।	१९४
३१.	ऊधो तुम अज्ञान निधान ।	१९४-१९५
३२.	उधो ! धनि तव ज्ञान प्रचार ।	१९५-१९६
३३.	उधो ! धन्य तुम्हारो ज्ञान ।	१९६-१९७
३४.	ऊधो ! धन्य हमारो भाग ।	१९७
३५.	ऊधो ! भली करी तुम आये ।	१९७-१९८
३६.	ऊधो ! हम जानति सब बात ।	१९८-१९९
३७.	ऊधो ! हरि सों कहियो जाय ।	१९९-२००
३८.	कछू सखि ! कै गयो मोपै आज ।	११०-१११
३९.	कबैं कहिं मैया ! मोहिं बुलाय ।	७७-७८
४०.	करिय पिय ! मोहि भँवरा ब्रज मांहि ।	५१
४१.	करो जनि मन ! मनमानी काम ।	२५
४२.	कहत हम खरी-खरी कछु बात	२५-२६
४३.	कहुँ देखे आली ! ललित त्रिभंगीलाल ।	१२२
४४.	कहो हरि ! हम, तुमते कछु थोर ।	५१-५२
४५.	कान्ह कछु कै गयो टोना री ।	१११
४६.	कान्ह की बात रही अब कान ।	२००-२०१
४७.	कान्ह को पकर्‌यो हलधर कान ।	७८-७९
४८.	किशोरी ! तोरे चरनन की बलि जाऊँ ।	१३१-१३२

क्रमांक	ध्रुव पंक्ति	पृष्ठ सं०
४९.	किशोरी ! मोरी अब न लगाओ बार ।	५२-५३
५०.	किशोरी ! मोरी सुनिय नेकु इक बात ।	५३
५१.	कुंज बिच विहरत कुंज बिहारी ।	१२३
५२.	कुँवरि ! तुम, मेरी जीवन मूरि ।	१६९
५३.	कुँवरि तू कितै गयी डरपाय ।	२०१-२०२
५४.	कुँवरि तू झूठेहि दोष लगाय ।	१७०-१७१
५५.	कुँवरि बिनु, कैसे राखूँ प्रान ?	१७१-१७२
५६.	कुँवरि बिनु, पल छिल कल न परै ।	१७२-१७३
५७.	कुँवरि बिनु, प्रीतम होत अधीर ।	१७३
५८.	को कह राधे सम गिरिधारी ?	२७
५९.	कौन हरि ! हमरो तुम्हरो नात ?	५४
६०.	खेलत श्याम संग श्याम के आँख मिचौनी···	१४७-१४८
६१.	गयो हरि मोपै जादू डार ।	११२
६२.	गहो रे मन ! श्याम चरण शरणाई ।	२७-२८
६३.	गोद हित झगरत सुन्दर श्याम ।	८१-८२
६४.	ग्वाल संग गो चारत गोपाल ।	७९-८०
६५.	ग्वाल संग, जेंवत बाल गोपाल ।	८०-८१
६६.	चंपकलता सखिन सिरमौर ।	१४२-१४३
६७.	चलन लागे ठुमुकि-ठुमुकि नंदलाल ।	८२-८३
६८.	चलीं दधि बेचन ब्रज की बाम ।	८३-८४
६९.	चलीं लली आजु छलन नंदलाल ।	१४८-१४९
७०.	छवि निधि, रस-निधि, प्रेम-सुधा निधि, राधे···	४-६
७१.	छैल भल अटपट वेष बनायो ।	१७३-१७४
७२.	जगत की बड़ी अनोखी बात ।	२८-२९
७३.	जाओ जी, न जल बिच आग लगावो ।	१७४-१७५
७४.	जयति जय जय श्री गुरु महाराज ।	ख
७४ (अ)	जयति जगद्‌गुरु गुरुवर की	(११-१२)

क्रमांक	ध्रुव पंक्ति	पृष्ठ सं०
७५.	जाउं गुरु चरण-कमल बलिहार।	ख
७६.	जियत न मरत न जिय तन भात।	२०२-२०३
७७.	जुगलवर जल बिच करत बिहार।	१४९-१५०
७८.	डगर महं झगरि लंगर करे रार।	८४-८५
७९.	ढांपि मुख कामरि रूठे लाल।	८५-८६
८०.	तजो रे मन उन सन्तन को संग।	२९-३०
८१.	तजो रे मन छन भंगुर बैराग।	३०
८२.	तुंगविद्या सखियन सिरताज।	१४३
८३.	दयामय अपनी ओर निहारो।	५४-५५
८४.	दर्शन देना नन्द दुलारे।	५५-५६
८५.	दीन की सुन लो दीनानाथ।	५८
८६.	दीनानाथ मोहिं काहे बिसारे।	५७-५८
८७.	देखु सखि अद्भुत कुंज बिहार।	१६३-१६४
८८.	देखु सखि ! झूमत आवत श्याम।	१२३-१२४
८९.	दृगपट मुकुट लटकि पै अटकि गयो।	२०३-२०४
९०.	धन धन रसिकन धन गोवर्धन ···	६-९
९१.	धन धन रसिकन धन वृन्दावन····।	९-१२
९२.	धन्य चोर-सिरमोर मोर प्रिय।	२०४-२०५
९३.	धरो मन गौर चरन को ध्यान।	३१
९४.	धरो मन ! भानुलली को ध्यान।	१३१-१३२
९५.	धरो मन युगल माधुरी ध्यान।	१५६
९६.	धूसरि धूरि भरे हरि आवत।	८६-८७
९७.	नन्द घर निरतत नन्दकुमार।	८७-८८
९८.	नन्द महर घर बजत बधाई।	८८-८९
९९.	नाथ ! मोहि कीजै दासन दास।	५९-६०
१००.	नाथ ! हौं गयो सबै विधि हार।	५८-५९

क्रमांक	ध्रुव पंक्ति	पृष्ठ सं०
१०१.	निज ब्रजधाम लेहु नन्दरानी, हम तो····	९०-९१
१०२.	निठुर मोहिं दै गयो बिरह अपार।	२०६-२०७
१०३.	निरत करे, आजु ब्रह्म साकार।	९१-९२
१०४.	पकरि गयो माखन चोरत कान्ह।	९२-९३
१०५.	पपिहरा पापी मोहिं सताय।	२०७
१०६.	पालने झूलत बाल गोपाल।	९३-९४
१०७.	पिय विनु कैसेहु जिय नहिं चैन।	२०७-२०८
१०८.	पिय बिनु पिय सों तिय बतरात।	१७५-१७६
१०९.	पिय बिनु मो कहं कछु न सुहाय।	२०८-२०९
११०.	पिया विनु प्यारिहिं विरह सताय।	१७६-१७७
१११.	पिया विनु प्यारी होति अधीर।	१७७
११२.	पिया मोहिं प्रेम-दान जनि दीजै।	३०-३१
११३.	प्यारी तोरी अरुण अधर छबि न्यारी।	१३२-१३३
११४.	प्यारी तोरी लट लटकनि पर वारी।	१३३
११५.	प्यारी तोरी वेणी लटक अति प्यारी।	१३३-१३४
११६.	प्रभुजी ! भले, बुरे हम तेरे।	६१
११७.	प्राण हित पावस ग्रीषम धायो।	२०९-११०
११८.	प्रेम-रस बरसत कुंज मझार।	१५६
११९.	बड़ो कब ह्वै है हमरो लाल।	९४-९५
१२०.	बताओ सखि कैसे धरूँ मैं धीर।	२१०
१२१.	बनायो हरि नाइन को भेष।	१५०-१५१
१२२.	बलि जाऊँ कपट चटसार की।	२११
१२३.	बलि जाऊँ निकुंज लतान की।	१६४
१२४.	बलि जाऊँ निकुंज बिहार की।	१६४-१६५
१२५.	बलि जाऊँ युगल सरकार की।	१५८
१२६.	बलि जाऊँ रसीले लाल की।	१२४

क्रमांक	ध्रुव पंक्ति	पृष्ठ सं०
१२७.	बलि जाऊँ लली वृषभानु की ।	१३४-१३५
१२८.	बलि जाऊँ लली सुकुमार की ।	१३५-१३६
१२९.	बलि जाऊँ लाड़ली लाल की ।	१५७-१५८
१३०.	बलि जाऊँ सलोने श्याम की ।	९५-९६
१३१.	बलि श्री गुरुदेव कृपाल की ।	ग
१३२.	वात इक सुनो कान्ह ! दै कान ।	१२
१३३.	बार इक आओ प्राणाधार ।	२११-२१२
१३४.	'बार' कत करति हमारिहिं बार ।	६२-६३
१३५.	वेर भई टेरत नन्दकुमार ।	६३-६४
१३६.	व्रज रस वरस रह्यो व्रजबीथिन ।	१२-१४
१३७.	ब्रह्म तुम केहि बल पर इतरात ।	३१-३२
१३८.	भ्रमर तू जनि गुन-गुन गुंजार ।	२१२-२१३
१३९.	भ्रमर तू वृथा करत मनुहार ।	२१३-२१४
१४०.	मधुर धुनि मुरलि बजावत कान्ह	७२
१४१.	मन ! तू काहे हठ पकर्यो ।	३२-३३
१४२.	मातु सुनु सांची-सांची बात ।	९६-९७
१४३.	मानिनी ! तुम्हरे उर नहिं पीर ।	१७७-१७८
१४४.	मानिनी ! बात मान तजु मान ।	१७८-१७९
१४५.	मानिनी ! मान की बान बुरी ।	१७९-१८०
१४६.	मानिनी ! मान-मान अब मान ।	१८०
१४७.	मुझ बिरहिनि को विरह सतावे ।	२१४-२१५
१४८.	मेरो मन गौर चरन अनुराग्यो ।	३३-३४
१४९.	मैं कैसी करूँ मोहिं कछू न भावे ।	२१५-२१६
१५०.	मैया री ! मैं नहिं माटी खायो ।	९७-९८
१५१.	मोहन ! मोहिं न आँख दिखायो ।	९८-९९
१५२.	मोहिं तो भरोसो है तिहारो री किशोरी राधे ।	६४

क्रमांक	ध्रुव पंक्ति	पृष्ठ सं०
१५३.	मोहि लियो, मो मन मदनगोपाल।	११३
१५४.	युगलवर झूलें कुंज मझार।	१६५-१६६
१५५.	युगलवर निरतत कुंज कुटीर।	१६६
१५६.	रंगदेवी सखियन सरनाम।	१४३-१४४
१५७.	रटो रे मन ! छिन-छिन राधे नाम।	३४
१५८.	रसिक-जन गये फोरि सिर हार।	३४-३५
१५९.	रसिकवर नागर नन्दकुमार।	१२५-१२६
१६०.	रहो रे मन ! गौर चरन लव लाई।	३५-३६
१६१.	राधे ! तोरे अरुन चरन पर वारी।	१३६
१६२.	राधे ! मोहि चरन कमल रज कीजै।	६५
१६३.	राधे संग श्याम खेलैं होरी।	१५१-१५२
१६४.	रूठे कान्ह मनावति माय।	९९-१००
१६५.	रेनु तनु मंडित सुन्दर श्याम।	१००-१०१
१६६.	रैन दिन तलफि रहे दोउ नैन।	२१६-२१७
१६७.	रैन दिन बिरहिन तलफत जात।	२१७
१६८.	लंगर मोते डगर चलत करे रार	१०१-१०२
१६९.	लखि रस बरसानो बरसानो।	१४-१५
१७०.	लखी मन, नवनि ते अति मृदुताई।	१८०-१८१
१७१.	लखी मैं सखि ! सुन्दर श्यामल गात।	१२६-१२७
१७२.	लखो जनि कान्ह की मुसुकान।	२१८
१७३.	लखी री आली लाली जू की झुलन बहार।	१६७-१६८
१७४.	लख्यो जग इक अचरज की बात।	३६
१७५.	लख्यो मैं इक अचरज संसार।	३७
१७६.	लगी री मोहि श्याम दृगन की चोट।	२१९
१७७.	लली-दृग-छवि लखि कवि भरमाये।	१३६-१३७

क्रमांक	ध्रुव पंक्ति	पृष्ठ सं०
१७८.	लली बिनु सब विपरीत लखात	१८१-१८२
१७९.	लली मुख उपमा देत लजाये।	१३७-१३८
१८०.	लली मुख लखि लाजत सिंगार।	१३९
१८१.	लाल को जाल भली मैं ज़ानी।	२१९-२२०
१८२.	लाल संग खेलिय हिलमिल फाग।	१५२
१८३.	लूट मोहिं लै गयो नन्दकुमार।	११३-११४
१८४.	विशाखा सखि सखियन सरदार।	१४४
१८५.	श्याम अब बेगि बचाओ जी।	२२०-२२१
१८६.	श्याम तुम रसिकन नाम लजायो।	१६८
१८७.	श्याम तोरी मुरली ने जुलुम करो।	७२-७३
१८८.	श्याम सखी अति सुघर नवेली····	१५३-१५५
१८९.	श्याम हौं कब ब्रज बसिहौं जाय।	६५-६६
१९०.	श्याम हौं योगिनि भेष बनैहों।	१८२-१८४
१९१.	श्यामा श्याम धाम वृन्दावन।	१८२-१८४
१९२.	श्यामा श्याम चरन गहु रे मन।	३७-३८
१९३.	श्रीराधे तोरे कौन बलाय लगी।	२२२
१९४.	श्रीराधे रानी अबकी लेहु अपनाय।	१८४-१८५
१९५.	श्रीराधे रानी अब जनि करियो मान।	१८५-१८६
१९६.	श्रीराधेरानी प्रेम तत्व को सार।	३८-३९
१९७.	श्रीराधेरानी लागी बुरी बलाय।	१८६
१९८.	सखिन महँ नामी चित्रा नाम।	१४५
१९९.	सखिन महँ ललिता परम प्रधान।	१४५-१४६
२००.	सखि हरि छू मन्तर सों करि गयो।	११४-११५
२०१.	सखी इक सपनो देख्यो रात।	११५-११६
२०२.	सखी कोउ देउ वैद बुलवाय।	२२२-२२३
२०३.	सखी तोय योग वियोग कि दोय।	२२३-२२४

क्रमांक	ध्रुव पंक्ति	पृष्ठ सं०
२०४.	सखी तोहि काहू की दीठि लगी ।	२२४-२२५
२०५.	सखी मन मरम न जाने कोय ।	३९
२०६.	सखी मैं गिरधर हाथ विकानी ।	११६-११७
२०७.	सखी मैं विकी आजु विनु दाम ।	११७-११८
२०८.	सखी मैं सुनी कालि इक वात ।	२२५
२०९.	सखी मैं ह्वै गयी काउ की आज ।	११८-११९
२१०.	सखी मोहि चन्द्र किरन तड़पाय ।	१०२-१०३
२११.	सखी मोहि दै जा दधि को दान ।	२२६-२२७
२१२.	सखी यह बड़ अचरज मोहिं आवत ।	२२७-२२८
२१३.	सखी ये कारे सब ठगहार ।	२३०-२३१
२१४.	सखी ये दृग न दृगन सुख पाये ।	२२८
२१५.	सखी ये सब के सब वौराये ।	१३९-१४०
२१६.	सखी शशि किरन अगिनि तनु लायो ।	२२९
२१७.	सखी सुनु इक अनहोनी बात ।	१८६-१८७
२१८.	सखी हम इन पांचन ते हारे ।	२२९-२३०
२१९.	सताये शशि सिगरी निशि हाय ।	२३१-२३२
२२०.	सदा सों सोई दुलहिन जाग ।	३९-४०
२२१.	सन्त गति मन-बुधि नाहिं समात ।	४०-४१
२२२.	सरस सुरति रस सरस सो रति रस····	१९-२०
२२३.	सांवरो जादूगर सरदार ।	११९
२२४.	सुदेवी सबै सखिन सिरमौर ।	१४६
२२५.	सुने हम समदर्शी भगवान ।	४१-४२
२२६.	सुनो मन सबै श्रुतिन को सार ।	४२
२२७.	हमारी निधि श्री वृषभानुदुलार ।	६७
२२८.	हमारी राधे अति भोरी सरकार ।	६९-७०
२२९.	हमारी राधे दीनन की रखवार ।	६६-६७

क्रमांक	ध्रुव पंक्ति	पृष्ठ सं०
२३०.	हमारी राधे रसिकन जीवनि-मूरि ।	१४०-१४१
२३१.	हमारी सुधि लीजो भानुदुलार ।	६८-६९
२३२.	हमारी, स्वामिनि राधेरानी ।	६८
२३३.	हमारे बैर परीं ब्रजबाल ।	१०३-१०५
२३४.	हमारे मन बसे युगल सरकार ।	१५८-१५९
२३५.	हमारे मन भाई भानु लली ।	४२-४३
२३६.	हमारे माई श्याम गौर दोउ आँखी ।	१५९-१६०
२३७.	हमारो अलबेलो नन्दलाल ।	१२९
२३८.	हमारो ऐसो है रखवार ।	घ
२३९.	हमारो कौन बनैगो लाल ।	१०५-१०६
२४०.	हमारो जीवनधन घनश्याम ।	२३२-२३३
२४१.	हमारो दृग अंजन नन्दलाल ।	१२८
२४२.	हमारो प्रियतम नन्दकिशोर ।	१३०
२४३.	हमारो सहज सनेही श्याम ।	२३३
२४४.	हरि, जनि मो कहं आँख दिखायो ।	१०६-१०७
२४५.	हर्यो सखि मो मन मोहन लाल ।	१२०
२४६.	हाय दई यह कैसी भई री ।	२३३-२३४
२४७.	हाय मैं कैसी करूँ जिय जाय ।	१८७-१८८
२४८.	हाय मोरा पिय बिनु जिय घबराये ।	२३४-२३५
२४९.	हाय मोहिं पिय बिनु कछु न सुहाय ।	२३५-२३६
२५०.	हाय सखि दृगन मिलाय मन लै गयो ।	१२०-१२१
२५१.	हृदय तू कुलिश कठोर लखात ।	४३-४४
२५२.	हो रसिया कस सुरति बिसारी ।	२३६-२३७

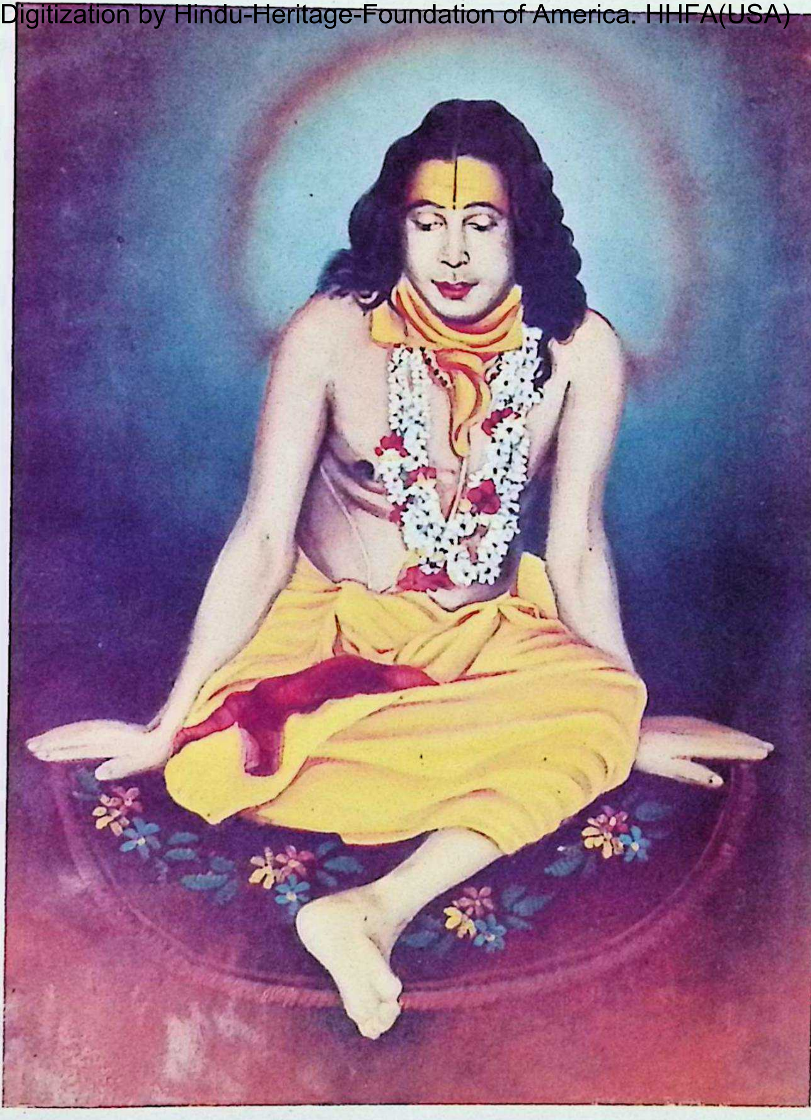

जगद्-गुरु आरती

जयति जगद्गुरु गुरुवर की, गावो मिलि आरती रसिकवर की।
गावो गावो मिलि आरती रसिकवर की ॥
गुरुपद नख मणि चन्द्रिका प्रकास।
जाके उर बसें ताके मोह तम नास।
जाके माथ नाथ तव हाथ कर वास।
ताते होय माया मोह सबहीं निरास ॥
पावे रति, मति, गति राधावर की, गावो मिलि आरती रसि०
गावो गावो मिलि आरती रसिकवर की ॥
अरे मन मूढ़ छाँड़ि नारी नर हाथ।
गुरु बिनु ब्रह्म श्याम हूँ न देंगे साथ।
कोमल 'कृपालु' बड़े कृपा-सिंधु नाथ।
पाके इन आजु तू अनाथ हो सनाथ ॥
इन्हीं के आधीन कृपा गिरिधर की, गावो मिलि आरती रसि०।
गावो गावो मिलि आरती रसिकवर की ॥
भक्तियोगरस अवतार अभिराम।
करें निगमागम समन्वय ललाम।

श्यामाश्याम नाम रूप लीला गुण धाम ।
बाँटि रहे प्रेम निष्काम बिनु दाम ।।
हो रही सफल काया नारी नर की, गावो मिलि आरती रसि० ।
गावो गावो मिलि आरती रसिकवर की ।।
लली लाल लीला का सलोना सुविलास ।
छाया दिव्य दृष्टि बीच प्रेम का प्रकास ।
वैसा ही विनोद वही मंजु मृदु हास ।
करें बस बरबस उच्च अट्टहास ।।
झूमि चलें चाल वही नटवर की, गावो मिलि आरती रसिक० ।
गावो गावो मिलि आरती रसिकवर की ।।

—:०:—

सद्गुरु-माधुरी

(१)

अस रस महँ मोंहि सद्गुरु बोरी ।
धर्म अर्थ अरु काम मोक्ष रस, सबै लगत मो फीको री ।
कहँ लौं कह बैकुण्ठ-लोक हूँ, रुचि नहिं टुक सपनेहुँ मोरी ।
इक भावत चंचल नंदनंदन, इक व्रषभानुलली भोरी ।
गिरिजा-अजा-जलधिजा-दुर्लभ, पियत रास रस ब्रजखोरी ।
कह 'कृपालु' अस सद्गुरु ऋण ते, उऋण न कोटि कल्प कोरी ।।

भावार्थ—एक शरणागत शिष्य कहता है कि मुझे मेरे सद्गुरु ने ऐसे प्रेमरस में डुबो दिया है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ उस रस के आगे फीके लगते हैं। कहाँ तक कहें वैकुण्ठ लोक का सुख भी स्वप्न में नहीं प्रिय लगता है। बस एक चंचल श्याम सुन्दर एवं भोली-भाली राधारानी ही प्रिय लगती हैं। अब मैं ब्रह्माणी, रुद्राणी, लक्ष्मी आदि से भी दुर्लभ रास-रस को ब्रज की कुंजों में निरन्तर पीता हूँ। 'कृपालु' कहते हैं कि ऐसे सद्गुरु के ऋण से मैं करोड़ों कल्प में भी उऋण नहीं हो सकता।

(२)

अरे मन सुनु गुरु-तत्व विचार ।
'गुं रौतीति गुरुः' व्युत्पत्तिहिं, गुरु मेटत अंधियार ।
यद्यपि गुरु गोविन्द दोउ इक, कह वेदादि पुकार ।
दोउन महँ कोउ मिलइ, मिलइ तब, प्रेम-सुधा-रससार ।

तदपि रहस्य सुनहु मन गुरु बिनु, मिलइ न नंदकुमार।
पै 'कृपालु' बिनु हरिहिं मिलइ गुरु, जय सद्‌गुरु सरकार॥

भावार्थ—एक तत्वज्ञ अपने मन से कहता है कि हे मन! सद्‌गुरु तत्व का महत्व सुन। जो अज्ञानान्धकार को मिटा दे वही गुरु है। यद्यपि वेदादि के अनुसार गुरु एवं हरि, दोनों एक ही हैं एवं इन दोनों में कोई भी कृपा कर दे तो प्रेम सुधारस मिल जाता है। फिर भी एक रहस्य है, वह यह कि बिना गुरु के हरि की प्राप्ति असम्भव है, जबकि बिना हरि के ही गुरु की प्राप्ति एवं प्रेमानन्द की प्राप्ति सम्भव है। ऐसे सद्‌गुरु को बार-बार नमस्कार हो।

(३)

जयति जय जय श्रीगुरु महाराज।
छके जुगलरस रास सरस जनु, मूर्तिमान रसराज।
बिनु कारण करुणाकर जाकर, अस स्वभाव भल भ्राज।
बरबस पतितन देइ प्रेमरस, अस रसिकन सरताज।
डूबत आपु डुबावत जन कहँ, प्रेमसिन्धु ब्रजराज।
हौं 'कृपालु' गुरु चरण शरण गहि, भयो धन्य जग आज॥

भावार्थ—गुरुदेव की जय हो, जय हो। प्रेमानन्द में निमग्न गुरुदेव मानों श्यामाश्याम के मूर्तिमान रसावतार ही हैं। उनका सहज स्वभाव ही है अकारण करुणा करके जीवोद्धार करना। गुरुदेव ऐसे रसिक शिरोमणि हैं कि पतितों को भी हठात् प्रेमानन्द प्रदान कर देते हैं. उस रस में स्वयं भी डूब जाते हैं साथ ही शरणागत शिष्य को भी डुबा देते हैं। 'कृपालु' कहते हैं मैं तो उन सद्‌गुरु के चरणों की शरण ग्रहण करके आज धन्य हो गया।

(४)

जाऊँ गुरु चरण-कमल बलिहार।
जिन चरनन की शरण गहत मन, पावत युगल-बिहार।

जिन चरनन को ध्यान धरत मन, मिटत जगत अँधियार।
जिन चरनन अनुकंपा जग महँ, रहत न रह संसार।
जिन चरनन रज आँजि चराचर, दीखत नंदकुमार।
यदपि 'कृपालु' भेद नहिं हरि गुरु, तदपि गुरुहिं आभार ॥

भावार्थ—मैं सद्गुरु महाराज के चरण-कमलों पर बलिहार जाता हूँ। उन चरणों की शरण ग्रहण करके मन श्यामाश्याम का रास-बिहार-रस पाता है एवं उन चरणों की कृपा से ही अज्ञानांधकार सदा को समाप्त हो जाता है। उन चरणों की धूलि को श्रद्धापूर्वक आँखों में लगाने से श्यामसुन्दर का दिव्य दर्शन प्राप्त होता है। 'कृपालु' कहते हैं कि गुरु एवं हरि में यद्यपि भेद नहीं हैं तथापि गुरु द्वारा ही हरि की प्राप्ति होने के कारण गुरु के प्रति विशेष आभार है।

(५)

बलि श्रीगुरुदेव कृपाल की।
जिनके दिव्य वचन सुनि छूटत, ग्रन्थि अविद्या-जाल की।
जिनके वरद हस्त के सन्मुख, चल न चाल कलि-काल की।
जिनके बनत बिगारि सकत नहिं, माया शक्ति गोपाल की।
जिनके युगल चरन परसत मन, पावत रति नंदलाल की।
लखत 'कृपालु' अनुग्रह गुरु के, लीला लाड़लि-लाल की ॥

भावार्थ—कृपालु गुरुदेव पर बार-बार बलिहार जाता हूँ। उनके दिव्य उपदेशों को सुनकर अविद्या की गाँठ खुल जाती है। उनकी कृपा हो जाने पर कलिकाल का प्रभाव जाता रहता है। उनके दास बन जाने पर अतिशय प्रबल मायाशक्ति बाल तक बाँका नहीं कर सकती। उनके युगल चरणों को भक्तिपूर्वक स्पर्श करने से श्यामसुन्दर का प्रेम प्राप्त होता है। 'कृपालु' कहते

हैं कि सद्गुरु की कृपा से मैं सदा श्यामाश्याम की नयी-नयी लीलाओं का रस लेता हूँ।

(६)

हमारो ऐसो है रखवार।
जैसो है नहिं सकल विश्व महँ, कोउ समरथ सरकार।
तीन लोक अनुचर रह जिन सो, विधि हरि हर करतार ॥
सोउ अनुचर श्री महाविष्णु कहँ, जो कमला भरतार।
सोउ श्रीमहाविष्णु अनुचर जिन, तिन कहं नंदकुमार।
सोउ 'कृपालु' अनुचर जिन सोइ गुरु, कह भागवत पुकार ॥

भावार्थ—हमारी रक्षा करने वाले ऐसे गुरुदेव हैं जैसा सम्पूर्ण विश्व में कोई समर्थ नहीं है। जरा सोचिये, तीनों लोकों के स्वामी ब्रह्मा, विष्णु, शंकर कहे जाते हैं। किन्तु वे तीनों भी महाविष्णु के दास हैं और फिर वे महाविष्णु भी श्यामसुन्दर के दास हैं। 'कृपालु' कहते हैं कि वे श्यामसुन्दर भी सद्गुरु के दास हैं, ऐसा उद्घोष भागवत पुराण का भी है।

—: ० :—

रसिया-माधुरी

(१)

आजु निकुंज-मंजु बिच पिउ को, प्यारी निजकर करति सिंगार ।
राखेहु श्याम ! सदा रुचि मोरी ।
आजु चाह उपजी उर थोरी ॥
तुमहिं बनाऊं नवल-किशोरी ।
जस तव रुचि तस करिय किशोरी, हौं रुचि-दास तिहार' ॥१॥
मेलि फुलेल सुघर वर-बेनी ।
सुमन-अलंकृत अति सुख-देनी ॥
जनु अलि-अवलिन अमित-नसेनी ।
शीश-फूल जनु रवि सुहाग को, प्रकट्यो है तनु धार ॥२॥
मोतिन-माँग रची मनभाई ।
मृग-मद तिलक भाल छबि छाई ॥
मध्य बिंदु-कुंकुम सरसाई ।
श्रवनन तरल-तरौना झलकत, भौं लजवत धनु-मार ॥३॥
चंचल-नयन सहज-कजरारे ।
तामें अंजन-रुचिर संवारे ॥
बेसर-सुघर नासिका धारे ।
लाल-अधर-लाली लखि लाली, उर आनन्द अपार ॥४॥

जरिन-किनार नील-पट-सारी ।
उर-अंगिया कुसुम्भि-रंगवारी ॥
दै अंचल-मुख हंसति निहारी ।
दुलरी-कुंदन, लरी-मोतियन, विविध-मणिन उर-हार ॥५॥
मणिमय-बलय-चुरी कर सोहै ।
रतन-खचित पहुँची मन मोहै ॥
पाणि-अरुणिमा मेंहदी को है ।
नगन-जटित कर-अंगुरिन मुंदरिन, चंद्र-लजावन-हार ॥६॥
नाभि-सरोवंर त्रिबलिन-धारा ।
कटि-तनु जघन-विशाल सुढारा ॥
किंकिनि-धुनि सुनि मुनि-मन-हारा ।
गज-मदमत्त लजत गति लखि लखि, मृदु पायल-झनकार ॥७॥
रंग-भीने जावक पग सोहत ।
नख-दुति कोटि-चंद्र मन मोहत ॥
नहिं अघाति प्यारी छवि जोहत ।
लखि 'कृपालु' सिंगार धाय दिये, भाल दिठौना डार ॥८॥

भावार्थ—आज सुन्दर वृन्दावनकी कुञ्ज में किशोरीजी अपने हाथों से प्रियतम श्यामसुन्दर का श्रृङ्गार कर रही हैं ।

किशोरीजी कहती हैं, 'हे श्यामसुन्दर ! तुमने सदा ही हमारी इच्छा पूर्ण की है, आज भी हमारे हृदय में एक इच्छा है कि तुम्हारा श्रृंगार करके नवलकिशोरी बनाऊँ ।' प्रियतम कहते हैं, हे किशोरीजी ! मैं तो तुम्हारी इच्छाका ही दास हूँ, अतएव तुम्हारी जैसी भी इच्छा हो करो' ॥१॥

किशोरीजी ने श्रृंगार प्रारम्भ किया, सिरमें सुगंधित तेल लगाकर क्या ही सुन्दर वेणी गूँथी है। उस वेणीमें विविध प्रकारके फूलों का श्रृंगार भी किया है। वेणीके बाल इतने सुन्दर एवं घुंघरारे हैं मानो भौरों के झुण्डोंकी अनन्त सीढ़ियाँ बनी हों। शीशफूल इस प्रकार सुशोभित हो रहा है मानों सुहाग का सूर्य मूर्तिमान शरीर धारण करके प्रकट हुआ हो ॥२॥

मोतियोंकी लरोंसे युक्त क्या ही सुन्दर माँग मनको मोहित कर रही है। ललाट में कस्तूरी के तिलक की छटा क्या ही निराली है। ललाट के बीच में कुमकुम की बिंदी क्या ही चित्तको चुराने वाली है। कानोंमें हिलता हुआ कर्णफूल चमक रहा है, एवं भौंहें कामदेवके धनुप को भी लज्जित करने वाली हैं ॥३॥

आँखें अत्यन्त चंचल एवं स्वाभाविक ही काली हैं, फिर उनमें लगा हुआ अंजन क्या ही सुन्दर लगता है। नासिकामें सुन्दर बेसर धारण किये हुए हैं, एवं उनके अधरोंकी लालिमा बरबस किशोरीजी को आनन्द-विभोर कर रही है ॥४॥

जरीके कामकी किनारी से युक्त नीली साड़ी पहने हुए हैं, एवं कुसुंभी रंगकी चोली धारण कर रखी है। किशोरीजी अपने मुख में आँचल का ओट देकर चुपकेसे हँस रही हैं। कुन्दोंकी दुलरी, मोतियों एवं अनेक प्रकार की मणियों के हार गलेमें पहने हुए हैं ॥५॥

मणियोंके कंकण तथा चूड़ी हाथमें सुशोभित हो रही हैं। रत्नोंके काम से युक्त पहुँची मनको मोहित कर रही हैं। हाथोंमें मेंहदी की लालिमा सुशोभित है। रंग-बिरंगे नगोंसे जड़ी हुई हाथों में अँगूठियाँ चन्द्रमाको भी लज्जित करने वाली हैं ॥४॥

नाभि-रूपी तालावमें तीन वलियोंरूपी धारा है। कमर पतली एवं ढालसे युक्त मोटी जांघें है। मधुर किंकिणीकी ध्वनि मुनियों के मनको भी मोहित करने वाली है। मतवाला हाथी भी उनकी चाल को देखकर लज्जित हो रहा है, एवं उनके पैरोंमें पायलकी मधुर ध्वनि हो रही है ॥७॥

पैरोंमें सुन्दर रंग की महावर लगी है, एवं नखोंकी कांतिसे करोड़ों चंद्रमा भी फीके लगते हैं। इस प्रकार श्रृंगार करके किशोरीजी रूप-माधुरीका पान करते हुए एकटक् देखती हुई भी तृप्त नहीं हुईं। "कृपालु" कहते हैं कि इस-प्रकार अनुपम श्रृङ्गार देखकर मैंने शीघ्रता से दौड़कर उनके ललाटमें एक काला टीका रूप दिठौना लगा दिया ॥८॥

(२)

छवि-निधि रस-निधि प्रेम-सुधा-निधि, राधे श्रीवृषभानुदुलार ॥
ह्लादिनि-शक्ति परमसुखखानी।
ताको सारहि 'प्रेम' बखानी ॥
प्रेम सार राधा ठकुरानी।
महाभावरूपिणि जु नवेली, अलबेली सरकार ॥१॥
मणिमय कनक-मुकुट सिर सोहै।
चारु-चंद्रिका-छवि मन मोहै ॥
तापर लर वरमुक्तन को है।
कारी, अनियारी, घुंघरारी, वेणी कुसुम-संवार ॥२॥
श्रुति-ताटंक मकर-मन-हारी।
लजत काम-धनु लखि भौं-प्यारी ॥
सुधा-गरल-मधुमय दृग वारी।
खंजन-मृग-चकोर-मद-गंजन, अंजन मन-रिझवार ॥३॥
झलमलात मुक्ताहल नासा।
बदन-विकास मंजु-मधु-हासा ॥
बदन-सदन बिधु-रदनन बासा।

कर चूरी-करपत्र, मूंदरिन-अंगुरिन सुघर सुधार ॥४॥
कंचुकि उर विलसित नव-रंगी ।
हार-मणिन-मोतिन बहुरंगी ॥
त्रिबलि-नाभि-सर कटि-तन्वंगी ।
पृथु-नितम्ब, परिधान-नीलपट, चूनरि जरिन-किनार ॥५॥
रतन-जटित पग-पायल सोहिनि ।
चाल मरालन को मन-मोहिनि ॥
लखि लजात शत-रति-पति-रोहिनि ।
आयो देखि 'कृपालु' दीन को, आदर येहि दरबार ॥६॥

भावार्थ—श्रीवृषभानुनन्दिनी राधिकाजी रूपरस एवं प्रेमसुधाकी निधि-स्वरूपा हैं ।

ह्लादिनी-शक्ति (आनन्द-ब्रह्मकी सारभूता शक्ति) परमसुखकी खान हैं । उस ह्लादिनी शक्तिके ही सारको महापुरुषोंने प्रेम कहा है, एवं उसी प्रेमकी सारभूता शक्ति ठकुरानी राधिका हैं । उनको महाभाव स्वरूपिणी भी कहते हैं ॥१॥

श्रीराधिकाजीके सिर पर मणियों से जटित स्वर्णका मुकुट सुशोभित हो रहा है, एवं मनोहर चन्द्रिका बरबस मनको मोहित करनेवाली है । उस चन्द्रिकाके ऊपर मोतियों की लड़ें क्या ही शोभा देती हैं । फूलोंसे सजाई हुई वेणीके वाल अत्यन्त ही काले, घने एवं घुंघराले हैं ॥२॥

कानोंमें मकरके मनको भी मोहित करनेवाले मनोहर झुमके झूम रहे हैं, एवं उनकी प्यारी भौंहोंको देखकर कामदेवका धनुष भी लज्जित हो रहा है । उनकी आँखें अमृत, विष, एवं मदिराके गुणोंसे युक्त हैं, एवं अंजनसे युक्त वे आंखें खंजन, हिरन तथा चकोरके भी अभिमानको चूर्ण करनेवाली हैं तथा रसिकोंको आनन्द देनेवाली हैं ॥३॥

उनकी नासिकापर झलमलाता हुआ मुक्ताहल सुशोभित हो रहा है। उनके सुन्दर मुखकी शोभा मंद मधुर मुसकानसे और भी बढ़ गई है। उनके मुखरूपी गृहमें मानों दाँत रूपी अनेकों चन्द्रमा निवास करते हैं। उनके हाथोंमें चूड़ी, करपत्र (पतरा) एवं अँगुलियोंमें मनोहर अँगूठियाँ शोभा दे रहीं हैं ॥४॥

उनके वक्षस्थलपर अति सुन्दर रंगकी चोली अलंकृत है। गले में विविध प्रकार के रङ्गवाले मणियों एवं मोतियों के हार सुशोभित हो रहे हैं। गहरे तालाबकी तरह नाभि है एवं पेट में तीन बलियाँ पड़ी हुई हैं। कमर पतली है, कमर का निचला भाग मोटा है, नीलाम्बर पहिने हुए हैं। उनकी चुँदरीमें जरीके कामकी किनारी लगी हुई है ॥५॥

उनके पैंरोंमें अनेक प्रकारके रत्नोंसे जटित पायल शोभा दे रही है। इनकी चाल राजहंसोंके मन को मोहित करने वाली है, तथा जिसको देखकर सैंकड़ों कामदेव एवं चन्द्रमा लज्जित हो रहे हैं। "कृपालु" कहते हैं कि ऐसी रूप-शृङ्गाररस-सुधा-माधुरी वृषभानुनन्दिनी के दरबारमें शरणागत दीनोंका सदा ही आदर होता है, ऐसा मैं अनुभव कर के आया हूँ ॥६॥

(३)

धन धन रसिकन-धन गोवर्धन, जाने ब्रह्म लियो बिरमाय ॥
जेहि आश्रित असंख्य बिधि, हरि, हर।
सोऊ आश्रय लिय येहि गिरिवर।
जेहि पूजति जलजा नित निज कर।
सोऊ ब्रह्म संग ब्रज-परिकर, गिरिवर पूज्यो जाय ॥१॥
श्रुति-आराध्य ब्रह्म-बनवारी।
ब्रह्माराध्या भानुदुलारी ॥
प्राण एक, पै द्वै तनु धारी।
बिहरत मंजु-निकुंज-पुंज नित, लखि कमला ललचाय ॥२॥

कोउ कर जोग, जुगुत वनबासी ।
कोउ मुक्ति-हित सेवत कासी ।।
लखि दोउन मोंहि आवति हाँसी ।
मूर्तिमान नगराज नाग तजि, बाँबी हित भरमाय ।।३।।

जहाँ वेद नित देत बुहारी ।
फिरत शंभु गोपी-तनुधारी ।।
रज याचत बिधि बने भिखारी ।
जहँ बनि दासी करति खबासी, मुक्ति, मुक्ति-हित आय ।।४।।

मरकत-मणिमय परम-प्रकासी ।
लजवत अमित-इंदु छवि-रासी ।।
लखि सिहात बैकुंठ-विलासी ।
ब्रज-मंडल-मंडन जन-रंजन, खंडन-मद सुरराय ।।५।।

पुंज-निकुंजनि-मंजुलताई ।
लखि विधि-विधिता हू सकुचाई ।
मध्य मानसी-गंग सुहाई ।
राधा-कुंड आदि की महिमा, वरनत वाणि लजाय ।।६।।

जो रस निगम 'अगम' कहि गायो ।
सो गोवर्धन-गलिन बहायो ।।
रसिक-कृपा बिनु कोउ न पायो ।
हम 'कृपालु' गिरिराज-भरोसे, निर्भय रहत सदाय ।।७।।

भावार्थ—प्रेम-रसके रसिकों का जीवनधन-स्वरूप गोवर्धनधाम बार-बार धन्य है। जिसने सच्चिदानन्द-ब्रह्म-श्रीकृष्णको भी अपने वश में कर लिया है।

जिन अनंतकोटि ब्रह्मांडनायक पूर्णतम-पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के आश्रित (सहारे) अगणित ब्रह्मा, बिष्णु, शंकर रहते हैं, उन श्रीकृष्णने भी (जब इंद्रने अभिमानवश ब्रज को डुबानेके लिए एक सप्ताह तक अविच्छिन्न वृष्टिकी थी) इसी गोवर्धन का आश्रय लिया था। जिन त्रिपाद-विभूषित भगवान् के चरणोंको महालक्ष्मी स्वयं अपने हाथोंसे पूजती हैं उन्हीं पूर्णतम पुरुषोत्तम ब्रह्म श्रीकृष्णने अपने समस्त ब्रजवासियोंके साथ इस गोवर्धनकी पूजा की थी ॥१॥

वेद, ब्रह्म-श्रीकृष्ण की उपासना करते हैं, एवं ब्रह्म-श्रीकृष्ण लीला प्रेम माधुरी में श्रीवृषभानुनन्दिनीकी उपासना करते हैं। यद्यपि सिद्धांतसे तो इन दोनों के दो शरीर होते हुये भी प्राण एक ही हैं। यह दोनों राधाकृष्ण इस गोवधनकी सुन्दर लताकुंजोंमें निरन्तर दिव्य रासविहार किया करते हैं, जिसे देखकर महालक्ष्मी भी इस रस को पाने ने लिये ललचाती है ॥२॥

संसार में कोई मुक्तिके लिए वनमें जाकर अष्टाङ्ग योगकी साधना करता है, एवं कोई काशी में देह त्याग करता है। इन दोनों ही अल्पज्ञोंको देखकर मुझे हँसी आती है। ये लोग मूर्तिमान् गोवर्धनरूपी नागको छोड़कर चारों ओर नागोंके रहने के घर (वाँबी) के लिये भटकते फिरते हैं ॥३॥

जिस गोवर्धन-धाममें चारों वेद भी झाड़ू लगाते हैं, एवं जहाँ भगवान् शंकर भी गोपी शरीर धारण करके दिव्य रास के लिए दौड़े आते हैं, एवं जिस गोवर्धन धाममें मुक्ति भी अपनी मुक्ति के लिए दासी बनकर सेवा करती है ॥४॥

जो गोवर्धन-धाम मरकत मणियों से जटित है, एवं परम प्रकाश करनेवाला है, तथा जो करोड़ों चंद्रमाकी रूप-माधुरी को लज्जित करता है, एवं जिसके माधुर्यको देखकर बैकुंठाधीश महाविष्णु भी अपने लोकके सुखको फीका समझकर संकुचित होते हैं। वह गोवर्धनधाम ब्रजवासियों का आभूषण

एवं रसिकों को आनन्द देने वाला तथा सुरपति इन्द्रके भी मद को चूर्ण करने वाला है ॥५॥

जिस गोवर्धनधाम की सुन्दर लता-कुंजोंकी सुन्दरताको देखकर ब्रह्मा की कारीगरी भी लज्जित होती है, एवं जिस गोवर्धनधामके मध्य में मानसी गंगा तथा राधाकुण्ड, कृष्णकुण्ड आदि सुशोभित हो रहे हैं। जिनके माहात्म्यको वर्णन करनेमें वाणी अयवा सरस्वती भी लज्जित होती है ॥६॥

जिस रस को वेदोंने अप्राप्य वताया है, वही इस गोवर्धनकी गलियों-गलियोंमें श्रीराधाकृष्ण द्वारा बहाया गया है, किन्तु रसिकोंकी कृपाके बिना उस रसको आजतक कोई नहीं पा सका। "कृपालु" कहते हैं कि—हम तो उस दिव्य चिन्मय गोवर्धनधामकी शरणागति के सहारे सदा ही निर्भय रहते हैं ॥७॥

(४)

धन धन रसिकन-धन वृन्दावन, जाकी महिमा वरनि न जाय ॥
निर्गुण, सगुण-ब्रह्म ते न्यारो।
कोटि ब्रह्म-सुख जा पै वारो ॥
जहँ विहरत नित प्यारी-प्यारो।
लखि सुख-तजि बैकुंठ विष्णु गये, क्षीर सिंधु सकुचाय ॥१॥
जनकादिक येहि विपिन मझारी।
केकी, कीर, कोक तनु धारी ॥
फिरत समाधि-उपाधि बिसारी।
नव-निकुंज सुख-पुंज मंजु बिच, पिय नवरस हुलसाय ॥२॥
वृन्दावन रसिकन-रजधानी।
जहं राधारानी ठकुरानी ॥
चारिहुँ मुक्ति भरति जहँ पानी।

कर मींजति ठाढ़ी कमला सी, मन ही मन पछिताय ॥३॥
माया-मुक्त सिद्ध-सन्यासी ।
जहं बनि बेलि, विटप सुखरासी ॥
लै वरदान एक अभिलासी ।
राधा-सहचरि-चरण-रेणु उड़ि, कबहूँ परै तनु आय ॥४॥
संतत शरद-बसंत-विलासी ।
विकसित नित नव-कुसुम-सुबासी ॥
गुंजत भृंग मंजु-मधु-भाषी ।
महा-प्रलयहूँ लय नहिं जाको, जहं विधि-बुधि भरमाय ॥५॥
मणिमय-दिव्य-भूमि-वर-बाँकी ।
ललित-लता-कुंजन की झाँकी ॥
लाजत लखि 'नन्दन' छवि जाकी ।
ताल-तमाल-रसाल-साल जहं, 'राधे, राधे' गाय ॥६॥
जो रस 'वेद' बिन्दु नहिं पायो ।
सो मिलि-अलिन गलिन बरसायो ॥
सोइ जान्यो जेहि रसिक जनायो ।
माया,काल न व्यापै जामें, मो "कृपालु" मन भाय ॥७॥

भावार्थ—रसिकों के जीवनधन-स्वरूप चिन्मय श्रीवृन्दावन धामको बार-बार धन्य है । उसकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है ।

निराकार-ब्रह्म एवं साकार-ब्रह्म (महाविष्णुके बैकुंठलोकका सुख) के सुखोंसे भी इस वृन्दावन का सुख निराला है । जिस सुखपर करोड़ों ब्रह्मानन्द के सुख निछावर किये जा सकते हैं । जहाँ निरंतर ही प्रिया-प्रियतम

दिव्य विहार करते हैं। जिस सुखको देखकर बैंकुंठ-नायक भी लज्जाके मारे अपने बैंकुंठ लोक को छोड़कर क्षीर-सागर में जाकर सो गये हैं ॥१॥

जिस वृन्दावन में नित्य जीवन्मुक्त सनकादिक परमहंस भी मोर, तोते एवं चकवा, चकई पक्षियों के शरीर धारण करके रहते हैं, एवं अपनी निर्विकल्प समाधिको भी इस रस का बाधक समझ कर भुला देते हैं, नवीन लताओं के कुंज में निरंतर ही नित्य नूतन ब्रज-रस माधुरीका पान करते हैं ॥२॥

वृन्दावन रसिकोंकी राजधानी है। ज़हाँ की महारानी स्वामिनी राधिका-जी हैं। जहाँ सार्ष्टि, सामीप्य, सालोक्य एवं सायुज्य ये चारों प्रकारकी मुक्तियाँ दासी बनकर पानी भरा करती हैं। जहाँ महालक्ष्मी क़ा भी प्रवेश नहीं है एवं महालक्ष्मी इस वृन्दावनके बाहर खड़ी-खड़ी हाथ मींजती रहती हैं ॥३॥

जहाँ गुणातीत, सिद्ध, संन्यासी लोग लता, वृक्ष बनकर केवल एक ही इच्छासे वरदान लेकर रहते हैं कि कभी किशोरीजीकी सखियों की चरण-धूलि उड़कर हमारे ऊपर भी पड़ जाय ॥४॥

जहाँ शरद्‌ऋतु एवं वसंतऋतु सदा ही निवास करती हैं। जहाँ नित्य नये सुगंधित फूल फूले रहते हैं। जिन फूलों पर भौंरों के झुंड मधुर वाणी में गुंजार किया करते हैं। जिस वृन्दावन धामका महाप्रलय में भी नाश नहीं होता एवं जिसकी अलौकिकता देखकर ब्रह्माकी भी बुद्धि भ्रममें पड़ जाती है ॥५॥

ज़हाँकी पृथ्वी दिव्य मणियोंसे जटित अत्यन्त ही सुन्दर है। जहाँकी लताओं के कुंजकी झाँकी अत्यन्त ही मनोहारिणी है। जिसके सौंदर्यको देख कर इन्द्रका दिव्य नंदनवन भी लज्जित होता है। जहाँ ताल, तमाल, आम्र एवं साल के वृक्ष भी निरंतर 'राधे, राधे' गाया करते हैं ॥६॥

जिस ब्रज-रस-माधुरीका एक बूंद भी वेदोंने नहीं प्राप्त कर पाया उसी रसको प्रिया-प्रियतम ने सखियों के साथ मिलकर, वृन्दावन की गलियोंमें भरपूर प्रवाहित किया, किन्तु इस रसको वही जान सकता है जिसपर रसिकोंकी

कृपा हो जाय। "कृपालु" कहते हैं कि जिस दिव्य वृन्दावन धाम में माया एवं कालका प्रवेश नहीं है, वही दिव्य वृन्दावन मेरे मन को अच्छा लगता है ॥७॥

(५)

ब्रजरस बरस रह्यो ब्रजबीथिन, ज्ञानी बिनु जाने भरमाय ॥
जेहि खोजत ज्ञानी जन लाखन ।
चारिहुँ वेदन की प्रतिशाखन ॥
हारि 'अलख' इमि लागे भाखन ।
वृन्दाविपिन सखिन अंचलपट, लिपट रह्यो सोइ धाय ॥१॥
जेहि शंकर उर-अंतर ध्यावत ।
जाको भेद वेद नहिं पावत ॥
निर्विकल्प, निर्लेप, बतावत ।
सोइ निकुंज बिच भानुलली के, चरण पलोटत जाय ॥२॥
जेहि माया-वश विश्व चराचर ।
ब्रह्म-अण्ड-नायक विधि, हरि, हर ॥
नाचत ज्यौं नट-परवश बानर ।
तेहि दै छाछ नेकु सी छोरिन, कोटिन नाच नचाय ॥३॥
जाकी भृकुटि विलास, प्रलयकर ।
जाके डर काँपत डर, थर थर ॥
नामहि जाको भव-बंधन-हर ।
ताको ऊखल बाँधि यशोदा, लै साँटी डरपाय ॥४॥

जेहि लगि जपी, तपी भरमावत ।
जोगी जोग अगिनि ज़रि जावत ॥
निज बल कृपा-कोर नहिं पावत ।
सो 'कृपालु' निज माय गोद हित, पर्‌यो धरणि बिलखाय ॥५॥

भावार्थ—व्रजकी प्रत्येक गलियों में व्रजरस वरस रहा है, किन्तु फिर भी ज्ञानी (जानने वाला) होते हुए भी, बिना जाने भटक रहा है ।

जिस ब्रह्मको लाखों आत्माराम पूर्णकाम परमहंस ज्ञानी भी चारों वेदरूपी वृक्षोंकी प्रत्येक शाखारूपी शाखाओं में अनादि काल से अनंत कालतक खोज-खोजकर हार गये एवं अंत में उन्हें यही कहना पड़ा कि 'ब्रह्म अलख है' अर्थात् उसका कोई स्वरूप नहीं है एवं उसे कोई देख भी नहीं सकता है, वही ज्ञानियोंका 'अलख' पूर्णतम पुरुषोत्तम ब्रह्म सच्चिदानंद श्रीकृष्ण बनकर वृन्दा-वनमें व्रज-गोपाङ्गनाओं के वस्त्रके अंचलमें दौड़कर अपने आप लिपट रहा है ॥१॥

जिस निर्गुण निराकार ब्रह्मका भगवान् शंकर अपने हृदयमें निरन्तर ध्यान करते हैं, एवं जिसके मर्मको न जान सकने के कारण चारों वेद भी 'नेति-नेति' (इतना ही नहीं-इतना ही नहीं) कहकर चुप हो जाते हैं, तथा वेद जिस ब्रह्मको निर्विकल्प एवं निर्लेप सिद्ध करता है, वही ब्रह्म व्रजकी निकुंजों में सविकल्प एवं लिप्त होकर वृषभानुनंदिनी राधिकाजीके चरण-कमलों को दबाता है ॥२॥

जिस ब्रह्मकी आधिभौतिक माया के अधीन अनंतकोटि ब्रह्माण्डों के सभी जड़ जंगम जीव परवश होकर रहते हैं, एवं ब्रह्माण्डोंके नायक ब्रह्मा, विष्णु, शंकर आदि भी जिसकी माया के वशीभूत होकर उसी प्रकार नाचते हैं जिस प्रकार नटके संकेत पर वन्दर नाचता है । उसी मायाधीश, परात्पर, गुणातीत परब्रह्म श्रीकृष्णाको व्रज के अहीरोंकी छोटी-छोटी छोरियाँ थोड़ी सी छाछके संकेत से करोड़ों प्रकार के नाच नचाती हैं ॥३॥

जिस पूर्णतम-पुरुषोत्तम-ब्रह्म के भृकुटी विलास (भौंहोंके मरोड़) मात्र से अनंत-कोटि-ब्रह्माण्डों का महाप्रलय हो जाता है, एवं जिसके भयसे भय (यम-राज) भी भयभीत होता है। जिसका नाम ही आवागमन के पंचक्लेशके बन्धन को नष्ट कर देता है। उसी निरपेक्ष कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ [स्वेच्छापूर्ण कार्य करने, न करने, एवं उल्टा करनेमें समर्थ] सर्वशक्तिमान् भगवान् को यशोदाजी ऊखल में बाँधकर, एवं हाथ में छोटा सा पतला डंडा लेकर मारनेके लिए डरा रही हैं ॥४॥

इन्द्रिय, मन, बुद्धिसे परे स्वयं ज्ञातास्वरूप जिस निर्विशेष ब्रह्म की प्राप्ति के लिए असंख्यों जप एवं तप करनेवाले असंख्यों वर्षों तक भटका करते हैं, एवं जिसके लिए योगी लोग अष्टांग योग करनेके पश्चात् योगकी अग्निमें जलकर भस्म हो जाते हैं, किन्तु फिर भी भगवान् की किंचित भी कृपाको साधन बल से नहीं प्राप्त कर पाते हैं। "कृपालु" कहते हैं कि वही पूर्णतम पुरुषोत्तम ब्रह्म श्रीकृष्ण अपनी माता यशोदाकी गोद में जाने के लिए पृथ्वी पर लोटता हुआ अत्यन्त व्याकुलतापूर्वक रो रहा है। जिसका अभिप्राय यह है कि मैया मुझे गोदमें ले ले ॥५॥

(६)

लखि रस-बरसानो बरसानो, कोटिन ब्रह्मानंद लजाय ॥
महाभावरूपिणि श्रीराधे।
प्रेम-सुधा-निधि, रूप-अगाधे ॥
पूरण-ब्रह्म जाहि आराधे।
श्रीवृषभानु भूप घर प्रगटीं, प्रेम-दान हित आय ॥१॥
जेहि, "अज, अलख" निगम नित गायो।
सो ब्रज, नंद-गोप घर जायो ॥
जेहि विधि, हरि, हर खोजि न पायो।

सोऊ ब्रह्म, स्वामिनिहिं खोजत, गहवर गलियन माय ।।२।।
पीरी पोखर, प्रेम-सरोवर ।
लता-कुंज-गहवर, भानूखर ।।
मालिनि,योगिनि, रूप विविध धर ।
ब्रह्म रिझावत, निज स्वामिनि को, उर आनंद न समाय ।।३।
"हाहा" खात, निहोरत सखियन ।
नेकु दिखाउ ललिहिं इन अँखियन ।।
मधु पिलाउ छवि दृग मधु-मखियन ।
ललितहिं चरण पलोटत लखि लखि, लाल नैन ललचाय ।।४।।
राधा-रंग-महल के माहीं ।
रज झारत निज मुकुट सदा हीं ।।
कृपा मनावत हू डरपाहीं ।
नित 'कृपालु' मानिनिहिं मनावत, ब्रह्म दृगन झरि लाय ।।५।।

भावार्थ—प्रेम-रस वरसानेवाले वरसाना धामको देखकर करोड़ों ब्रह्मानंद के सुख भी फीके पड़ जाते हैं !

प्रेमकी परमसार-तत्त्व महाभावस्वरूपा एवं प्रेमामृतकी उद्गम स्थान श्रीवृषभानुनंदिनी राधिका हैं। जिनकी पूर्णतम-पुरुषोत्तम-ब्रह्म श्रीकृष्ण भी उपासना करते हैं। वेही राधिकाजी बरसाने में श्रीवृषभानु राजाके घरमें अधिकारियों को प्रेमदान करनेके लिए अवतीर्ण हुई हैं ।।१।।

जिस ब्रह्मको वेदों में अजन्मा एवं अलख बताया है, वही ब्रह्म ब्रज में अहीर नन्दके घरमें श्रीकृष्ण रूप से प्रकट हुआ है। जिस सगुण साकर ब्रह्मको ब्रह्मा, विष्णु, शंकर भी तपश्चर्या आदि साधनोंके भरोसे नहीं प्राप्त कर सके वही ब्रह्म श्रीकृष्ण आज अपनी स्वामिनी राधिकाजीको पाने के लिए अत्यन्त आतुर होकर बरसाने के गह्वरवनकी गलियों में ढूंढ़ रहा है ।।२।।

उस बरसाने में पीरी-पोखर, प्रेम-सरोवर, वृषभानु-कुण्ड एवं गह्वरवनकी लताओंके कुंज आदि अनुपम स्थान हैं। जहाँ ब्रह्म श्रीकृष्ण मालिन, योगिन आदि विविध रूप धारण करके एवं आनंद-विभोर होकर नित्य ही अपनी स्वामिनी राधिकाजीको प्रसन्न करते हैं ॥३॥

जिस बरसानेमें ब्रह्म श्रीकृष्ण अपनी स्वामिनीके दर्शनार्थ उनकी सखियोंका निहोरा करते हैं, एवं हाहा खाते हुए कहते हैं, 'अरी सखियो ! इन आँखोंको स्वामिनीजी के दर्शन करा दो, मेरी आँखें किशोरीजी के छविरूपी मधुके लिए मधु-मक्खियोंके समान हैं।' वे ही ब्रह्म श्रीकृष्ण ललिताको किशोरीजी के चरणों को दबाते हुए देखकर ललचाते हैं ॥४॥

राधिकाजीके रंगमहलों में जाकर वे ही ब्रह्म श्रीकृष्ण अपने मुकुटसे सदा ही महल की धूल साफ करते हैं, एवं उनकी कृपा माँगनेमें भी भयभीत होते हैं। "कृपालु" कहते हैं कि मानिनी राधिकाजीको मनाते हुए वे ही ब्रह्म श्रीकृष्ण अपनी आँखों से आँसुओं की झड़ी लगाते हैं ॥५॥

(७)

सरस-सुरति-रस सरस सो रति-रस,बरसत वृंदा-विपिन मझार।
मनिमय-धरनि तरनि-तनया-तट ।
सुखद-शरद-निशि-शशि बंशी-वट ॥
गहि रस-रीति-प्रीति अति अटपट ।
रिझवत निज आराध्य राधिकहिं, परम-रसिक-रिझवार ॥१॥
लखि उत्फुल्ल-मल्लिका-शोभा ।
पूरण-काम श्याम मन लोभा ॥
उपजी रास-वासना-गोभा ।
साजि साज-ऋतुराज आज तहं, आयो जूझन मार ॥२॥

राम-कृपा दण्डक-बन बासिन ।
ह्लादिनि-शक्ति जानकी-दासिन ॥
वेद-ऋचान रास-अभिलाषिन ।
अपर सखिन गोलोक-निवासिनि, बनि आईं ब्रजनार ॥३॥
मधुर-मुरलि-धुनि सुनि अभिरामिनि ।
उठि धाईं सिगरी ब्रजभामिनि ॥
श्याम-गौर बिच जनु घन-दामिनि ।
प्रति-गोपिन-संग श्याम सुशोभित, लिए अमित-तनु धार ॥४॥
गावत विविध-राग लै तानन ।
'स रे ग म प ध नि, सुरन संधानन ॥
देव बधूटिन लखति विमानन ।
बाजत झाँझ, मृदंग, चंग, ढप, सबै सुरन इकसार ॥५॥
लटकि-लटकि कटि-तट लचकावत ।
पटकि-पटकि झटपट पग धावत ॥
मटकि-मटकि तट-भृकुटि नचावत ।
हस्तक-मस्तक भेद दिखावत, सखियन जूथ अपार ॥६॥
प्रेमावेश केश, पट, भूषन ।
स्रस्त व्यस्त रतिरस-पीयूषन ॥
दिव्य-विलास करत जित-दूषन ।
चरनन-नूपुर, कर कंकन, कटि किंकिनि-धुनि-झनकार ॥७॥
कोक-कलानि प्रवीन-सुभायन

रास-विलास-लास मन-भायन ।।
विविध हास-परिहास-परायन ।
खेलत निज-प्रतिबिंब सखिन संग, लघु बालक अनुहार ।।८।।
खग, मृगादि, 'जंगम' गति भूले ।
'जड़हु' भये चेतन चित-फूले ।।
झूलत सबै प्रेम-रस-झूले ।
ह्वै रस-बस बरबस शशि मोह्यो, 'मारहु' मानी हार ।।९।।
धनि निकुंज, धनि श्रीवृंदावन ।
धनि-धनि रसिक रवनि गोपी-जन ।।
धनि रासेश्वरि स्वामिनि-मोहन ।
धनि 'कृपालु' गोपी दासिन जिन, निरखत रास-विहार ।।१०।।

भावार्थ—वृन्दावन में सुरति-रस (ज्ञानियों की निर्विकल्प-समाधिका आनंद) से भी अत्यन्त मधुर रति-रस (प्रेमका अंतरंग रास-विहार रस) बरस रहा है।

वंशीवटपर यमुनाके किनारे जहाँकी पृथ्वी दिव्य चिन्मय मणियों से जटित है, एवं अत्यन्त ही आनन्द देनेवाला शरत्पूर्णिमाका चंद्रमा खिला हुआ है। रसिकोंकी अत्यन्त ही अटपटी प्रीतिकी रीतिके अनुसार, रसिक शिरोमणि ब्रह्म श्रीकृष्ण अपनी आराध्या स्वामिनी राधिकाजीको प्रसन्न कर रहे हैं ।।१।।

जब श्रीकृष्णने देखा कि शरद्काल में भी बसंतकालीन मल्लिका आदि पुष्प खिले हुए हैं, तब आत्माराम (अपने आपमें रमण करनेवाले), पूर्णकाम (इच्छाओंसे रहित) श्रीकृष्णका भी मन मुग्ध हो गया, एवं महारासकी इच्छा करनेका अंकुर उत्पन्न हुआ। श्रीकृष्ण ने समझ लिया कि आज कामदेव बसंत-ऋतु के साज को सजाकर मुझसे युद्ध करने आया है ।।२।।

दण्डकारण्यके मुनियोंने रामावतारमें रामके द्वारा वरदान पाकर.

ह्लादिनी-शक्ति सीताकी दासियों ने जनकपुरमें वरदान पाकर तथा वेदकी ऋचाओं ने भी घोर तपस्या करके वरदान पाकर, एकमात्र महारासकी इच्छासे, साधन-सिद्धा रूप ब्रज में आ-आकर गोपियों का शरीर धारण किया। इसके अतिरिक्त नित्यसिद्धा गोलोकमें रहने वाली गोपियोंने भी अवतार लिया ॥३॥

मनमोहनकी विश्वविमोहिनी मुरलीकी मधुर तान सुनकर समस्त ब्रज-गोपियाँ दौड़कर श्यामसुन्दर के पास आ गईं एवं रासमंडल बना लिया। रास-मंडल के मध्य में राधाकृष्ण बिजली एवं बादलकी तरह सुशोभित हुए। श्रीकृष्णने अघटित-घटना-पटीयसी योगमायाके द्वारा प्रत्येक गोपियों के साथ अपना एक-एक स्वरूप धारण कर लिया। इस प्रकार दो गोपियोंके बीचमें एक श्रीकृष्ण एवं दो श्रीकृष्ण के बीच में एक गोपी ॥४॥

मल्हार आदि विविध रागोंको स रे ग म प ध नि इन सात स्वरों में बांधकर अनेकानेक तान अलाप द्वारा गायन आरम्भ किया। इस रस को देवाङ्गनाएँ अपने-अपने विमानों में बैठकर देख रही हैं। गायनके स्वरके अनुसार ही झाँझ, मृदंग, चंग, ढप आदि वाद्यों का सुर मिलाकर वादन होने लगा ॥५॥

पाँच अंगों से प्रमुख नृत्य, सखियों का झुण्ड झुक-झुककर बार-बार कमर लचका रहा है। पैरों के ठुमके लगा-लगाकर घूमता हुआ मंडल आगेको बढ़ता हुआ जा रहा है। मंडल प्रेम में विभोर होकर भौंहों को नचाते हुए कटाक्षपात कर रहा है, एवं हाथके तथा मस्तक के नृत्य-सम्बन्धी सांकेतिक हाव-भाव दिखा रहा है ॥६॥

इस प्रकार प्रेमके आवेशके कारण नृत्य करते-करते प्रेमामृत-रस-माधुरी में उन्मत्त गोपियोंके वस्त्र, गहने एवं सिरके बाल शिथिल होकर इधर-उधर बिखर गये हैं। दोषरहित दिव्य विलास करते हुए गोपियोंके पैरोंमें नूपुर, हाथ में कंकण एवं कमर में करधनीकी मधुर ध्वनि हो रही है ॥७॥

प्रेमकी अंतरंग कलाओंमें निपुणतम-रसिकशिरोमणि श्रीकृष्ण अनेक प्रकार के दिव्य हास्य एवं परिहाससे युक्त होकर दिव्य रास-विलास करते हुए

गोपियों के साथ उसी प्रकार खेल रहे हैं, जिस प्रकार छोटासा अबोध बालक अपनी परछाईं से खेलता है। (बालक रूप श्रीकृष्ण हैं एवं परछाईं गोपियां हैं) ॥८॥

इस अलौकिक रासविहारको देखकर जंगम जीव (चलने-फिरने वाले जीव) हरिण, पक्षी आदि निर्निमेष दृष्टि से देखते हुए अपना चलना भूल गये अर्थात् पत्थर की मूर्तिकी तरह एकटक देखते ही रह गये, तथा जड़ जीव (न चलने-वाले पत्थर आदि) पिघल-पिघलकर बहने लगे। इस प्रकार आनन्द में विभोर होकर सभी प्रेमरसमें उन्मत्त होकर झूमने लगे। चन्द्रमा भी इस महारास माधुरी को देखकर हठात् मुग्ध हो गया, एवं बिना युद्ध किये ही कामदेव भी पराजित होकर विशुद्ध प्रेम में विभोर हो गया ॥९॥

वह सेवाकुंज एवं श्रीवृन्दावन-धाम धन्य है। रसिक-शिरोमणि गोपियों को भी धन्य है, एवं रास की स्वामिनी किशोरीजी तथा श्रीकृष्ण भी धन्य हैं। "कृपालु" कहते हैं कि उन सखियों के अनुगत वे महापुरुष भी धन्य हैं, जो युगलसरकार की कृपा से निरन्तर ही उपर्युक्त रास-विहार को देखते रहते हैं ॥१०॥

सिद्धान्त-माधुरी

(१)

अरे मन ! अवसर बीत्यो जात ।
काल-कवल-बस बिधि, हरि, हर सब, तोरी कहा बिसात ।
लहि पारस नर-तनु सुर-दुर्लभ, गुंजन-हित भटकात ।
बधिर, अंध जिमि सुनत न देखत, रहत विषय मदमात ।
"अब करिहौं" "अब करिहौं" इमि कहि, रहि जैहौ पछितात ।
होत 'कृपालु' प्रलय पल महं तू, केहि बल पर इतरात ॥

भावार्थ—अरे मन ! यह स्वर्ण अवसर बीता जा रहा है। तेरी तो गिनती ही क्या है; ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर आदि सभी सीमित आयु वाले काल के ग्रास बन जाते हैं। पारसके समान देवताओं के लिए भी दुर्लभ मनुष्य-शरीर को पाकर भी तू अज्ञानवश सांसारिक विषयरूपी घुंघचीके बनावटी सौंदर्यपर मुग्ध हो रहा है। बहिरे एवं अंधेके समान तू न तो सत्पुरुषोंकी बातें ही सुनता है और न स्वयं ही संसार के मिथ्यापन को देखता है। विषयोंमें ही मतवाला हो रहा है ! 'अब इसके बाद करूँगा, अब इसके बाद करूँगा' ऐसा बार-बार कहते हुए रह जाएगा, अन्त में पछताना ही पल्ले पड़ेगा। "कृपालु" कहते हैं कि एक क्षणमें तो प्राण महाप्रयाण (मृत्यु) कर जाते हैं, तू बार-बार भविष्यके लिए क्यों छोड़ देता है। उस मृत्युको रोकनेके लिए तेरे पास शक्ति ही क्या है, जिसपर इतरा रहा है ?

(२)

अरे मन ! मूरख निपट गंवार ।
बिगरत आपु बिगारत मो कहं, नेकु न करत विचार ।
कोटि-कल्प भटक्यौ ज्यौं सूकर, विष्ठा-विषय मझार ।
बिनु सेवा जहं पाइय मेवा, गयो न तेहि दरबार ।
दोउ कर-कमल पसारि निहारति, तोंहि वृषभानुदुलार ।
अस अवसर, नर-देह सुदुर्लभ, मिलत न बारम्बार ।
साधन बिनुंहि "कृपालु" द्रवत जो, को अस सरल उदार ॥

भावार्थ—हे मन ! तू वास्तव में अत्यन्त ही मूर्ख एवं नासमझ है । तू आप भी अपना नाश कर रहा है, साथ ही मेरा भी नाश कर रहा है । तू इस विषय में थोड़ासा भी विचार नहीं करता । तुझे सांसारिक विषय-वासनारूप विष्ठा में शूकर की तरह भटकते हुए करोड़ों कल्प बीत गये, फिर भी कुछ भी न पा सका । जिन किशोरीजी के दरबार में बिना साधन के ही तू सब कुछ पा जाता, उस दरबार में तू हठवश कभी न गया । तुझे वृषभानुनंदिनी अपनी दोनों कोमल भुजाओं को पसारे परख रहीं है । ऐसा अवसर एवं देवदुर्लभ मानव-देह तुझे बार-बार न मिल सकेगा । "कृपालु" कहते हैं कि सबसे बड़ी बात तो यह है कि वृषभानुनंदिनीके सिवा ऐसा सरल एवं उदार चित्तवाला और तुझे कौन मिलेगा जो बिना साधनके ही शरणागत को सदा के लिए अपना बना ले ।

(३)

अरे मन ! सुनु इक अटपट बात ।
दृगवारेन को नेकु न दीखत, अचरज यदपि जनात ।
बिनु देखे दृगवन्त, अंध बिच, अन्तर कछु न लखात ।

जिमि गजदन्त विलोकन ही को, खाय न कछुक सकात ।
तिमि साधन-दृग बल हरि हेरत, पाव न, पचि मरि जात ।
लोकहुँ माँहि 'कृपालु' न दीखत, बिनु प्रकाश कहुँ रात ।।

भावार्थ—हे मन ! एक अनोखी बात सुन । आंखवालों को भी बिल्कुल नहीं दिखाई पड़ता, यद्यपि यह बात आश्चर्यजनक है फिर भी सत्य है । बिना दिखाई पड़ने वाली आंखों एवं अंधों में अन्तरही क्या है ? जिस प्रकार हाथीके दांत जो बाहर निकले रहते हैं, वे एकमात्र देखने के ही होते हैं, उनसे हाथी कुछ भी नहीं खा सकता । उसी प्रकारसे योगी, तपस्वी आदि भी अपने साधनरूपी नेत्रों के बलसे श्रीकृष्ण को खोजते रहते हैं, किंतु करोड़ों कल्पोंमें भी नहीं प्राप्त कर पाते । 'अलख, अलख' कहकर हारकर बैठ जाते हैं । ''कृपालु'' कहते हैं कि आश्चर्य का विषय तो यह होता है कि लोकमें भी आँखोंवालों को बिना प्रकाश के रातमें कुछभी नहीं दिखाई पड़ता । 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः'
(उपनिषद्)

(४)

अरे मन ! हरि, हरिजन नहिं दोय ।
जहँ हरि, तहं हरिजन, जहं हरिजन, तहं हरि बिलग न होय ।
दोऊ रहत दास दोउन को, भरम न जाने कोय ।
दोउ कर पर-उपकार निरंतर, पतितन-मन-मल धोय ।
जल, तरंग दोउ नाम उपाधी, वस्तुतस्तु इक सोय ।
पै 'कृपालु' हरिजन रूपी हरि, ही सों स्वारथ तोय ।।

भावार्थ—हे मन ! श्रीकृष्ण एवं उनके भक्त वस्तुतः पृथक् नहीं हैं । जहाँ श्रीकृष्ण रहते हैं वहीं भक्त रहते हैं, एवं जहाँ भक्त रहते हैं वहीं श्रीकृष्ण रहते हैं । ये दोनों एक दूसरे से पृथक् किसी भी काल में हो ही नहीं सकते ।
''मयि ते तेषु चाप्यहम्'' (गीता)

श्रीकृष्ण एवं उनके भक्त एक दूसरे को प्रसन्न करते हुए एक दूसरे के भक्त बने रहते हैं। इस रहस्य को बड़े-बड़े विद्वान् भी नहीं समझ पाते हैं। दोनों ही निरन्तर परोपकार की भावना से सांसारिक पतित जीवों के मन के महान् से महान् पापों को धोया करते हैं। जैसे जल एवं तरंग ये दोनों नाम औपाधिक रूप से ही हैं, वास्तव में दोनों ही नाम एक ही वस्तु के हैं। "कृपालु" कहते हैं कि—यद्यपि दोनों एक हैं फिर भी तुझे तो भक्तरूपी भगवान् से ही काम है। भगवान रूपी भक्त तो भक्ति प्राप्त होने के बाद ही काम आयेंगे।

(५)

आजु मन ! देखहुँ शक्ति तिहार।
ठग्यो मोंहि जुग-जुग ते याते, हौ पूरे ठगहार।
मोंहि ठगि नहि कछु धन पायो रह, टोटो येहि व्यापार।
ढूंढ्यौ हौं इक बनिक ठगन को, जो अति सरल उदार।
धन बड़ प्रेम, धाम बरसानो, नाम जु भानुदुलार।
बिनु श्रम निज अभीष्ट धन पैंहौ, जैहौ जो इक बार।
चतुर 'कृपालु' नारदी विद्या, जानत यदपि गँवार।।

भावार्थ—रे मन ! आज देखता हूँ तुझमें कितनी शक्ति है। तूने मुझे करोड़ों युगों से सदा ही ठगा है, अतएव तुम ठगनेमें पूर्ण विशारद हो, किन्तु बार-बार मुझे ठगकर भी तुम दरिद्र ही बने रहे। तुम्हें कुछ भी सुख न प्राप्त हो सका। आज मैं तुमसे मैत्रीभाव से एक बात कहता हूँ जो तुम्हारे हित की है। मैंने तुम्हारे ठगने के लिए एक वहुत बड़े सेठ का पता लगा लिया है, जो अत्यन्त सरल एवं भोला-भाला है। जिसके पास निष्काम-प्रेम-रूपी अमूल्य धन प्राप्त होगा, जिसकी तुम खोज में हो। उस सेठका गाँव बरसाना है, एवं उसका नाम वृषभानुदुलारी है। यदि तुम एकबार भी मेरी राय मानकर वहाँ चले जाओ तो बिना परिश्रमके अपना अभीष्ट प्रेम-धन, सुख और शांति, जिसके

दास हैं, पा जाओगे। "कृपालु" अपने लिए कहते हैं कि यद्यपि हम गँवार हैं, फिर भी भिड़ानेवाली नारदी विद्या में बहुत ही चतुर हैं। तात्पर्य यह है कि जब मेरे बहकावे में आकर मन किशोरीजी के दरबार में चला जायगा तब मैं कृतार्थ हो ही जाऊँगा।

(६)

करो जनि मन ! मनमानी काम।
विषयन हाथ अनादि-काल ते, बिके रहे बिनु-दाम।
आयो लखि, दुःख लख चौरासी, पायो नहिं विश्राम।
अंधहुँ लगे ठेह बारेक, पग, धरत सोचि तेहि ठाम।
पै तू अंध जात हठ तेहि मग, अधाधुंध अविराम।
जो 'कृपालु' बीती बीती अब, सुमरिय श्यामा-श्याम॥

भावार्थ—अरे मन ! मूर्खतावश मनमानी कार्य मत कर। देख तू अनादि कालसे अकारण ही सांसारिक विषय वासनाओं का दास बना रहा तथा चौरासी लाख योनियों के अनन्त दुःखोंका भी अनुभव करके देख लिया कि कहीं भी सुख और शांति नहीं है। अरे मन ! अन्धे को भी जब एक बार ठोकर लग जाती है तब वह उस जगह बड़ी सावधानीके साथ पैर रखता है, पर तू ऐसा मूर्ख अन्धा है कि हठवश निरन्तर बड़ी तेजी के साथ उसी मार्ग में चलता है। इस प्रकार अनन्त बार ठोकरें खाकर भी सांसारिक विषयों से विरक्त नहीं होता। "कृपालु" कहते हैं कि जो कुछ अब तक हुआ उसे भूल जा, एवं अब भी श्यामा-श्यामकी शरण होकर उनका निरन्तर स्मरण कर।

(७)

कहत हम खरी-खरी कछु बात।
बुरो न मानिय साधक-जन कछु, सोचिय, समुझिय तात।

कण्ठी-तिलक धारि वैष्णव बनि, गणिकनि राखत नात ।
सबहिं योग-वाशिष्ठ सुनावत, ममता-मद बलकात ।
करत अनन्त शिष्य, पै इन्द्रिन, शिष्य रहत दिन रात ।
रसिकन लखि जरि जात मंद-मति, विषयनि सों बतरात ।
महारास-रस भेद बतावत, जहं बिधि-बुधि बौरात ।
निज कहँ कहत 'कृपालु' दीन पै, रोम रोम मद मात ॥

भावार्थ—साधना अवस्थामें कंचन, कामिनी एवं कीर्तिके चक्कर में पड़ जानेवाले, लोकरंजनका ही लक्ष्य-मात्र रखनेवाले साधको ! हमारी निम्नलिखित स्पष्ट हितकी भावना से कही हुई बातों का बुरा न मानना । क्योंकि हम कुछ स्पष्ट बातें कहने जा रहे हैं । इसको निष्पक्ष होकर एकान्त में सोचने समझनेका प्रयत्न करना । ऐसे दंभी, कंठी पहिनकर एवं तिलक लगाकर वैष्णव बनने का दावा रखते हुए भी, वेश्याओं से सम्बन्ध रखते हैं । चार-अक्षर पढ़ लेने के कारण सबको योगवासिष्ठ नामक ग्रंथ जिसमें ब्रह्म का ज्ञान लिखा है, जिसका अधिकारी साधन-चतुष्टय-सम्पन्न ही होता है, सुनाया करते हैं और स्वयं सांसारिक जीवोंकी आसक्ति में बंधे हैं । वे दंभी यों तो कान फूंक-फूंककर अनन्तानन्त चेले बनाते हैं, पर स्वयं अपनी ही इन्द्रियों के निरन्तर चेले बने रहते हैं, वास्तविक महापुरुषों को देखकर वे दंभी लोग मूर्खतावश जलने लगते हैं, उनके पास तक जाना पसन्द नहीं करते, दूर से ही निंदा किया करते हैं किंतु स्वयं विषयीजनों से बातें एवं उनकी प्रशंसाएं किया करते हैं । जिस संसार का प्रतिक्षण अनुभव हो रहा है फिर भी उससे वैराग्य नहीं हो पाता । किन्तु ऐसी अवस्था वाले भी वे दम्भी, ब्रह्मा आदिकी बुद्धि से भी अतीत, अपने ही कोटिवाले नारकी जीवों से समक्ष महारासका रहस्य समझाते हैं । "कृपालु" अपने लिए कहते हैं कि मैं भी स्वयं अपने-आपको सबके सामने दीन कहा करता हूँ किन्तु मेरे रोम-रोममें अभिमान भरा पड़ा है ।

(८)

को कह राधे सम गिरिधारी ?
कित बृषभानुभूप की बेटी, कित गोकुल गो-कुल बनचारी ?
कनक-मुकुट मणिमय शोभित कित, कित मयूर-पंखन सिरधारी?
कितछबिमोतियन-लरउरराजित,कितगल-गुंजनकीमालारी?
कितषोड़श-सिगारकलितछवि,कित कर-लकुटि कामरीकारी ?
कित भोरी, अति सरल किशोरी, कित लंपट, बेपीर मुरारी ?
कित 'कृपालु' आराध्य स्वामिनी, कित पद अवराधक बनवारी ॥

भावार्थ—कौन कहता है कि किशोरीजी की समता श्रीकृष्ण कर सकते हैं अर्थात् किशोरीजी की समता श्रीकृष्ण कभी नहीं कर सकते । कहाँ तो राजा वृषभानुकी राजकुमारी राधिका, एवं कहाँ यशोदा के गोद लिये हुए गोकुल के गायों के चरवाहे श्रीकृष्ण । कहाँ तो किशोरीजी के सिर पर मणियों से जटित स्वर्ण का सुन्दर मुकुट, एवं कहाँ मोरके पङ्खोंका मुकुट । कहाँ तो गले में लटकती हुई मणियों और मोतियों की माला, एवं कहाँ गले में घुंघची की माला । कहाँ तो सोलहों-शृंगार से युक्त किशोरीजी एवं कहाँ हाथमें लठिया तथा कंधे पर काली-कमली डाले हुए श्रीकृष्ण । कहाँ तो अत्यन्त भोली तथा सरल किशोरीजी, एवं कहाँ गोपी-प्रेमरस में दीवाने निष्ठुर श्रीकृष्ण । "कृपालु" कहते हैं कि कहाँ तो उपासना करने योग्य किशोरीजी, एवं कहाँ उनके चरणोंके उपासक श्रीकृष्ण ।

(९)

गहो रे मन ! श्याम चरण शरणाई ।
अन्त समय कोउ काम न अइहैं, मातु, पिता, सुत, भाई ।
काम, क्रोध अरु लोभ, मोह, मद, इन सों कछु न बसाई ।
यह जग मृग-तृष्णा सम दीखत, सुख लव-लेश न पाई ।

धन-यौवन-तन छन-भंगुर सब, ज्यौं कपूर उड़ि जाई ।
बहुरि 'कृपालु' न नर-तनु पाइय, बिगरी लेहु बनाई ।।

भावार्थ—अरे मन ! श्यामसुन्दर के कमल-कोमल चरण-कमलों का आश्रय ले ले, क्योंकि मृत्यु के पश्चात् माता, पिता, भ्राता, पुत्र आदि कोई भी स्वजन तेरा साथ न देंगे । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, डाह आदि से बचने का दूसरा कोई उपाय नहीं । यह संसार मृगतृष्णा के जलके सामान ही है, इसमें जीव कहीं भी, किंचित् मात्र भी सुख नहीं पा सकता । सांसारिक सम्पत्ति; युवावस्था एवं यह शरीर क्षण-क्षण में नष्ट हो जाने वाले हैं जैसे कपूर बिना ढके अपने आप ही थोड़ी देर में उड़ जाता है । "कृपालु" कहते हैं कि—रे मन ! तुझे यह मनुष्य शरीर बार-बार नहीं मिलेगा, शीघ्र ही अनादि कालकी बिगड़ी बना ले, अर्थात् इसी क्षण श्यामसुन्दर की शरण हो जा ।

(१०)

जगत की बड़ी अनोखी बात ।
यदपि अनुभवत, सतत दुसह-दुख, तदपि न मूढ़ अघात ।
संतन-चरण शरण नहि आवत, भावत कुलटनि-लात ।
सुत-बित-नारि वियोग पाइ कह, "मिथ्या जगत लखात" ।
पुनि ज्यौंही जग मिल्यौ, सत्य लखि, लम्पट बनि लपटात ।
इक पण कारण करत तासु रण, जासु प्राण-प्रिय नात ।
अगम 'कृपालु' यथा हरि-लीला, त्यौं मोंहि जगत जनात ।।

भावार्थ—सांसारिक मनुष्यों की बड़ी ही विचित्र बात है । सांसारिक समस्त विषय-वासनाओं में लोग निरन्तर घोर दुःखका अनुभव करते हैं, फिर भी अज्ञानतावश उनका पेट नहीं भरता । महापुरुषों के चरण-कमलों की शरण में नहीं आते, किंतु उन्हें कुलटा स्त्रियों के चरणों में पड़े रहने में थोड़ी भी लज्जा

नहीं आती। पुत्र, स्त्री, धन आदि का जब किसी भी कारणवश वियोग या अभाव हो जाता है, तब सभी सांसारिक जीव कहने लगते हैं कि संसार मिथ्या हैं। किंतु यह स्मरण रखना चाहिये कि यह वैराग्य सांसारिक विषयों से नहीं है, वरन् सांसारिक विषयों के अभाव से है। क्योंकि ऐसे विरक्तोंको जैसे ही पुत्र, स्त्री, धन आदि की प्राप्ति हो जाती है, वैसे ही वह उन विषयों में पुनः पूर्ण आसक्त हो जाता है। प्रायः महापुरुषोंके संग न होने के ही यह सब दुष्परिणाम हैं। यह संसारी एक पैसे के लिए भी स्वार्थपरायणतावश उससे झगड़ा कर बैठता है जिसको वह इसके पूर्व प्राणाधिक प्रिय कहा करता था। "कृपालु" कहते हैं कि मुझे तो जितनी विचित्र एवं बुद्धिसे परे भगवान् की लीलाएँ प्रतीत होती हैं, उतनी ही विचित्र उपर्युक्त सांसारिक जीवों की भी प्रतीत होती हैं।

(११)

तजो रे मन ! उन संतन को संग।
जिनको लक्ष्य लोक-रंजन को, रंगि रंग रंग बिरंग।
बात बघारत ब्रज-रसिकन की, पिये विषय-रस-भंग।
शिष्यन कान फूंकि बनि स्वामी, ठगत ठगिन के ढंग।
हरिजन बनि हरिजनहुँ न मानत, चढ़ि अभिमान तुरंग।
वरु 'कृपालु' बनचर बनि रहियो, लखु जनि दंभिन अंग॥

भावार्थ—रे मन ! उन संतों का बाना बनाये हुए पाखंडियोंका संग छोड़ दे, जिनका लक्ष्य रंग-बिरंगे रङ्गों से कपड़े रङ्गकर संसार को खुश करना मात्र है। वे दम्भी, बातें तो ब्रजमहारसिकोंकी तरह बघारते हैं, पर स्वयं सांसारिक विषयरसकी भाँग पिये हुए उसीमें मतवाले रहते हैं। सांसारिक स्वार्थ सिद्धि के लिए अनधिकारी अनन्त जीवों के कान फूंककर दीक्षाका ढोंग रचते हुए उनको शिष्य बनाते हैं, तथा स्वयं स्वामी बनकर पक्के मायावी

ठगोंकी भाँति उन शिष्यों को ठगते हैं। वे दम्भी अपने आपको संत कहते हैं, किन्तु वास्तविक संतों की, अभिमानके घोड़े पर चढ़े हुए होनेके कारण, निंदा करते हैं, क्योंकि वे अपने धन, मान, आदि में उन वास्तविक संतों के द्वारा न्यूनता पाते हैं। "कृपालु" कहते हैं कि तुम भले ही जंगल के भीलों की तरह वन के बनचर रहो, किन्तु उन दम्भी संतों का मुख तक न देखो।

(१२)

तजो रे मन ! छन-भंगुर बैराग।
करि विश्वास शरण गहु सन्तन, मोह-तिमिर तब भाग।
करत करत सत्संग सतत तव, हरि-चरनन मन लाग।
मधुर-मिलन लगि विकल रैन दिन, तपत चित्त बिरहाग।
तब निर्मल मन सन्त-कृपा ते, पाव सहज-अनुराग।
हो 'कृपालु' मन सहज-बिरागी, सहज-प्रेम-रस पाग ॥

भावार्थ—हे मन ! बिना तत्त्वको समझे क्षणभंगुर वैराग्य में मत पड़ो। सर्वप्रथम पूर्ण विश्वासपूर्वक वास्तविक महापुरुषोंकी शरण जाओ, तभी तुम्हारा अज्ञानरूपी अंधकार नष्ट होगा। इस प्रकार तैलधारावत् निरन्तर महापुरुषोंका संग एवं उनके आदेश पालन करते-करते ही श्रीकृष्णके चरण-कमलों में लगाव होगा। तत्पश्चात् उनके मधुर-मिलनके लिए प्रतिक्षण परम व्याकुलतावश तुम पूर्व मिलन की विरहाग्नि में जलोगे। इस प्रकार विरहाग्नि में निरन्तर जले हुए मन ! तुम निर्मल बनकर महापुरुषों की कृपा से स्वाभाविक, विशुद्ध निष्काम प्रेम प्राप्तकर सकोगे। "कृपालु" कहते हैं कि हे मन ! तू स्वाभाविक, संतकृपा द्वारा प्राप्त, प्रेम के द्वारा ही अन्य समस्त सांसारिक विषयों का स्वाभाविक रूप से विरागी बन सकेगा। तात्पर्य यह है कि सांसारिक दुःखों से घबड़ाकर बिना समझे-बूझे एवं बिना महापुरुषोंके अवलम्ब के अगर तू किसी व्यक्तिको धर्मभ्रष्ट करते हुए बाबाजी बना देगा तो उसका परिणाम अत्यंत भयानक हो सकता है।

(१३)

धरो मन गौर-चरन को ध्यान ।
जिन चरनन को राखत निज उर, सुन्दर श्याम सुजान ।
भटकत कोटि-कलप तोंहि बीत्यो, खायो सिर पद-त्रान ।
चार-प्रकार लक्ष-चौरासी, द्वार फिर्‌यो जनु स्वान ।
चरण-शरण कबहूँ नहिं आयो, अबहूँ करत न कान ।
येहि दरबार दीन को आदर, पतितन को सन्मान ।
पुनि 'कृपालु' मन ! कत चूकत तुम, पंडित बनत महान ।।

भावार्थ—अरे मन ! कीर्ति-कुंवरि राधिकाजी के चरणों का निरन्तर ध्यान किया कर, जिन चरणों का ध्यान सच्चिदानंद श्रीकृष्ण भी करते हैं। अरे मन ! तुझे भटकते हुए अनन्त जन्म बीत चुके, एवं तूने उन विषयोंके अनंत बार जूते खाये । स्वेदज, अंडज, उद्भिज, जरायुज इन चार प्रकारकी उत्पत्ति के द्वारा कुत्ते की तरह तूने चौरासी लाख योनियों में चक्कर लगाया है, किन्तु किशोरीजीके चरण-कमलोंकी शरण कभी नहीं ली । आज भी मेरी बात नहीं मान रहा है। अरे मन ! किशोरीजी के दरबार में पतितों एवं दीनों को ही सम्मान मिलता है। "कृपालु" कहते हैं कि अरे मन ! तुम बहुत बड़े पंडित बनते हो फिर ऐसा अवसर क्यों खो रहे हो, अर्थात् किशोरीजी के चरणों की शरण क्यों नहीं लेते ?

(१४)

ब्रह्म ! तुम केहि बल पर इतरात ।
जो होवे अपराध क्षमा तो, सुनिय, कहौं कछु बात ।
"तुम गुन-हीन" निगम भाषत, हम, सगुन विश्व-विख्यात ।
"तुम निष्क्रिय, मन-बुद्धि-रहित", हम, इनसों युक्त लखात ।

"'हम अनेक'' 'तुम एक, अतनु पुनि', तुम कछु करि न सकात ।
हम नामी, धामी पै तुम्हरो, नाम न धाम सुनात ।
जो तुम कहौ ''सगुण, सक्रिय हौं'' तौ पुनि हमरिहिं भांत ।
जैसे हम, तैसे ही तुम हो, अन्तर कछु न जनात ।
हम सदोष, पर-दोष सदा सों, खोजत, तुम घबरात ।
कलियुग, बहु मत, पुनि हम पंडित, पुनि बहु-मद-मदमात ।
तासों ब्रह्म ! 'कृपालु' कह्यो जो, बुरो न मान्यो भ्रात ।।

भावार्थ—हे भगवान् ! तुम किस बातपर इतरा रहे हो । यदि अपराध क्षमा हो तो मैं कुछ बात कहूँ । सुनिये, तुम्हें वेद गुणहीन (निर्गुण) कहता है, किन्तु हम तो समस्त विश्व में सभी गुणों से युक्त (सगुण) प्रसिद्ध हैं । तुम मन-बुद्धि से रहित हो तथा कुछ काम भी नहीं कर सकते (निष्क्रिय हो), किन्तु हम मन-बुद्धि से युक्त तथा सब कुछ कर सकते हैं । तुम एक हो, फिर साथ ही निराकार भी हो, किन्तु हम अनन्त हैं तथा साकार भी हैं । हमारा नाम एवं स्थान भी है, किन्तु तुम इन दोनों से रहित हो । अगर तुम यह कहो कि मेरा भी दूसरा स्वरूप सगुण एवं क्रियात्मक है, तब तो तुम हमारे ही समान हुए, कोई अन्तर नहीं हुआ । हम सदोष हैं इसलिए सदा से सब में दोष देखते हैं, लेकिन तुम घबड़ाते हो । एक तो कलियुग, फिर हम अनंत-जीव एक पक्षवाले, फिर हम पंडित, तथा तिसपर भी अनेक मदों से युक्त हैं । हे भाई ब्रह्म ! ''कृपालु'' कहते हैं कि मैंने जो कुछ भी कहा है उसका बुरा न मानना ।

(१५)

मन ! तू काहे हठ पकर्यो ।
तू निज विषय रूप-लीलादिक, हित नित जगत अर्यो ।
सपनेहुँ तृप्त भयो नहिं नेकहुँ, पचि-पचि वृथहिं मर्यो ।

हौं देहौं तोंहि दिव्य-विषय सब, बनि जैहै बिगर्यो ।
पुनि सो रस तजि भाजि सकत नहिं, प्रेम-रज्जु जकर्यो ।
अबहुँ चेत 'कृपालु' ! आजु लौं, जो कछु कर्यो-कर्यो ।।

भावार्थ—हे मन ! तूने व्यर्थ ही क्यों दुराग्रह ठान रखा है ? तू अपने इंद्रियोंके विषय शब्द, स्पर्श, रूप रस, गंध आदिके ही निमित्त अनादिकाल से प्रतिक्षण इस संसारमें भटक रहा है। व्यर्थ ही इतना घोर परिश्रम करते हुए भी तुझे स्वप्नमें भी थोड़ी सी भी शांति नहीं प्राप्त हुई। यदि तू मेरी बात माने, एवं मेरा विश्वास करे तो चल, राधा-कृष्णके पास तुझे इन्हीं इंद्रियोंके अति दिव्य विषय, जिनको पाकर तू सदा के लिए तृप्त हो जाय, दिला दूं, एवं मेरी भी अनादिकाल की बन जाये। रे मन ! उस दिव्य रसको पाकर तू कहीं भी स्वप्न में भी जाने की इच्छा न कर सकेगा। वरन् उसी प्रेम-पाशमें नित्य ही बँधकर विभोर रहेगा। "कृपालु" कहते हैं कि—हे मन ! आज तक जो कुछ तूने किया सो किया, अब भी सावधान हो जा, अर्थात् श्यामा-श्याम की शरण चला जा।

(१६)

मेरो मन गौर चरन अनुराग्यो ।
सोवत रह्यों अनादि काल ते, रसिक कृपा ते जाग्यो ।
मिट्यो स्वप्न-संसार आपु हीं, मोह-तिमिर सब भाग्यो ।
बिनु अष्टांग-जोग साधे ही, चित्त प्रेम-रस पाग्यो ।
छुटत न कोटि-मुक्ति-सुख पाये, जेहि मुख यह रस लाग्यो ।
भयो 'कृपालु' धनी सब दिन को, मिल्यो रतन मुंह माँग्यो ।।

भावार्थ—मेरा मन तो किशोरीजीके चरणों में अनुरक्त हो गया है। मैं अनादि काल से मोह की नींद में सो रहा था, रसिकोंने मुझे जगा दिया है।

जागते ही मेरा स्वप्नवत् संसार अपने-आप समाप्त हो गया है एवं अज्ञानरूपी अन्धकारका सर्वथा नाश हो गया है। मेरा मन तो बिना अष्टांग-योग-साधना किये ही प्रेमरसमें अनुरक्त हो गया है। यह रस एक बार भी जिसके मुँह लग जाता है, फिर उसे इस रससे करोड़ों मुक्तियोंका सुख भी पृथक् नहीं कर सकता। "कृपालु" कहते हैं कि मुझे तो मुँह-माँगा धन मिल गया तथा मैं सदा के लिए मालामाल हो गया।

(१७)

रटो रे मन। छिन-छिन राधे नाम।
ब्रह्मादिक की कौन बात जेहि, रटत ब्रह्म घनश्याम।
जेहि रटि महारास रस पायो, शंकर धरि तनु बाम।
निगम अगम निधि रसिकन दीनी, बिनुहिं मोल बिनु दाम।
राधे नाम पुकारत आरत, भाजति तजि निज धाम।
मिल्यो 'कृपालुहिं' रतन अमोलक, कहा जगत सों काम॥

भावार्थ—हे मन ! क्षण-क्षणमें निरन्तर प्रेमपूर्वक राधे नामका संकीर्तन कर। जिस राधे नामको ब्रह्मा, विष्णु आदि की कौन कहे स्वयं साक्षात् ब्रह्म-श्रीकृष्ण भी रटा करते हैं, तथा जिस राधे नामको रटकर भगवान् शंकर ने गोपी शरीर धारण करके द्वापर में महारास का रस प्राप्त किया। वेदोंमें भी अप्राप्य इस राधे नाम की निधिको महापुरुषोंने अकारण कृपा से बिना प्रयास के ही प्रदानकर दिया। भक्त के आर्त-भावयुक्त राधे नाम पुकारते ही किशोरी जी अपना लोक छोड़कर अत्यंत व्याकुल होकर भागती हुई उसके पास चली आती हैं। "कृपालु" कहते हैं कि यह राधे नामरूपी अमूल्य रत्न मुझे तो रसिकों की कृपा से मिल गया है, फिर संसार से क्या काम ?

(१८)

रसिक-जन गये फोरि सिर हार।
यह जड़ जीव, अनादि-काल ते, निपट-कपट-आगार।

जिन विषयन अनुभवत दुसह दुख, नेकु विराग न धार ।
पुनि जिन विषयन नहिं कछु अनुभव, किमि समुझिय संसार ।
मिट्यो न जग, यद्यपि हरि-हरिजन, प्रगटें अगनित बार ।
दोष 'कृपालु' सुभायन को, जो कर नित पर-उपकार ।।

भावार्थ—बड़े बड़े महापुरुष मत्थापच्ची करके थक गये, किन्तु फिर भी यह अनादि-कालका दुष्ट, हठी जीव नहीं समझ सका । जिन सांसारिक विषयों का जीव प्रतिक्षण अनुभव करता है तथा कहता भी है कि संसार में घोर दुःख ही दुःख है, फिर भी जब उन्हीं से आज तक विरक्त नहीं हो सका, तब फिर जिन भगवत्—विषयों का जीव को अभी तक कुछं भी आनन्द नहीं प्राप्त हुआ, उन बुद्धि-अतीत विषयों को जीव कैसे समझ सकता है ? यद्यपि भगवान एवं बड़े-बड़े महापुरुष अनन्तवार इस पृथ्वी पर अवतार ले-लेकर जीवों के उद्धार के लिए आये और फिर भी यह संसार बना ही रहा, कुछ इने-गिने जीव मायातीत हो पाये । "कृपालु" कहते हैं कि—यह सबकुछ समझते बूझते हुए भी सरल स्वभाववश पोरपकारनिरत महापुरुष जीव के कल्याण के लिए तन, मन, धन से प्रयत्न करता ही है ।

(१९)

रहो रे मन ! गौर चरन लव लाई ।
जिन चरनन की चरन-रेनुकहिं, सेवत श्याम सदाई ।
जहँ जहँ चरन परत श्यामा को, तहँ तहँ सिर यदुराई ।
चरण पलोटत रज बिच लोटत, भूरि भाग्य जनु पाई ।
छिन छिन दृगन लगावत पुनि पुनि, चरनन उर लपटाई ।
तुम 'कृपालु' कत रहे अभागें, इन चरनन बिसराई ।।

भावार्थ—रे मन ! तू भी वृषभानुनंदिनीके उन कमल-कोमल-युगल-अरुण चरणोंसे प्रेम कर, जिन चरणों की चरण-धूलिका ब्रह्म-श्रीकृष्ण भी सेवन करते हैं। जहां-जहां किशोरीजीके युगल-चरण पड़ते हैं; वहां-वहां यादवेन्द्र श्रीकृष्ण अपना शीश रखते हैं। उन्हीं चरणों को दबाने एवं उन्हीं चरणों की धूलिमें लोटने में अपना परम भाग्य समझते हैं। प्यारे श्यामसुन्दर उन्हीं चरणोंको बार-बार अपने हृदय एवं अपने दोनों नेत्रों में लगाकर प्रेम-विभोर हो जाते हैं। "कृपालु" अपने लिए कहते हैं कि—तुम इन अमूल्य किशोरजीके चरणों को भुलाकर क्यों अभागे बने रहे।

(२०)

लख्यौ जग इक अचरज की बात।
बरसत बूंद पकरि नभ चढ़ि चह, जो मन बुधि न समात।
विधि, हरि, हर जेहि जानि न पावत, प्रभु प्रभुता विख्यात।
बिनु जाने प्रतीति नहि तेहि बिनु, प्रीति न कतहुँ लखात।
"बिना प्रीति नहि द्रवत पिया" यह, सोचि जिया अकुलात।
यह 'कृपालु' तो प्रिय मग जोहत, खर्‌यो रहत दिन रात॥

भावार्थ—संसारकी एक आश्चर्यकी बात सुनो। बरसते हुए बादलोंकी बूंदोंको पकड़कर जीव आकाशमें चढ़ना चाहता है, जो कि मन-बुद्धिसे परेका विषय है। यह सर्वसिद्ध विषय है कि भगवान्‌के रहस्योंको ब्रह्मा, विष्णु, शंकर भी बुद्धिके बलसे नहीं समझ सकते। बिना समझे विश्वास दृढ़ नहीं होता एव बिना विश्वास दृढ़ हुए प्रेम भी नहीं हो सकता और बिना प्रेमके प्रियतम पघलते भी नहीं। यह सब सोचकर हृदय अत्यन्त व्याकुल हो जाता है। "कृपालु" कहते हैं कि मैं तो एकमात्र निरंतर प्रियतम श्रीकृष्णकी कृपाकी बाट जोह रहा हूं।

(२१)

लख्यो मैं इक अचरज संसार ।
जासों सुनिय सोइ इमि भाषत, "यह संसार असार" ।
पै जाको देखिय, सोइ खोजत, निज सुख विषय मझार ।
कहत सबै "हरि की लीला अति, अलख अगम्य, अपार" ।
पै नित संशय करत चरित महँ, निज बुधि-बलहिं बिसार ।
बिनु सत्संग कछुक नहिं पाइय, पचि पचि मरिय हजार ।
सो सत्संग 'कृपालु' जानिये, श्रद्धा बिनु खिलवार ।।

भावार्थ—मैंने संसारमें एक बड़ी ही विचित्र बात देखी । वह यह कि जिस किसी व्यक्तिसे ही सुनो, वह यही कहता है कि यह संसार मिथ्या है, जिस किसीको ही देखिए (इनेगिने बिरले जीवोंको छोड़कर) वह अपना सुख मायिक विषयोंमें ही नित्य-प्रति खोज रहा है । वैसे तो सभी आस्तिकजन यह कहते हैं कि भगवान्‌की लीलाका कोई पार नहीं पा सकता, कोई जान नहीं सकता, किंतु फिर भी वह सभी भगवान्‌की अति विचित्र अलौकिक लीलाओंमें लौकिक दृष्टिकोण रखते हुए तर्क करते हैं, थोड़ी भी अपनी बुद्धिके बलका विचार तक नहीं करते । महापुरुषोंके संगके बिना, चाहे करोड़ों ही प्रयत्न क्यों न किये जायँ, कुछ भी नहीं प्राप्त हो सकता और वह महापुरुषोंका सत्संग भी श्रद्धाके बिना "कृपालु" की रायसे खिलवाड़ सा ही समझना चाहिए ।

(२२)

श्यामा-श्याम शरण गहु रे मन !
युगल-माधुरी ध्यान धरे उर, गाउ नाम-गुन रहु वृन्दावन ।
सखी-भाव-संतन-अनुगत ह्वै, प्रेम-सुधा पिउ लहु जीवन-धन ।
ह्वै निष्काम, धाम-निष्ठा गहि, गहवर-वन बिचरहु गोवर्धन ।

भरिभरि अंक लतन, आनँद-जल, झरझर, झरि लावहुजनुसावन ।
इमि 'कृपालु' मदमत्तरैन-दिन, नित नव-रस चाखहुमनभावन ।।

भावार्थ—अरे मन ! तू राधा-कृष्णके चरण-कमलोंकी शरण हो जा, तथा राधा-कृष्णका स्वरूप अपने हृदयमें रखकर उनके विविध नाम गुणादिकों को प्रेम-विभोर होकर गाता हुआ निरन्तर वृन्दावनमें ही निवास कर । गोपी-प्रेम प्राप्त सखी-भावयुक्त महापुरुषोंकी शरण होकर उस दिव्य प्रेमामृतका पानकर जो तेरे जीवनका सर्वस्व है । निष्काम भाव रखते हुए श्रीकृष्ण धाममें चिन्मय दृष्टि रखकर गह्वरबन एवं गोवर्धनमें झूमते हुए विचरण कर । व्रजकी लताओंका बारबार आलिगन करके नेत्रोंसे आनन्दके आंसुओंकी श्रावण की तरह झड़ी लगाते हुए वर्षाकर । "कृपालु" कहते हैं—"रे मन ! इस प्रकार तू प्रेम-रसमें उन्मत्त होकर दिन-रात नित्य-प्रति नवीन-नवीन दिव्य रसों का मनमाना आस्वादन कर ।"

(२३)

श्री राधे रानी, प्रेम तत्व की सार ।
निगमागम ते अगम, सुगम अति, दीनन हित सुकुमार ।
बिधि हरि हर की कौन बात जब, ब्रह्म न पायो पार ।
क्रन्दन करुण सुनावत धावति, निज सुधि देह बिसार ।
'राधे' नाम पुकारत राधे, बरसावति जलधार ।
मोंहि 'कृपालु' अब भय काको जब, श्रीराधे रखवार ।।

भावार्थ—श्रीवृषभानु-नन्दिनी प्रेम तत्वकी सार, अर्थात् महाभाव स्वरूपिणी हैं । आनन्द-ब्रह्मकी सारभूत शक्तिका नाम ह्लादिनी-शक्ति है । ह्लादिनी-शक्ति का भी सार प्रेम कहलाता है । प्रेम-तत्त्वका भी सार महाभाव है—वही राधा तत्व है । किशोरीजी वेदों और शास्त्रों से भी सर्वथा अगम्य होते हुए

भी दीनजनोंके लिए अत्यंत सुगम हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शंकर आदिकी तो राधा-तत्त्व पानेकी शक्ति ही कहां है, जब साक्षात् परात्पर पूर्णतम पुरुषोत्तम ब्रह्म भी जिसका पार नहीं पा सके। किशोरीजी दीनोंके लिए इतनी सरल हैं कि जब भी दीन, आर्त भावसे 'राधे' कहकर उन्हें पुकारता है तब किशोरीजी भी अधीर होकर अपनी आँखोंसे आँसू बहाने लगती हैं। "कृपालु" कहते हैं कि—जब ऐसी ही सरल, सुकुमार, अलबेली सरकार वृषभानुदुलार हमारी रखवार हैं तव मुझे डर ही किसका है।

(२४)

सखी ! मन मरम न जाने कोय।
ज्यौं ज्यौं भीजे श्याम रंग मन, त्यौं त्यौं ऊजर होय।
हिय बिच समुझि परत नहिं नेकहुँ, कान्ह कि प्रान कि दोय।
कबहूँ पिय निज ढिग लखि रोवति, कबहुँ दूरि लखि रोय।
किमि 'कृपालु' कहि सक जब ज्ञानी, बरबस ज्ञान बिगोय।

भावार्थ—(एक सखी अपनी सखी से कहती है—)

अरी सखी ! मेरे मनके रहस्योंको कोई नहीं जानता। यह मन श्याम-रंगमें जैसे-जैसे भीजता जाता है वैसे-ही वैसे उज्ज्वल होता जाता है। अरी सखी ! यह समझमें नहीं आता कि हृदय में श्यामसुन्दर हैं या प्राण हैं, या दोनों ही हैं। कभी तो प्रियतमको अपने पास ही देखकर मैं रोने लगती हूँ और कभी उन्हें अपनेसे दूर समझकर रोने लगती हूँ। "कृपालु" कहते हैं कि इस प्रेमके रहस्यको मैं क्या बतलाऊँ जवकि ज्ञानियोंका भी ज्ञान नहीं जान पाता है।

(२५)

सदा सों सोई दुलहिनि जाग।
आये रसिक जगावन आपुहि, जाग्यो तेरो भाग।

भुज पसारि कब ते पिय परखत, वेगि धाइ उर लाग।
बिनु पिय-परस न रतिरस पाइय, जरि जाइय कामाग।
रतिरस-बस, बरबस, करि बस पिय, खेलु रासरस फाग।
अस 'कृपालु' संजोग बनै जो, होवे अमर-सुहाग॥

भावार्थ--अरी ! अनादिकालसे मोह-निशामें सोई हुई जीव-रूपी श्रीकृष्ण-प्रेयसी, जाग जा। देख ! तू कितनी बड़भागिनी है कि तुझे प्रियतम के द्वारा भेजी हुई रसिकरूपी सखी स्वयं जगाने आई है। यदि तू यह कहे कि प्रियतमके बिना,जागनेसे क्या लाभ होगा तो रसिक-रूपी सखी कहती है— "तुझे तो प्रियतम अनादि कालसे अपनी दोनों भुजाओं को फैलाये परख रहे हैं, जल्दी दौड़कर उनके हृदयसे लग जा।" अगर तू कहे कि इससे क्या लाभ होगा तो सुन—बिना प्रियतमके स्पर्शके तुझे दिव्य-प्रेम, रति-रस न प्राप्त हो सकेगा, तथा इसी प्रकार वासनाओंकी अग्निमें जला करेगी। जब तू रति-रस पा जायेगी तब हठात् प्रियतम को अपने आधीन कर लेगी। इसके परिणामस्वरूप तू निरंतर दिव्य रास-रसकी होली खेला करेगी। "कृपालु" कहते हैं कि जब किसी जीवरूपी दुलहिन का उपरोक्त ढंगसे संयोग बन जाय, अर्थात् वह रसिकोंके जगाने से जाग जाय एवं उनके कंथनानुसार प्रियतमके मधुर मिलनका रस पान करले, तो उसका अनन्तकाल के लिए सुहाग अमर हो जाएगा।

(२६)

सन्त-गति, मन-बुधि नाहिं समात।
ज्ञानी-भक्त-शिरोमणि अर्जुन, अहि-कन्या सों नात।
प्रभु-मय लखत विश्व मारुत-सुत, असुरन बधत लखात।
आतमाराम जिते सनकादिक, शाप देत बौरात।

गुणावतार कहत विधि, हरि, हर, सोउ दीखत मदमात ।
सुनहु 'कृपालु' योगमाया यह, संतहि समुझि सकात ।।

भावार्थ— महापुरुषोंकी अंतरंग अवस्थाओंको मायिक मन न तो कुछ सोच सकता है, और न तो बुद्धि निर्णय ही कर सकती हैं । ज्ञानियों एवं भक्तोंके भी सरताज अर्जुन-सरीखे महापुरुषों की भी नागकन्यामें आसक्ति हो गई । समस्त संसारको हनुमानजी सियाराममय देखते हैं; फिर भी लंकादहन एवं दैत्योंका वध करते हुए दिखाई देते हैं । अपनी आत्मामें ही रमण करनेवाले परमहंस सनकादिक बड़े-बड़े महात्मा क्रोधमें आकर शाप देते हुए दिखाई देते हैं । ब्रह्मा, विष्णु, शंकर जिनको गुणावतार करते हैं, वे भी अभिमानयुक्त होकर कार्य करते हुए पाये जाते हैं (कृष्णावतारमें ब्रह्माका अभिमान) । "कृपालु" कहते हैं कि यह लोग भगवान्‌की योगमायासे युक्त होकर कार्य करते हैं, अतएव महापुरुषोंकी गतिको महापुरुष ही समझ सकता है ।

Regmi Memorial Library
Kathmandu, Nepal
C. NO 813

(२७)

सुने हम समदर्शी भगवान ।
जहं कहुँ दीन, हीन जन देखत, चोरत तन-मन-प्रान ।
पै तिन सों कछु पेस न पावत, जिनके उर अभिमान ।
चतुर ठगत भोरेन कहँ जगहूँ, सोचहु मनहि सुजान ।
हमरे हित 'कृपालु' कछु सोचिय, हम बल-बुद्धि-निधान ।।

भावार्थ—हे भगवान् ! मैंने सुना है कि तुम समदर्शी, अर्थात् न्यायपूर्वक सबको एक समान देखनेवाले हो, पर यह बात देखनेमें नहीं आती । क्योंकि तुम्हें जहाँ कहीं भी कोई बेचारा साधनहीन, दीन मनुष्य मिल जाता है तो तुम उसका तन, मन, प्राण सभी कुछ हरण कर लेते हो, किंतु जिसके हृदयमें अभिमान भरा रहता है उनसे तुम्हारा भी कुछ भी वश नहीं चल

पाता। संसारमें भी जो विशेष चतुर होते हैं वे भी तुम्हारी तरह उपर्युक्त ढंगसे भोले-भाले लोगों को ठगा करते हैं। इस बातको बुद्धिमान-जन अपने मनमें सोच सकते है। ''कृपालु'' कहते हैं कि हमारा क्या होगा ? इसका विचार कीजिए, क्योंकि हम तो सांसारिक बुद्धिके भण्डार हैं अर्थात् समदर्शिता तो आपकी तभी मानी जानी चाहिए जब मुझे भी आप ठग लें।

(२८)

सुनो मन सबै श्रुतिन को सार।
इक माया इक जीव दुहुन को, ईश ब्रह्म करतार।
मायाधीन सनातन जीवहिं, माया ही सों प्यार।
जीव ब्रह्म को अंश अमायिक चारिहुँ वेद पुकार।
याते याको विषय न मायिक, यह मायिक संसार।
मायिक जग सों रागद्वेष तजि, रहु गुरु शरण मझार।
तजहु 'कृपालु' अपर साधन बल, भजहु युगल सरकार।

भावार्थ—हे मन, समस्त वेदों का सार सुनो। माया, जीव, एवं ईश्वर तीन ही तत्व हैं, इनमें ईश्वर ही माया एवं जीव का शासक है। यह जीव अनादि काल से मायाबद्ध है और माया के क्षेत्र में ही प्यार कर रहा है किन्तु यदि यह रहस्य समझ में आ जाय कि जीव तो ईश्वर का अंश है और दिव्य हैं अतः मायिक जगत इसका विपय ही नहीं हैं तो इस संसार से राग-द्वेष रहित होकर वास्तविक महापुरुष की शरणागति में रहकर राधा-कृष्ण की भक्ति द्वारा कृतार्थ हो जायगा। 'कृपालु' कहते हैं कि हे मन, अब तू सब साधनों का बल त्यागकर श्यामा-श्याम का भजन कर।

(२१)

हमारे मन भाई भानु लली।
भरी गुमान दिवानी डोलति, जानत जग पगली।

लोक-वेद-कुल कानि तजी सब, लोग कहें बिटली।
कर्म, अकर्म विकर्म आदि की, विपदा आपु टली।
राधे नाम सरस-रस चाखत, अमृत मधुर डली।
बिहरति नित 'कृपालु' स्वामिनि सँग, गहवर-कुंज-गली।

भावार्थ—मेरे मनको श्रीवृषभानुनंदिनी किशोरीजी ही अच्छी लगती हैं। 'वे हमारी स्वामिनी हैं' मैं इसी अभिमानमें सदा दीवानी रहती हूँ। संसार मुझे पगली समझता है। मैंने लोक, वेद एवं वंशकी मर्यादाका सर्वथा त्याग कर दिया है। संसारके लोग मुझे भ्रष्ट कहते हैं। कर्म, अकर्म (कर्म न करना), विकर्म (विपरीत कर्म करना), इत्यादिकी आपत्ति अपने-आपही समाप्त हो गई। अमृतसे भी मीठे राधे नामके रसको मैं सदा ही पिया करती हूँ। "कृपालु" कहते हैं कि मैं निरन्तर ही स्वामिनीजीके साथ गह्वरवनकी कुञ्ज-गलियों में विविध प्रकारके रसविलासका रसास्वादन किया करती हूँ।

(३०)

हृदय ! तू कुलिश कठोर लखात।
जो तू होतो लौह, बिरह-दव, कब को ही जरि जात।
भाजु प्राण ! अब प्राणनाथ ढिग, बिरह करन चह घात।
उर गृह लागि आगि तू सोवत, जोवत मौत जनात।
हाय ! गोहारि लागु अब कोऊ, बिरह जरावत गात।
लखि 'कृपालु' दृग धाय लाय जल, करन लगे बरसात॥

भावार्थ—रे मन ! तू वज्रसे भी अधिक कठोर प्रतीत होता है, क्योंकि यदि तू लोहा भी होता तो कबका ही विरहाग्निमें जलकर भस्म हो जाता। हे प्राण ! तू अब शीघ्र ही प्राणनाथ श्यामसुन्दरके पास भाग जा। विरहाग्नि विश्वासघात करना चाहती है। अरे प्राण ! तेरे हृदयमें विरहकी आग जल-

रही है फिर भी तू सो रहा है। ऐसा जान पड़ता है कि तू अपनी मृत्यु चाहता है। हाय ! हाय ! ! कोई मेरी पुकार सुनकर मुझे इस विरहाग्निसे बचा लो। ‘‘कृपालु’’ कहते हैं कि—इस प्रकार मेरे करुण क्रन्दनको सुनकर दयावश तत्क्षण ही दोनों नेत्रोंने आँसुओंके जलकी वर्षा आरम्भ कर दी, जिससे विरहकी अग्नि कुछ धीमी पड़ गई।

दैन्य-माधुरी

(१)

अपनी ओर नेकु हेरो री किशोरी राधे !
हौं तो कुटिल नीच सब दिन को,
विश्व-विदित अघ मेरो री किशोरी राधे !
पै "बिनु-हेतु-पतितपावनि" यह,
विरद दुर्‌यो कित तेरो री किशोरी राधे !
शिशु नवजात न जानत मातहिं,
रहत मातु रुचि-चेरो री किशोरी राधे !
त्यौं, हौं अति अबोध, जड़, पामर,
महामोह-तम घेरो री किशोरी राधे !
हमरिहिं बेर, बेर कत एतिक,
याको करिय निबेरो री किशोरी राधे !
जगहुँ 'कृपालु' सुनात कुमात न,
यदपि कुपूत घनेरो री किशोरी राधे !

भावार्थ—हे बरसानेवाली राधे। हमारी ओर न देखकर केवल अपनी ओर देखिए। मैं तो अनादि-कालसे ही आपको भूलकर अत्यन्त ही कुटिल एवं नीच बन चुका हूँ, तथा मेरे पापोंको भी सारा संसार जानता है। किन्तु 'बिना कारण ही महान्-से-महान् पतितोंको पवित्र करनेवाली' तुम्हारी इस

प्रतिज्ञाका क्या होगा ? मुझे इसका विचार है। जिस प्रकार नवजात बालक अपनी मातको पहचान तक नहीं सकता, माता ही स्वभावत. उसकी इच्छाओं को पूर्ण करती है। उसी प्रकार मैं भी तो अत्यन्त अनजान, हठी एवं दुष्ट तुम्हारा ही बालक तो हूँ, जो अत्यन्त भयावह अज्ञानके अँधेरेमें पड़ा हूँ। आपने किसी भी पतितके लिए इतनी देर नहीं की, फिर हमारे लिए इतनी देर क्यों कर रही हो, इसका विचार कीजिए। "कृपालु" कहते हैं कि संसारमें कुपुत्र कितने ही हो जायँ, किन्तु कुमाता एक भी नहीं सुनाई पड़ती, बस इससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना है।

(२)

अहो हरि ! ओहू दिन कब अइहैं ?
गावत गुन गोपाल निरन्तर, दृगन अश्रु बरसैहैं।
रूप-माधुरी निशि दिन ध्यावत, मन, भृङ्गी बनि जैहैं।
बाट निहारि तिहारी पल पल, कलप समान जनैहैं।
हाय! हाय!! करि इत उत भाजत, निज तनु-सुधि बिसरैहैं।
यह 'कृपालु' जिय परम भरोसो, कबहुँ तो हरि अपनैहैं।

भावार्थ—हे श्यामसुन्दर ! वह दिन कब आवेगा, जब आपके गुणोंको गाते हुए प्रतिक्षण मेरी आँखें आँसू बहायेंगी। मेरा मन आपके चिन्मय स्वरूप का प्रतिक्षण चिन्तन करता हुआ भृंगी कीड़ेकी तरह कब तन्मय हो जायेगा। कब आपके दर्शनोंकी प्रतिक्षण प्रतीक्षामें मुझे एक-एक क्षण कल्प-कल्पान्तरों के समान लगेगा। 'हा नाथ ! हा श्यामसुन्दर ! !' इस प्रकार कहते हुए, परम व्याकुलता-वश इधर-उधर भागते हुए, मैं कब पागलकी भाँति अपनी सुधि-बुधि भूल जाऊँगा। "कृपालु" के हृदय में यह पूर्ण विश्वास है कि कभी न कभी तो नाथ इस दासको अवश्य अपनायेंगे।

(३)

अहो हरि ! कब ते द्वार खड़ो ।
माँगत भीख कृपा की सिर धरि, कोटिन पाप घड़ो ।
यद्यपि लखि निज ओर दयामय !, लाजन जात गड़ो ।
तदपि तिहारो विरद सोचि जिय, साहस कछुक पड़ो ।
रसिकन सुनि बिनु-हेतु-सनेही, हौं रिरियात अड़ो ।
जेतिक पतित 'कृपालु' मिले तोंहि, हौं उन मांहि बड़ो ॥

भावार्थ—हे श्यामसुन्दर ! एक दीन-भिखारी तुम्हारे द्वारपर बड़ी देरसे खड़ा-खड़ा कृपाकी भीख माँग रहा है। साथ ही अपने सिरपर करोड़ों महा-पापोंका घड़ा भी रखे हुए हैं। हे दयाके सागर ! यद्यपि जब मैं अपने पापोंकी ओर देखता हूँ, तो लज्जाके कारण पृथ्वीमें गढ़ा-सा जाता हूँ तथापि जब तुम्हारे 'अकारणकरुण' इस विरद पर विचार करता हूँ, तो कुछ साहस अवश्य हो जाता है। महापुरुषोंके मुखसे सुना है कि तुम बिना कारण ही प्रेम करते हो, इसी विश्वासपर गिड़गिड़ाता हुआ हठपूर्वक तुम्हारे द्वारपर अड़ा हुआ हूँ। ''कृपालु'' कहते हैं कि तुम्हें आजतक जितने भी पापी मिले हैं, मैं उन सबमें महान् हूँ।

(४)

अहो हरि ! अब हौं गयौ अघाय ।
पचि-पचि मरेउं अनादि-काल ते, जड़ जङ्गम भरमाय ।
अब जानी, नहिं चल मनमानी, रसिकन दीन बताय ।
ज्यौं कोउ खग जलयान त्यागि नभ, कबलौं सकत उड़ाय ।
त्यौं बिनु पद-अवलंब तिहारे, मन विश्राम न पाय ।

पियत मृगन मृग-जल ज्यौं नेकहुँ, सकत न प्यास बुझाय।
त्यौं 'कृपालु' बिनु पिये प्रेम-रस, किमि मन चैन लखाय ।।

भावार्थ—हे श्यामसुन्दर ! अब संसारसे मेरा पेट भली-भाँति भर चुका। अनादिकालसे स्थावर, जंगम चौरासी लाख योनियोंमें अज्ञानतावश व्यर्थ ही अब तक पच-पचकर मरता रहा। अब मनकी मनमानी नहीं चल सकती, क्योंकि महापुरुषोंने इस मार्मिक रहस्यको पूर्णतः बता दिया है कि हम जहाँ भटक रहे हैं वहाँ विश्राम नहीं है। जैसे किसी जहाजपर बैठा हुआ पक्षी आकाशमें अधिक देर तक नहीं उड़ सकता, अन्तमें उसे हारकर जहाजकी ही शरण लेनी होती है, उसी प्रकार आपके चरण-कमलोंके जहाजका अवलम्ब लेनेवाला जीव अन्यत्र कहीं भी एक क्षणको भी चैन नहीं पा सकता। जिस प्रकार मरुस्थलके मिथ्या मृगजल-पानेसे हिरनकी किंचित् भी प्यास नहीं बुझती, उसी प्रकार, "कृपालु" कहते है कि बिना विशुद्ध, उज्ज्वल, निष्काम प्रेमरस पान किये, सांसारिक विषय-रूपी मृगजल-पानसे थोड़ी भी शांतिका अनुभव नहीं हो सकता।

(५)

अहो हरि ! हौं पातक अवतार।
लटकत तव तनु रोम रोम प्रति, ज्यौं ब्रह्माण्ड अपार।
त्यौं हमरेहुँ शत-कोटि-अजामिल, रह प्रति-रोम मझार।
तुम, तुम्हार जन, कोटि यतन करि, हारे बार हजार।
पै हौं कियो सदा मन भायो, अंध-बधिर अनुहार।
मम पातक-दावानल सों अब, जरन चहत संसार।
यासों अब 'कृपालु' कछु सोचिय, याको द्रुत उपचार ।।

भावार्थ—हे श्यामसुन्दर ! मैं पापोंका मूर्तिमान् अवतार हूँ। जिस प्रकार आपके चिन्मय देहके प्रत्येक रोममें असंख्यों ब्रह्माण्ड लटकते रहते हैं,

इसी प्रकार हमारे शरीरके प्रत्येक रोम में असंख्यों अजामिल लटक रहे हैं। तुम और तुम्हारे रसिकजन हजारों बार, करोड़ों प्रयत्न करके हार गये, पर मैंने अंधे एवं बहरेकी भाँति सदा मनमाना ही किया। मेरे पापोंकी प्रदीप्त अग्निसे अब तुम्हारा सारा संसार भस्मीभूत होना चाहता है। "कृपालु" कहते हैं कि अब शीघ्र ही इसका कुछ उपाय सोचिए। अर्थात् अपने पतितपावन नामको सार्थक करते हुए मुझे अपना बनाइए।

(६)

अहो हरि ! सोचहु पाछिल बात।
विरद 'पतित-पावन' लहि पतितन, भयो जगत-विख्यात।
हौं पतितन-सरदार तदपि तुम, भूलि गये सो नात।
मोंहि अपुनो कछु सोच न नेकहुँ, तुमहिं सोचि पछितात।
इक हमरे कारण करुणामय, तुम्हरो विरद नसात।
मुक्ति 'कृपालु' न चह, चह बंधन, अलि बनि पद-जलजात॥

भावार्थ—हे श्यामसुन्दर ! पतितों की पिछली बातों का स्मरण कीजिए। पतितोंके द्वारा ही 'पतितपावन' की उपाधि प्राप्त करके तुम संसारमें प्रसिद्ध हुए हो। हम उन्हीं पतितोंके सरदार हैं, फिर भी तुम पतितोंकी कृतज्ञता भूल गये हो मुझे अपनी कुछ भी चिंता नहीं हैं। मैं तो तुम्हारे विरदको सोच-सोचकर मरा जा रहा हूँ। हे करुणाके भण्डार ! एक हमारे ही कारण तुम्हारा यह पतितपावन नाम नष्ट होना चाहता है। "कृपालु" कहते हैं कि मेरे कहनेका यह अभिप्राय नहीं है कि मैं केवल इन पापों से ही छुटकारा पाकर मुक्तिपद चाहता हूँ, वरन् मैं तो तुम्हारे युगल-चरण-कमलोंका भौंरा बनकर अनंतकालके लिए बन्धन ही चाहता हूँ।

(७)

अशरण-शरण ! शरण तव आयो ।
भटकत रह्यौं अनादि-काल ते,
ज्यौं अनाथ जग, अग-जग जायो ।
तजि तव चरण-कमल, कहुँ नेकहुँ,
एकहुँ पल कहँ कल नहिं पायो ।
गयौं हारि जब, दीन जानि मोहिं,
रसिक-जनन यह मरम बतायो ।
भुक्ति-मुक्ति-सुख भार डार अब,
बनि मधुकर चरनन लपटायो ।
जब 'कृपालु' ह्वै गयो तिहारो,
काल, कर्म, गुन सब खिसियायो ।

भावार्थ—हे अशरणशरण श्यामसुन्दर ! अब मैं तुम्हारी शरणमें आ गया हूँ । अनादिकालसे आजतक अनाथकी भाँति चराचरात्मक इस संसारमें बार-बार पैदा होकर सदा भटकता रहा । तुम्हारे परमानंदमय युगलचरणोंका परित्याग करके, कहीं एक क्षणको भी थोड़ा भी चैन नहीं पाया । जब सब प्रकारसे हार गया तब महापुरुषोंने मुझे दीन समझकर 'आपकी शरण में ही चैन है' यह रहस्य बताया । संसारके सुख एवं मुक्तिके सुखको भी सर्वथा परित्याग करके अब मैं आपके चरणकमलोंमें भौंरा बनकर लिपट गया हूँ । "कृपालु" कहते हैं कि मैं जबसे तुम्हारी शरणमें आकर तुम्हारा बन गया हूँ, तबसे काल, कर्म एवं तीनों गुण सब खिसियाकर हाथ मींज रहे हैं अर्थात् काल, कर्म, गुण इन सबका कुछ भी वश नहीं चलता ।

(८)

करिय पिय ! मोंहि भँवरा ब्रज मांहि ।
गुन-गुन-गुन-गुन, गुन-गन गावत, सेवा-कुंज सिरांहि ।
पी पराग वनमाल-लाल को, ह्वै मदमत्त भ्रमांहि ।
गुंजन करत कुंज-पुंजन हम, 'प्रिया मनावन जांहि ।'
मानिनि को सन्देश सुनावत, उर आनँद न समांहि ।
लहि 'कृपालु' रस युगल-माधुरी, मदिरा-मद बौरांहि ।

भावार्थ—हे श्यामसुन्दर ! मुझे अपने ब्रजधाममें भौंरा बना दीजिए । अपनी भाषामें गुन-गुन-गुन-गुन करते हुए, एवं आपके गुणोंको गाते हुए सेवा-कुंजमें हमारा जीवन व्यतीत हो । हे श्यामसुन्दर ! तुम्हारी वनमालाके पुष्प-परागका पान करके मतवाला होकर मैं चारों ओर घूमूं । प्रत्येक कुंजोंमें गुंजार करते हुए मैं मानिनी राधिकाजीको मनाने जाऊँ, एवं मांनिनी राधिकाजीका संदेश तुमको सुनाते हुए आनन्दमें विभोर हो जाऊँ । "कृपालु" कहते हैं कि इस प्रकार युगल-सरकारके मधुर प्रेमरसका पान करके, उस मदिरा के मदमें पागल हो जाऊँ ।

(९)

कहो हरि ! हम, तुमते कछु थोर ?
उत तव गुन अगनित, इत देखिय, अवगुन अगनित मोर ।
उत तव लीला ते जम कंपित, इत लखि मम अघ घोर ।
तुम रसिकन-सिरमोर इतै हम, विषयन-रस-सिरमोर ।
जबते तुम, तबते हम, तुम इक, हम है अमित करोर ।
तुम 'कृपालु' हारहुगे मोते, 'संधि करहु न तु दोर' ॥

भावार्थ—हे भगवान् ! हम तुम से किसी भी दृष्टिकोणसे कम नहीं । उधर तुम्हारे पास अनंत गुणों का भण्डार है, तो इधर हमारे पास भी गुणोंसे ही उत्पन्न अगणित अवगुणोंका भंडार है (गुणोंसे उत्पन्नका अभिप्राय हैं—सतोगुण, रजोगुण, तमोगुणोंसे उत्पन्न)। उधर तुम्हारी अघटित-घटना-पटीयसी योगमायायुक्त लीलासे यमराज काँपता है, तो इधर हमारे भी अगणित घोर पापोंको देखकर यमराज भयभीत हो रहा है। उधर तुम प्रेमरस-रसिकोंके सिरमौर हो, तो इधर हम भी सांसारिक-विषय-रस विषयीजनोंके सिरमौर हैं। अनादिकालसे तुम हो और तभीसे हम भी हैं। इतना सब होते हुए भी एक बातमें हम तुम से बढ़े हुए हैं, वह यह हैं कि तुम एक हो और हम असंख्य हैं। "कृपालु" कहते हैं कि इसलिए तुम मुझसे अवश्य हार जाओगे। तुम्हारी भलाई इसीमें है कि शीघ्रातिशीघ्र मुझसे संधि (मैत्री) कर लो।

(१०)

किशोरी ! मोरी अब न लगावो वार ।
माँगत भीख कृपा की केवल, खड़ो तिहारे द्वार ।
रसिकन-मुख अस सुनी 'दीन को, आदर येहि दरबार ।'
'देर होत अंधेर नहीं' बस, इहे रह्यौ आधार ।
बेर भये जनि जानेहु 'तजिहौं, हौं जड़, हठी, गँवार ।'
कहिहौं नहि 'कृपालु' काहू सों, आजाइय इक बार ॥

भावार्थ—हे अलबेली राधिके ! अब देर न करो। मैं तुम्हारे द्वार-पर खड़ा होकर केवल तुम्हारी कृपाकी भिक्षा माँग रहा हूँ। महापुरुषोंके मुखसे सुना है कि तुम्हारे दरवारमें दीनोंका सदा सम्मान हुआ करता है। फिर भी जो देर हो रही है इसे 'देर होती है अन्धेर नहीं', इस लोकोक्तिके अनुसार समझकर विश्वासपूर्वक आशा लगाये बैठा हूँ। किशोरीजी ! तुम्हारी कृपा पाने में कितनी ही देर क्यों न हो, पर तुम यह न समझना कि मैं देर होनेके कारण

तुम्हारा अवलम्ब छोड़ दूंगा। क्योंकि मैं पक्का जड़, हठी एवं मूर्ख हूँ। "कृपालु"ˎ कहते हैं कि हे किशोरीजी ! तुम चुपकेसे आकर मुझे दर्शन दे जाओ। यदि तुम्हें यह भय हो कि तुम और लोगोंसे कह दोगे, तो मैं वचन देता हूँ कि मैं किसी से नहीं कहूँगा।

(११)

किशोरी ! मोरी सुनिय नेकु इक बात।
हौं मानत 'हौं परम पातकी, विश्व-विदित विख्यात।'
पै यह कौन बात अचरज की ?, तव चरनन बिलगात।
कोउ इक मोंहि बताउ 'तुमहिं तजि, बिन पातक जग-जात।'
जेहि दरबार कृपा बिनु कारन, बटत रही दिन रात।
तेहि दरबार भयो अब टोटो, यह अचरज दरसात।
मोंहि 'कृपालु' कछु आपुन सोच न, तोंहि सोचि पछितात ॥

भावार्थ—हे वृन्दावनविहारिणी राधिके ! मैं आपसे एक छोटी-सी बात कहना चाहता हूँ, कृपया बुरा न मानते हुए सुन लीजिए। मैं स्वयं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि मैं समस्त संसार में प्रख्यात एवं सर्वश्रेष्ठ पापात्मा हूँ, पर साथ ही यह भी कहना चाहता हूँ कि तुम्हारे 'चरण-कमलों से विमुख होने के कारण इसमें आश्चर्य ही क्या है ? अनादिकालसे लेकर आजतक के इतिहासमें मुझे किसी एक जीवका भी नाम वता दीजिए' जो तुमसे विमुख होकर भी बिना पापके संसार में हुआ हो। आश्चर्य तो यह है कि जिस दरबारमें बिना कारण ही निरन्तर कृपाका वितरण हुआ करता था, आज उसी दरबारमें मुझ पतितके लिए कृपणता की जा रही है। "कृपालु" कहते हैं कि मुझे अपनी तो कोई भी चिंता नहीं, किन्तु तुम्हारे अपयशको सोचकर बार-बार शोक-सा हो रहा है। क्योंकि तुम्हारा यह अपयश मुझ अभागे पतितके द्वारा ही होगा।

(१२)

कौन हरि ! हमरो-तुम्हरो नात ?
तुम सोवत निज-लोक चैन ते हम रोवत दिन रात ।
हम पल छिन तुम बिनु नित तलफत, तुम नहिं पूछत बात ।
नैन निगोरे बरजत मोरे, और-और अकुलात ।
रोम-रोम नित याचत मोते, सुन्दर-श्यामल-गात ।
जानि 'कृपालु' कृपालु तोहिं हौं, प्रीति करी पछितात ।।

भावार्थ—हे श्यामसुन्दर । हमारा-तुम्हारा नाता ही क्या समझा जाय, जब कि तुम अपने गोलोकमें चैनसे सो रहे हो और हम तुम्हारे लिए निरन्तर रो रहे हैं । हम सदा एक-एक क्षण तुम्हारे मधुर-मिलनके लिए तड़पते रहते हैं फिर भी तुम बात नहीं पूछते । इन हठीले नेत्रोंको मैं जितना ही अधिक समझता हूँ उतना ही यह और व्याकुल होते हैं । कहाँतक कहें, प्रत्येक रोम-रोम मुझसे सलोने श्यामसुन्दरको माँगता है । "कृपालु" कहते हैं कि मैंने तुमसे, कृपा करनेवाला समझकर, प्रेम किया था, किन्तु अब तुम्हारी निष्ठुरताको देखकर मन-ही-मन पछता रहा हूँ ।

(१३)

दयामय ! अपनी ओर निहारो ।
हौं तो कुटिल, कुपूत सदा को, तुम, पितु-विरद विचारो ।
शिला-अहिल्या, पशु-वानर, गृह-श्वपच, आदि उर धारो ।
मम हिय-कुलिश, पतित-मति, पशु ते कर्म श्वपच-शत वारो ।
इक गुन रीझत गुन-गाहक ! इन, हमरे गुनन पसारो ।

जो कहु 'साधन-बल मम पद गहु', नहिं त्रिकाल निस्तारो ।
हम 'कृपालु' उन प्रभु को चेरो, 'जो बिनु हेतु हमारो' ॥

भावार्थ—हे दयामय श्यामसुन्दर ! हम तो अनादिकालके ही नीच एवं कुपुत्र हैं, पर आपको अपनी ओर देखना चाहिए। क्योंकि तुम्हारा विरद पतितपावन, अर्थात् पतितोंको पवित्र करनेवाला है। मैंने सुना है कि अहिल्या पत्थर थी, बानरगण पशु थे, गुह चाण्डाल था, उन सबको आपने अपने हृदयमें स्थान दिया है। अभिप्राय यह है कि आपको पत्थर, पशु और चाण्डाल अति प्रिय हैं, फिर मेरे पास तो यह तीनों ही वस्तु प्रचुर मात्रा में हैं। उदाहरणार्थ मेरा हृदय वज्रके समान (जो पत्थर से भी कठोर होता है), मेरी बुद्धि पशुओं से भी गिरी हुई एवं मेरे कार्य सैंकड़ों चाण्डालोंके समान हैं। गुणग्राहक-श्यामसुन्दर ! तुम जब उपर्युक्त एक ही गुणसे रीझ गये थे, तब तो तुम्हें रिझानेके लिए हमारे पास कई गुण हैं। अगर तुम कहो कि 'साधन-बलसे हमारे चरण-कमलों तक आ जाओ', तब तो तीनों कालमें हमारा निस्तार नहीं हो सकता। "कृपालु" कहते हैं कि हम तो उन दयामय प्रभुके दास हैं, जो बिना साधन आदिके कारण के ही हमारे हैं।

(१४)

दर्शन देना नन्द दुलारे !
नन्दनँदन नैनन के तारे।
लटकनि मोर-मुकुट की माथे,
चटकनि केशर-तिलक लिलारे।
अलकनि-झलक मनहुँ अवलिन-अलि,
जुरि-जुरि जाति जलज-मुख पारे।

सुधा-पयोनिधि मधि बिष-अम्बुधि,
मतवारे चंचल दृग वारे।
अम्बर-पीत दिपत दुति-दामिनि,
भृगु-पद गुंज-माल गल धारे।
कटि कमनीय-काछनी काछे,
कर-मुरली अंगुरीन सहारे।
हाय! कबहुँ झूमत सखि। मो ढिग,
प्रीतम अइहैं प्राणपियारे!!
अब 'कृपालु' को बेगि मिलहु पिय,
नाहिं त जात ये प्राण हमारे॥

भावार्थ—हे नन्दनन्दन! हे नयनोंके तारे, नन्ददुलारे! शीघ्र निम्नलिखित श्रृंगारसे युक्त होकर दर्शन दीजिए। तुम्हारे सिरपर मयूरपङ्खका मुकुट झोंके खा रहा है। ललाटपर चन्दन और केशरका तिलक लगा है। घुंघराली अलकें, मानो भौंरोंका झुंड इकट्ठा हो-होकर मुखरूपी कमल पर जा रही हैं। तुम्हारी आँखें मतवाली हैं, तथा अमृत के समुद्रके(आँख की सफेदीके) बीचमें विषका समुद्र (कालिमा) हो—तात्पर्य यह कि तुम्हारी आँखोंमें अमृत, विष, मदिरा भरी हुई हो और साथ ही चंचल भी हों। बिजलीकी चमकके सदृश पीताम्बर फहरा रहा हो, हृदय में भृगु महाराजका चरणचिन्ह हो। गुंजमाल पहने हों। कमरमें सुन्दर काछनी कछी हो। हाथ में अंगुलियोंके सहारे मुरली लिए हो। हाय! क्या कभी वह दिन भी आयेगा जब उपर्युक्त श्रृंगारसे युक्त प्राणाधिकप्रिय प्रियतम श्यामसुन्दर, हे सखी! झूमते हुए हमारी ओर आयेंगे। "कृपालु" कहते हैं कि हे प्रियतम! अब मुझसे शीघ्र ही मिलिए अन्यथा मेरे प्राण निकल जायेंगे।

(१५)

दीनानाथ ! मोंहि काहे बिसारे ?
हमरिंहि बार मौन कस धारे ?
नाथ ! अगति के गति ! अनाथ हम,
कहहु कवन गति मोरि बिचारे।
गणिका, गीध, अजामिल, आदिक,
सुनत अमित पतितन तुम प्यारे।
इन सम अगनित-पतित रोम-प्रति,
वारत पतित-विरद-रखवारे।
दंभ कोटि-शत-कालनेमि सम,
कोटिन रावन-सम मद धारे।
लाजहु जासु लजाति अधम अस,
हैं, न हुए, न तु ह्वैहैं भारे।
कौने मुख 'कृपालु' प्रभु सन कछु,
कहिय ? नाथ ! अब हाथ तिहारे॥

भावार्थ—हे दीनानाथ ! तुमने मुझे क्यों भुला दिया ? हमारी ही बार कैसे मौन धारण कर लिया ? हे नाथ ! हम अनाथ हैं और तुम अगति-के गति हो। बताओ तो सही, तुमने हमारे लिए क्या सोचा है ? गणिका (वेश्या), गीध, अजामिल इत्यादि अनंत पापियोंसे तुमने प्यार किया है, ऐसा सुनता हूँ। किन्तु हे पतितों की रक्षा का भार लेनेवाले ! पतित-पावन विरदको धारण करनेवाले ! इन सरीखे तो अनंत पापी मेरे प्रत्येक रोमपर निछावर किये जा सकते हैं। फिर मेरा क्या होगा ? सैकड़ों करोड़ कालनेमिके समान

मेरे अंदर पांखंड भरा हुआ है, एवं करोड़ों रावणके समान अभिमानी भी हूँ। कहाँतक कहूँ, जिसके पापों को देखकर लज्जा भी लज्जित होती है। मुझ सरीखा पापी न तो इस समय है, न पहले हुआ था, न तो आगे ही हो सकता है। "कृपालु" कहते हैं कि मैं इतना बड़ा अपराधी हूँ कि कौनसा मुँह लेकर आपके सामने कुछ कहनेका अधिकार रखूं। हे नाथ! अब आपहीके हाथमें सब कुछ है, चाहे अपनाइए, चाहे ठुकराइए।

(१६)

दीन की सुनलो दीनानाथ !
साधन-हीन, मलीन, छीन हौं, सब विधि नाथ ! अनाथ।
श्रद्धा-बल-संबल नहि नेकहुँ, नहि सन्तन को साथ।
बूड़त हौं भवसिन्धु दयामय !, पकरि लेहु अब हाथ।
सातस्वर्ग, अपवर्ग न माँगत, रह तव-पद, मम-माथ।
दै निज प्रेम 'कृपालु' ! 'कृपालुहि', करिये नाथ ! सनाथ।

भावार्थ—हे दीनोंके नाथ श्यामसुन्दर ! मुझ दीनकी टेर सुन लो। क्योंकि मैं समस्त साधनोंसे रहित, पापमय, एवं दुःखिया हूँ। कहाँतक कहूँ, हे नाथ ! मैं सब प्रकारसे अनाथ हूँ। मेरे पास श्रद्धाका लवलेश भी बल नहीं, एवं महापुरुषोंका नित्य साथ भी नहीं। हे दयामय ! अब मैं इस अगाध भवसागरमें डूब ही सा रहा हूँ। कृपा करके अब शीघ्र ही डूबते हुएको, अपने हाथों का सहारा देकर बचालो। मैं सातों स्वर्गके सुखोंको एवं मोक्षके सुखको भी नहीं चाहता। मैं तो केवल यही चाहता हूँ कि मेरा सिर सदा आपके युगलचरणोंमें पड़ा रहे। "कृपालु" कहते हैं कि हे श्यामसुन्दर ! अब तुम अपना निष्काम-प्रेम मुझे देकर सदाके लिए निष्काम कर दो।

(१७)

नाथ ! हौं गयौं सबै-बिधि हार।
धरि-धरि स्वाँग लक्ष-चौरासी, नाच्यौं अगनित बार।

मात-पिता-बनितादिक झूठेंहि, जोरे नात हजार।
'यह मेरो' 'यह तेरो' करि करि, सिगरो लियो बिगार।
त्रिगुण पाश लै आपुहिं, अपनेंहि, कर गर फाँसी डार।
पै 'कृपालु' चह मुक्ति न, बंधन, तव पद-कमल मझार।।

भावार्थ—हे श्यामसुन्दर ! अब मैं सब प्रकारसे हारकर थक गया हूँ। स्थावर-जंगम-स्वरूप चौरासी-लाख योनियोंका भिन्न-भिन्न स्वाँग बनाकर इस मायाके रंगमंचपर अनन्त बार नाच चुका। माता, पिता, स्त्री इत्यादि सांसारिक संबंधियोंसे झूठ-मूठ ही अपना संबंध अनंत बात जोड़कर अपने-आपको धोखा दे चुका। 'यह पदार्थ मेरा है' तथा वह पदार्थ तुम्हारा है', ऐसी मिथ्या कल्पनाएँ करके अपना आदि-अंत सब-कुछ बिगाड़ चुका। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण इन तीन गुणोंकी रस्सी लेकर अपने-आप ही अपने गलेमें फाँसी डाल चुका हूँ। किन्तु "कृपालु" कहते हैं कि मैं केवल इस फाँसीसे छूटना नहीं चाहता, अर्थात् केवल मोक्षपद ही नहीं चाहता, वरन् तुम्हारे चरणकमलोंमें वही उपरोक्त बंधन चाहता हूँ।

(१८)

नाथ ! मोंहि कीजै दासन-दास।
तिनको दरस, परस नित पाऊँ, छिन-छिन को सहबास।
तन, मन, धन सों सदा एक-रस, सेऊँ सहित हुलास।
सुनत, करत, सतसंग अनवरत, जग सों रहूँ उदास।
निर्भय रहूँ कृपा ते तिनकी, लहूँ प्रेम सुख-रास।
माँगत भीख 'कृपालु' कृपा करि, पुरवहु मम अभिलास।

भावार्थ—हे श्यामसुन्दर ! मुझे अपने दासों-का-दास बना लीजिए। जिनके दर्शन एवं स्पर्शको निरन्तर पाकर, अति प्रसन्नतापूर्वक तन, मन,

धनसे निरन्तर एकरस होकर सेवा करता रहूँ । उनका निरन्तर सत्संग सुनते एवं करते हुए संसारकी समस्त वासनाओंसे पूर्ण उदासीन हो जाऊँ । उनकी कृपासे सदा निर्भय रहते हुए समस्त सुखोंकी राशि स्वरूप मिष्काम-प्रेम प्राप्त कर सकूँ । "कृपालु" कहते हैं कि मैं भिक्षुक बनकर उपर्युक्त भिक्षा माँग रहा हूँ । कृपया प्रदान करके मेरी इच्छाको पूर्ण कीजिए ।

(१९)

पिया ! मोहिं प्रेम-दान जनि दीजै ।
मधुर-मिलन लगि बिकल प्राण रह, बिरह-अगिनि तनु छीजै ।
प्राण जायं जब, पंचतत्व तनु, निज परिकर कर लीजे ।
प्रिया-मिलन दृग जलसों,'जल'मिलि,'भूमि' चरण-रज कीजै ।
कमल नयन बिच 'तेज','पवन' मिलि,साँसन जेहि पिय जीजै ।
मिलि 'अकाश' जहँ महारास-रस, लली-लाल नित भीजै ।
रह्यो 'प्राण' सो प्राणनाथ को, क्यौं 'कृपालु' कर मीजै ?

भावार्थ—एक विरहिणी अत्यंत चतुराईपूर्वक कहती है कि हे प्रियतम ! मैंने सुना है कि आपको प्रेमदान करनेमें बड़ा ही कष्ट होता है । इसलिए मैं प्रेम नहीं चाहती । प्रेम न चाहनेका दूसरा कारण यह भी है कि प्रेमिका प्रेम प्राप्त कर लेनेपर प्रियतम के मधुर-मिलनके लिए परमव्याकुल रहती है, एवं उसका तन, मन, प्राण सभी विरहकी आग में जलता रहता है । मैं तो तुमसे यही याचना करती हूँ कि जब मैं मर जाऊँ, तब मेरे शरीरके पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, इन पाँच तत्वोंको मेरे कथानुसार तुम सदाके लिए अपना परिकर (दास) बना लो । मेरे शरीरका जल-तत्व आपकी आँखोंकी उस जलधारामें जाकर मिल जाय, जो किशोरीजीके मिलन के समय आनंदमें तुम्हारी आँखोंसे निकलती है । मेरा पृथ्वी-तत्व आपके चरणकमलोंकी धूलिमें मिल जाय । हे प्रियतम ! इसी प्रकार मेरा तेज-तत्व आपके कमल नेत्रोंमें, एवं वायु

तत्व आपके स्वाँसोंमें मिल जाय। एवं मेरा आकाश-तत्व उस दिव्य सेवाकुंजमें मिल जाय, जहाँ तुम एवं किशोरीजी प्रेमविभोर होकर अनंत सखियों के साथ नित्य ही महारासके रसमें डूबी रहती हैं। "कृपालु" कहते हैं कि यदि कोई अनजान यह कहे कि विरहिणीको अपने शारीरिक पंचतत्वों की इतनी चिन्ता है, पर प्राणोंकी बिल्कुल नहीं, तो इसका उत्तर यह है कि प्राण तो मेरा है ही नहीं वह तो प्राणनाथ श्यामसुन्दरका है। उसे वे शरीर छोड़नेके बाद स्वयं अपने पास बुला लेगें, उसकी मुझे क्या चिंता।

(२०)

प्रभुजी ! भले, बुरे हम तेरे।

उदर भरे पर महा आलसी, सोवत साँझ सबेरे।
काम, क्रोध अरु ममता, तृष्णा, रहत सदा नित घेरे।
माया-वश सब जनम गँवायो, भटक फिरे बहुतेरे।
तुम बिनु कौन सहायक मेरो, बैरी बहुत घनेरे।
दास 'कृपालु' आश तजि सबकी, भये श्याम के चेरे॥

भावार्थ—हे श्यामसुन्दर ! हम अच्छे या बुरे जैसे भी हैं तुम्हारे हैं। पेट भरनेपर अत्यन्त आलस्यसे युक्त होकर सांयकाल से प्रातःकाल तक सोते रहते हैं। हे नाथ ! काम, क्रोध, ममता, एवं लालच आदि ने मेरे ऊपर पूर्ण अधिकार जमा रखा है। आपकी मायाके वशीभूत होकर सारा जीवन इधर-उधर भटककर व्यर्थ ही गँवा दिया है। तुमको छोड़कर दूसरा कोई भी मेरी सहायता करनेवाला नहीं है। सभी स्वजन बनकर शत्रुकी भाँति स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं। "कृपालुदास" तो सभी आंशाओंको छोड़कर एवं सबसे संबंध तोड़कर श्यामसुन्दरके दास हो गये हैं। वे अच्छे, बुरे जैसे भी हैं, अब एकमात्र हमारे हैं।

(२१)

बात इक सुनो कान्ह ! दै कान ।
हम अभिमानी सदा-सदा के, माया माँहि भुलान ।
तुम्हरी बिनु अनुकम्पा तुम कहँ, कौन सक्यौ है जान ?
बिनु जाने, माने किमि, यामें, अचरज कौन महान ?
पुनि बिनु माने, मनमाने बनि, करत विषय को घ्यान ।
हम 'कृपालु' मतिमंद, आपुनो, दोष सकत नँहि मान ।।

भावार्थ—हे श्यामसुन्दर ! मैं एक बात कहता हूँ, कान खोलकर सुन लो । मैं मानता हूँ कि मैं अनादिकालसे ही तुम्हारी मायामें भूला हुआ, अभिमानवश तुम्हारी शरणमें नहीं आया । पर मैं यह पूछता हूँ कि बिना तुम्हारी कृपाके तुमको आजतक कौन जान सका है और बिना जाने यदि तुम्हें कोई नहीं मानता तो इसमें आश्चर्य ही क्या है । जब तुमको कोई नहीं मानेगा तो स्वभावतः ही मनमाना बनकर सांसारिक विषयोंकी ओर उन्मुख होगा । "कृपालु" कहते हैं कि महाराज बुरा न मानियेगा, हम अत्यन्त मूर्ख हैं । । अतएव जबतक तुम अकारण-कृपा न करोगे, हम अपना दोष भी माननेको तैयार न होंगे । सदा तुमको ही सदोष कहेंगे ।

(२२)

'बार' कत करति हमारिहिं बार ।
'राधे-नाम सुनत ही धावति, सरल-सुभायन हार' ।
यौं रसिकन मुख कहत सुन्यौं पुनि, क्यौं निष्ठुरता धार ।
हौं तो कुटिल अनादि-काल को, अमित-अधन-अवतार ।
पै तुम जो बिनु-हेतु-सनेहिनि, वाको मोंहि विचार ।
ताहूते 'कृपालु' बड़ चिंता, 'रसिक कहाउ लबार' ।।

भावार्थ—हे महाभावस्वरूपिणि राधे ! हमारी ही बार इतनी देर क्यों कर रही हो ? तुम तो अपने सरल-स्वभाव-वश 'राधे' नाम सुनते ही अति अधीर होकर पतितोंके पास आ जाया करती हो, ऐसा महापुरुषोंके मुखसे कहते हुए सुना है, फिर इतनी निठुराई क्यों धारण कर ली है ? मैं यह मानता हूँ कि मैं अनादिकालका ही पतित हूं । सचमुच पूछा जाय तो मैं अनन्त पापोंका साक्षात् अवतार ही हूँ, पर फिर भी तुमको बिना कारण ही प्रेम करनेवाली सुनकर मुझे आश्चर्य होता है । "कृपालु" कहते हैं कि इससे भी बड़ी चिंता मुझे इस बातकी है कि तुम्हारे रसिकजन लबार कहलायेंगे, उनकी बातका विश्वास संसार से उठ जायेगा ।

(२३)

बेर भई टेरत नन्दकुमार !
द्वार परो रिरियात पतित इक, तुम 'पतितन-रखवार' ।
संतन कहत पतित-पावन तोंहि, पुनि कत करत अबार ?
सोये जाय क्षीरसागर या, कान तेल लिय डार ?
अथवा भयो समाप्त तिहारो, करुणा को भण्डार ?
या किय मान 'कृपालु' मानिनिहिं, रिझवत कुंज मझार ।

भावार्थ—हे नन्दकुमार ! तुम सरीखे पतितोंकी रक्षा करनेवालोंके होते हुए भी तुम्हारे द्वारपर मुझ पतित पर रोते, गिड़गिड़ाते एवं पुकारते हुए बड़ी देर हो रही है, फिर भी तुम नहीं सुन रहे हो । महापुरुष तुमको पतितपावन नामसे पुकारते हैं, फिर भी तुम अपना नाम सार्थक करने में देर कर रहे हो । हे श्यामसुन्दर ! क्या महाविष्णु बनकर महाप्रलयके पहले ही क्षीरसागर में सो गये अथवा अपने दोनों कानोंमें तेल डाल लिया हैं जो हमारी करुण-पुकार नहीं सुन पा रहे हो अथवा तुम्हारा करुणा का कोष ही अब समाप्त हो गया है । "कृपालु" कहते हैं कि उपरोक्त बातें तो श्यामसुन्दरके विषयमें

सोची भी नहीं जा सकती। हाँ, यह संभव है कि किशोरीजीने मान किया हो, एवं उन्हींको प्रसन्न करनेके हेतु ब्रजकी निकुंजमें मनानेमें संलग्न हों।

(२४)

मोंहि तो भरोसो है तिहारो री किशोरी राधे !
हौं जस अधम, तुमहिं इक जानति,
और न जान नहारो री किशोरी राधे !
भुक्ति-मुक्ति नहिं माँगत केवल,
अपनो जानि निहारो री किशोरी राधे !
'भयो तिहारो' जानि राधिके !
ह्वै जैहौं मतवारो री किशोरी राधे !
पुनि कहँ रह अवकाश विषय को,
चार पदारथ खारो री किशोरी राधे !
तुम 'कृपालु' सरकार हमारी,
प्यार करो या मारो री किशोरी राधे !

भावार्थ—हे रासेश्वरी राधे ! मुझे तो एकमात्र तुम्हारा ही अवलम्ब है। मैं जिस कोटिका पतित हूँ, उसे तुम्हारे सिवा और कोई भी सांसारिक जीव नहीं जानता। संसारके सुखोंसे लेकर मोक्षपर्यन्तका कोई भी सुख मैं नहीं मांगता। केवल यह माँगता हूँ कि तुम मुझे अपना समझकर अपनी कृपामयी दृष्टिसे मेरी ओर देखो। जब मैं यह समझ लूँगा कि तुमने मुझे अपना बना लिया है, तब मैं आनन्द में विभोर होकर उन्मत्त हो जाऊँगा। जिसके परिणामस्वरूप सांसारिक विषय-वासनाएँ अपने-आप सदाके लिए परिसमाप्त हो जायेंगी, एवं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चारों पदार्थ भी खारे लगने लगेंगे। "कृपालु" कहते हैं कि हे किशोरीजी ! तुम हमारी स्वामिनी हो और सदा रहोगी, चाहे मुझे अपना समझकर प्यार करो चाहे पैरोंसे कुचलो।

(२५)

राधे ! मोंहि चरण-कमल-रज कीजै ।
तुव मानिनि हित पिय दृग-जल सों, जा पद-रज नित भीजै ।
जा पावन-पद-रज पावन को, कमला हू कर मींजै ।
जेहि लगि विधि बरदान माँगि कह, 'नाथ ! सोइ रज दीजै' ।
'बिनु-कारण करुणा-कारिणि तुम', मम पुकार सुनि लीजै ।
अंध 'कृपालु' पाय दृग जब ही, तब ही सही पतीजै ॥

भावार्थ—हे रसिकनजीवनमूरि राधिके ! मुझे अपने युगल-चरणकमलोंकी धूलि बना दीजिए । तुम जब मान करोगी तथा श्यामसुन्दर तुम्हारे चरणोंपर सिर रखकर रोते हुए मनाने जायेंगे, तब मैं चरणधूलि बनी हुई प्रियतमके आँसुओंसे भीजा करूँगी । जिस पवित्र चरणधूलिके लिए महालक्ष्मी क़रोड़ों कल्प तप करके भी लालायित रहती है, एवं हाथ मींजती रहती है । जिस चरणधूलिके लिए सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा वरदान माँगकर बड़भागी बनते हैं, वही तुम्हारी चरणधूलि मैं भी बनना चाहती हूँ । तुम अकारण ही दया करनेवाली हो, अतएव मेरी इस पुकारको अवश्य ही सुन लो । "कृपालु" कहते हैं कि 'अंधा जब आँख पाय तब पतियाय' इस लोकोक्तिके अनुसार जब तुम मेरी पुकार सुन लोगी एवं मुझें अपने चरणोंकी धूल बना लोगी, तब ही मुझे तुम्हारे अकारण-करुण नामपर विश्वास होगा ।

(२६)

श्याम ! हौं कब ब्रज बसिहौं जाय ।
श्यामा-श्याम-नाम-गुन गावत, कब नैनन झरि लाय ।
कब बिचरौं गहवर-बन-बीथिन, राधे ! राधे ! गाय ।
कब झूमत वृन्दावन-कुंजनि, फिरौं हिये हुलसाय ।

कब लपटाय लतन-गोवर्धन, कहौं हाय ! पिय हाय !!
कब लोटत 'कृपालु' ब्रज-रज बिच, हौं जैहौं बौराय ॥

भावार्थ—हे श्यामसुन्दर ! वह दिन कब आयेगा जब मैं सदाके लिए ब्रजमें ही जाकर निवास करूँगा। कब राधा-कृष्णके विविध नाम एवं गुण गाते हुए मेरी आँखोंसे निरंतर अश्रु प्रवाह बहेगा। कब गह्वरवनकी गलियों में प्रेमपूर्वक 'राधे, राधे पुकारते हुए विचरण करूँगा। कब वृन्दावनके कुञ्जोंमें उल्लासभरे भावोंसे झूमते हुए फिरूँगा। कब गोवर्धनकी लताओंका आलिङ्गन करके, अत्यन्त अधीर होकर तुम्हारे मधुर-मिलनकी आकांक्षा में 'हाय ! पिय हाय !!' ऐसा कहूँगा। "कृपालु" कहते हैं कि कब ब्रजकी धूलमें लौटते हुए मैं प्रियतमके प्रेममें बिभोर होकर वास्तविक पागल बन जाऊँगा।

(२७)

हमारी राधे दीनन की रखवार।
दीन-पुकार सुनत ही धावति, तनिक न लावति बार।
जोगी, जपी, तपी साधन-बल, खोजत निपट गँवार।
पंच-प्रपंच न छूटत रंचक, बहे सिद्धि मझधार।
जेहि रस लगि हरि, हर तरसत सो, बरसत येहि दरबार।
पियत 'कृपालु' सोइ रस, जापर, कृपा करति सुकुमार।

भावार्थ—हमारी कीर्ति-कुंवरि राधिका दीनोंकी रक्षाके हेतु सदा कटिबद्ध होकर तैयार रहती हैं। दीनोंकी करुण-पुकारको सुनते ही तत्क्षण ही विह्वल होकर उसके पास आ जाती हैं। अष्टांग-योग करनेवाले, विविध प्रकार के जप करनेवाले, एवं घोर तपश्चर्या करनेवाले मूर्खतावश अपनी साधना के बलसे तुमको पाना चाहते हैं। किन्तु उनकी पञ्च-ज्ञानेन्द्रियोंके विषयोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति नहीं हो पाती, एवं वे अणिमा, लघिमा, गरिमा आदि अष्ट-

महासिद्धियोंके चक्करमें पड़कर अपने लक्ष्यको खो बैठते हैं। जिस प्रेमरसके लिए विष्णु, शङ्कर आदि भी तरसते हैं, वही प्रेमरस इस दरबार में दीनोंके लिए अकारण ही बरसता रहता हैं। "कृपालु" कहते हैं कि इस रसका पान वही कर सकता है, जिसपर तुम अकारण ही कृपा कर देती हो।

(२८)

हमारी निधि, श्री वृषभानुदुलार।
जाकी भृकुटि-विलास विलोकत, नागर नन्दकुमार।
ब्रज बीथिन बिच भयो बावरो, 'राधे ! राधे !' पुकार।
बिकल नैन दिन-रैन दरस बिनु, छिन-छिन पंथ निहार।
भाग मनावत आपुन 'कबहुँक, लखौं चरन एक बार'।
निज आराध्य 'ब्रह्म' दुर्गति लखि, लाजत ज्ञानि गमार।
मम 'कृपालु' आँधे की लाकरि, राधे नाम अधार॥

भावार्थ—हमारी निधि तो एकमात्र वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिकाजी हैं, जिनकी भृकुटि-विलासको ब्रह्म श्रीकृष्ण भी नित्य देखता रहता है (जिनकी भौहोंके इशारेपर ब्रह्म भी दास बनकर चलता रहता है)। ब्रजकी गलियों-गलियों में दीवाना होकर वही ब्रह्म 'राधे, राधे' की पुकार किया करता है, एवं जिन राधिकाजीके दर्शनके लिए दिन-रात व्याकुल होकर बिरही बना हुआ मग जोहता रहता है। जिन राधिका के एक बार भी चरण-कमलों के दर्शन के लिए अपना भूरि भाग्य मनाया करता है। वही वृषभानुनन्दिनी राधा हमारी सर्वस्व हैं। ज्ञानीजन अपने आराध्य 'ब्रह्म' की उपर्युक्त दुर्दशाओं को देखकर अज्ञानता-वश लज्जित होते हैं। "कृपालु" कहते हैं कि मुझ अन्धेके लिए तो राधे नाम रूपी लठियाका ही एकमात्र सहारा है।

(२९)

हमारी स्वामिनि राधे रानी।
श्री व्रषभानुकिशोरी भोरी, सरल प्रेम-सुख-खानी।
श्रीबरसानो नित्य धाम, अरु, वृन्दावन रजधानी।
सखिन-जूथ सँग नित प्रति नव-रस, बरसावति मनमानी।
ताल, तमाल, रसाल बोल नित, 'राधे ! राधे !' बानी।
सिंहासन-आरूढ़ चलति जब, करत ब्रह्म अगवानी।
लखि'कृपालु'बलि जात कहत'जय,जयति-जयति महारानी'॥

भावार्थ—हमारी स्वामिनी वृषभानुनन्दिनी श्रीराधारानी हैं। जो अत्यंत भोली-भाली सरलहृदया एवं प्रेमसुखकी खानि हैं। उनका नित्य निवास-धाम श्रीबरसाना है, एवं उनकी राजधानी वृन्दावन है। वे करोड़ों सखियोंके साथ सदा नित्य नूतन मनमाने ढङ्गसे रास-रस बरसाती हैं। उनके धाममें स्थावर, ताल, तमाल, आम्र आदिके वृक्ष भी निरन्तर 'राधे' राधे' की रटना लगाये रहते हैं। एवं जब हमारी स्वामिनी श्रीवृषभानुनन्दिनी सिंहासन पर बैठकर चलती हैं, तब पूर्णतम पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण उनका स्वागत करते हैं। "कृपालु" कहते हैं कि स्वागत करते हुए ब्रह्मको देखकर मैं बलि-बलि जाता हूँ, एवं बार-बार महारानी राधारानी की जयजयकार बोलता हूँ।

(३०)

हमारी सुधि, लीजो भानु-दुलार।
हमरे कछु साधन-बल नाहीं, अति जड़, कुटिल, लवार।
भ्रमत उदर-हित नाम-ओट नित, ज्यौं कूकर सब द्वार।

समुझत जगत 'रसिक' मोंहि साँचो, तुम उर जाननिहार।
सुन्यौं कान, 'पतितन अपनावति, शरण गये सुकुमार।
पुनि 'कृपालु' क्यों भई निठुर अब, एक कृपालुंहि बार।

भावार्थ—हे निकुंजविहरिणी राधे ! हमारी भी खबर लीजिए। हमारे पास किसी प्रकारका कर्म, योग आदि साधन-बल नहीं है। मैं अत्यन्त हठी, दुष्ट एवं बातें बनानेवाला ही हूँ। पेट पालनेके लिए आपके नामकी ओट लेकर दिन-रात कुत्ते की तरह सभी संसारी जीवोंके द्वारपर घूमा करता हूँ। भोले-भाले संसारके जीव मुझे सचमुच ही महापुरुष समझते हैं, किंतु हे किशोरीजी ! तुम तो हृदयकी जाननेवाली हो, तुमसे क्या छिपा है ? रसिकोंके मुखसे सुना है कि आपकी शरणमें कोई भी महान्-से-महान् पतित भी चला जाता है तो उसे आप सदाके लिए अपना बना लेती हो। "कृपालु" कहते हैं कि यदि यह सच है तो तुम एक 'कृपालु' की ही बार इतनी निष्ठुर कैसे हो गयीं, तुमको तो साधारण जीव भी भोली एवं सरल जानता है।

(३१)

हमारी राधे, अति भोरी सरकार।
हठि-हठि दीन-जनन अपनावति, देति प्रेम-उपहार।
विधि-निषेध को भेद मिटावति, प्रणत भये इक बार।
निज परिकर बिच करि किंकरि नित, राखति रास मझार।
निगमागम मुख तकत रहत जो, कहत अगम्य, अपार।
लली 'कृपालु' अपेलि करति इम, सरल-सुभायन हार॥

भावार्थ—हमारी स्वामिनी श्रीवृषभानुनन्दिनी अत्यन्त ही भोली-भाली हैं। वे बरबस शरणागत दीनजनों को अपना बना लेती हैं, एवं उसे विशुद्ध-

प्रेम-दान कर देती है। वेदमें कहे गये विधि-निषेध अर्थात् कर्तव्याकर्तव्यके झगड़ोंसे अलग कर देती हैं। केवल एकबार उनकी शरणमें हो जाय। वे अपनी दिव्य सखियों के परिकर में उस शरणागतको दासी बनाकर निरंतर ही महारास-मण्डलमें रख लेती हैं। वेद एवं शास्त्र जो कि किशोरीजीको अगम्य एवं अपार कहते हैं, वे किंकर्तव्य-विमूढ़-से होकर आश्चर्तचकित हो जाते हैं। "कृपालु" कहते हैं कि किशोरीजी अपने सरल स्वभाव एवं भोलेपनके कारण ही वेदों-शास्त्रोंके विपरीत इस प्रकारकी घांधली-रूप कृपा करती हैं।

मुरली-माधुरी

(१)

अली ! यह मुरली बुरी बलाय ।
भई बाबरी गोपिन डोलति, जनु कोउ मूठि चलाय ।
कोउ धावति, कोउ दृग झरि लावति, कोउ करति मुख हाय !!
लोक-वेद-कुल-कानि-आनि तजि, गई कोउ बौराय ।
आनन धरे हिरन तृन, कानन, नेकु न सकेउ चबाय ।
शुक, सनकादि, शंभु आदिक जे, तेउ समाधि भुलाय ।
बधिर 'कृपालु' करत कत अचरज ! जो न ठगोरी आय ।।

भावार्थ—एक गोपी कहती है कि यह मुरली तो बुरी बला है । इसकी तान सुनकर समस्त ब्रज-गोपियाँ दीवानी-सी बनकर डोलती रहती हैं । जैसे किसीने इनपर जादू कर दिया हो । कोई गोपी भागती है, कोई घरसे न निकल सकनेके कारण आँसू बहाती हैं, एवं कोई मुरलीकी तान सुनते ही अपने मुखसे हाय ! हाय ! ! कहती हैं । कोई तो लोक-परलोकका ध्यान छोड़कर वास्तवमें ही पागल हो जाती हैं । वनमें मृग अपने मुखमें घास रखकर न तो उसे चबा ही सकते हैं और न उगल ही सकते हैं । बड़े-बड़े ज्ञानी शुकदेव, सनकादिक एवं शङ्करादिक भी अपनी-अपनी समाधि भूल गये । "कृपालु" कहते हैं कि तू बहिरा होनेके कारण यह आश्चर्य मत कर कि मैं तो मुरलीकी ठगाईमें नहीं आया ।

(२)

मधुर-धुनि मुरलि बजावत कान्ह ।
धुनि सुनि विधि,हरि,हर, सब मोहे,छुट्यो ज्ञानि-जन ध्यान ।
जंगम जीव, भये जड़ सिगरे, जड़, जंगम सुनि तान ।
जो जैसेहिं, तैसेहिं उठि धाईं, गोपिन तजि कुल-कान ।
नभ तारागन, चंद्रादिक कहं, निज-निज गतिहिं भुलान ।
एक ‘कृपालुहिं’ बच्यौ जगत महँ, निश्चल शैल समान ।

भावार्थ—श्रीश्यामसुन्दर अत्यन्त ही मीठे स्वर में वंशी बजा रहे हैं, जिसकी ध्वनि सुनकर ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर आदि सभी मुग्ध हो गये, एवं ब्रह्मलीन ज्ञानियों के समाधिस्थ ध्यान छूट गये । पशु-पक्षी आदि चलने-फिरने-वाले जीव जड़ के सामने ठगे-से खड़े रह गये ।पत्थर आदि जड़ जीव जंगमकी भाँति पिघल-पिघलकर बहने लगे । मुरलीकी तान सुनकर ब्रज-गोपियोंने भी कुलकी मर्यादा खो दी, एवं वह जिस अवस्था में थीं उसी अवस्थामें उठकर भागती हुई श्यामसुन्दर के पास पहुँच गईं । आकाश में स्थित तारागण एवं चन्द्रमा आदि भी अपनी-अपनी गति को भूल गये । "कृपालु" कहते है कि समस्त संसार में अकेला मैं ही निश्चल पर्वतकी तरह स्थित रहा । मेरे ऊपर मुरलीका कोई प्रभाव नहीं पड़ सका ।

(३)

श्याम ! तोरी मुरली ने जुलम करी ।
धुनि सुनि नर, किन्नर, सुर मोहे, शिव, समाधि बिसरी ।
तुम जो रची वेद-मर्य्यादा, सो सब खोय धरी ।
बंश-वंश, बन-वास, आठ-मुख, अन्तर पोल परी ।

इतनेहुँ पै इतराति, निलज अति, नगन देह सिगरी।
नहिं 'कृपालु' कछु दोष बंसरी, मुँहलग कीन हरी॥

भावार्थ—एक गोपी कहती है कि हे श्यामसुन्दर! तुम्हारी मुरलीने तो बहुत ही ऊधम कर डाला है। इस मुरलीकी तानसे नर, किन्नर देवता आदि सभी अपने आपको भूल गये, यहाँतक कि शङ्करजी की निर्विकल्प समाधि भी भङ्ग हो गयी। हे श्यामसुन्दर! तुमने जो वेदोंमें मनुष्योंके लिए वर्णाश्रम व्यवस्थाकी मर्यादा बनाई थी, इस मुरलीने उसे बिलकुल ही नष्ट कर दिया। यद्यपि इस मुरलीका कुल बाँसका है, एवं निवास जंगलका है, आठ छेद हैं, अन्तःकरण छूछा (पोला) है, स्वयं नंगी हैं; फिर भी यह निर्लज्ज हम सबको देखकर अत्यन्त ही इतराती है। "कृपालु" कहते हैं कि इसमें वंशी का कोई दोष नहीं, दोष तो श्यामसुन्दरका है जिन्होंने इसको मुंहलगी करके ढीठ बना दिया है।

बाललीला-माधुरी

(१)

अजिर महँ बिहर, 'ब्रह्म साकार ।'
घुटुवनि चलत नवनि-मुख-मण्डित, दीठि दिठौना धार ।
कबहुँक चलत 'मन्दगति' कबहुँक, 'द्रुत चलि' करि किलकार ।
कबहुँक लखि, दूरहि ते माटी, दौरि लेत मुख डार ।
जो जसुमति मुख माटी निकारति, लोटत धरणि मझार ।
लै 'कृपालु' निज-अंक यशोमति, चूमति करति दुलार ।।

भावार्थ—यशोदाके आँगनमें सगुणसाकार ब्रह्म नंदलाल बनकर खेल रहे हैं । वे यशोदाके लाल, मुखमें मक्खन लगाये हुए, टोनासे बचने के लिए ललाटमें काला टीका लगाये हुए, घुटनोंके बल चल रहे हैं । कभी घुटनोंके बल बड़ी मस्तीसे वालकृष्ण धीरे-धीरे चलते हैं और कभी किलकारी मारकर अत्यन्त तेज चलने लगते हैं । कभी दूरसे ही कहीं पड़ी हुई मिट्टीको देखकर जल्दीसे वहाँ जाकर, उसे अपने मुखमें डालकर खाने लगते हैं । जब यशोदा मैया मिट्टी खाते हुए देख लेती हैं तथा मुखसे मिट्टी निकाल देती हैं, तब पृथ्वीपर लोटने लगते हैं, मानों उनका सर्वस्व छिन गया हो । "कृपालु" कहते हैं कि उन लोटते हुए गोपालको यशोदा अपनी गोदमें ले-लेकर अनेक प्रकारसे लाड़ करती है, एवं वार-बार मुख चूमती हैं ताकि वे चुप हो जायँ ।

(२)

अली ! मोरि मुरली कौन लई ?
मुरली बिनु मोंहि चैन न इक छिन, सो मम प्राणमई ।

एक कहे 'मैं सुनी कालि कोउ, भार में डार दई'।
एक कहे 'देखी मैं कतहूँ, सुधि नहिं भूलि गई'।
एक कहे तारी दै हंसि हँसि, 'यह तो भली भई'।
सुनि-सुनि बचन सखिन हरि खीझत, दृगन घटा उनई।
कहति 'कृपालु' मातु 'कत रोवत, देउं मँगाय नई'।।

भावार्थ—(श्रीकृष्णकी मुरली किसी गोपीने चुरा ली है, एवं श्रीकृष्ण मुरलीके लिए व्याकुल होकर सबसे पूछ रहे हैं।)

अरी सखी ! मेरी मुरली किसने चुरा ली है। मुरलीके बिना मुझे एक पल भी अच्छा नहीं लगता। वह मुरली मुझे प्राणोंके समान प्यारी है। एक गोपी कहती है कि मैंने तो सुना है कि कल किसीने मुरलीको भाड़में डालकर जला दिया। (क्योंकि मुरलीसे गोपियोंकी विरहाग्नि बढ़कर उन्हें जलाया करती थी।) दूसरी गोपीने कहा कि मैंने सुना ही नहीं वरन् कहीं देखा है (कुछ देर सोचती हुई), किन्तु अब याद नहीं कि कहाँ देखा है, मैं तो भूल गई। तीसरी चंचल गोपी ताली बजाकर बार-बार हँसती हुई कहती है कि यह तो बहुत ही अच्छा हुआ (क्योंकि यह मुरली समस्त गोपाङ्गनाओंको तंग करती थी)। गोपियोंके इन उपहास भरे व्यंग वचनोंको सुनकर श्रीकृष्ण और भी खीझ गये तथा उनके नेत्रोंमें आँसू भर गये। "कृपालु" कहते हैं कि यह बातें मैया भी सुन रही थीं, अतएव मैयाने कहा, 'मेरे लाल ! तुम मुरली के लिए क्यों रोते हो ? मैं तुम्हें नई मुरली मँगा दूंगीं।'

(३)

उरहनो सुनि सुनि खीझी माय।
अति रिस भरी, खरी लै साँटी,
कान्ह अचानक आय।

भाज्यो कान्ह, देखि कर साँटी,
सुधि-बुधि तनु बिसराय।
आगें हरि, पाछे यशुमति अति,
धावति, पकरि न पाय।
लखि जननी तनु अति रिस बाढ़ी,
गिरे कान्ह घबराय।
रोवत कान्ह पकरि नँदरानी,
बाँधे ऊखल लाय।
लै साँटी मारन जब धाईं,
सखियन पकरीं धाय।
आरत कान्ह पुकारत छिन-छिन,
कोऊ लेहु बचाय।
अति सभीत, तनु कंप, नैन झरि,
देखि सखिन नहिं जाय।
तब कह सखिन 'मातु मो घर हरि,
चोरि न माखन खाय।
हौं तो करी मसखरी तू तो,
साँचेहि गई पतियाय।
लखि 'कृपालु' अकुलाय माय के,
गहे पाँय बिलखाय।

भावार्थ—(जब कई बार गोपियोंके द्वारा यशोदाने कृष्णके ऊधमों की शिकायतें सुनी, तबका प्रसंग हैं।)

गोपियोंके द्वारा बार-वार दिए हुए उलाहनोंको सुनकर यशोदा मैया अत्यन्त खीझ गयीं । अत्यन्त क्रोधमें भरी हुई यशोदा हाथमें डंडा लेकर आज खड़ी हैं और कह रहीं हैं कि आज कन्हैया आवे तो मैं उसे अच्छी तरह ठीक कर दूँ, इतनेमें श्रीकृष्ण आ गये । श्रीकृष्णने दूरसे ही मैयाके हाथमें डंडा देखकर, एवं मैयाको अत्यन्त क्रोधमें देखकर, अपनी सुधि-बुधिको भूलकर उल्टे पैर ही भागे । मैयाने भी पीछा किया । आगे-आगे श्रीकृष्ण भाग रहे हैं, पीछे-पीछे मैया अपनी पूरी शक्तिसे पकड़नेके लिए दौड़ रही है. परन्तु वुढ़ापेके कारण पकड़ नहीं पा रही है । भागते-भागते जब श्रीकृष्णने यह जानना चाहा कि मैया लौट गईं कि नहीं, तब उन्होंगे मुड़कर पीछेकी ओर देखा, किन्तु मैयाको थकावटके कारण और भी क्रुद्ध देखकर घवड़ाकर गिर गये और रोने लगे । मैयाने रोते हुए कन्हैयाको पकड़कर ऊखलमें बाँध दिया, और जैसे ही डंडा लेकर मारनेको दौडीं वैसे ही सखियोंने दौड़कर पकड़ लिया । श्रीकृष्ण अकिंचनकी भाँति आर्त बनकर रोते हुए बार-बार यही कहते हैं कि आज मुझे कोई बचा लो । श्रीकृष्ण इतने डरे हुए हैं कि उनका शरीर काँप रहा हैं तथा आँसुओंकी झड़ी लगी हुई है । इस दुःखद अवस्थाको देखकर प्रेममई सखियोंसे नहीं रहा गया । तब सखियोंने कहा कि मैया ! श्रीकृष्ण मेरे घरमें चोरी करके मक्खन नहीं खाता, मैंने तो यों ही परिहास-रूपमें कह दिया था । तू तो सचमुच ही समझ बैठी । "कृपालु" कहते हैं कि प्यारे श्यामसुन्दरकी उपरोक्त अवस्था मुझसे भी नहीं देखी गयी और मैं भी दौड़कर परम व्याकुलतावश मैयाके चरण पकड़कर रोने लगा, जिसका अभिप्राय यह था कि मैया अब वहुत हो चुका, लालाको छोड़ दो ।

(४)

कबै कहि मैया ! मोंहि बुलाय ।
हलधर सों भैया ! भैया ! कहि, बाबा कहि नंदराय ।
ठुमुकि-ठुमुकि कब निज पग अइहै, मो ढिग अति अकुलाय ।
कब झगरहि आँचर गहि मोहन, माखन हित बिरुझाय ।

कब पग पटकत लोटत भू पर, करहि मान बिलखाय ।
कब 'कृपालु' नंदराय-गोद तजि, धाय माय लिपटाय ।।

भावार्थ—(यशोदा बालकृष्णको गोदमें लिए हुए मन-ही-मन भविष्यकी कामना करती है ।)

वह दिन कब आयेगा जब मेरा कन्हैया मुझे मैया कहकर पुकारेगा ? इसी प्रकार कब बलदाऊजीको भैया, एवं नंदजीको बाबा कहकर पुकारेगा ? कब मेरे प्रेममें विभोर होकर अपने ही पैरोंके बलसे ठुमुक-ठुमुककर मेरे पास आयेगा ? कब मेरा लाल मेरा अंचल पकड़कर मक्खनके लिए हठपूर्वक झगड़ा करेगा ? तथा कब पृथ्वी पर लोटता एवं पैरोंको पटकता हुआ आँसू बहाकर रूठ जायेगा और मैं मनाकर लाऊँगी ? "कृपालु" कहते हैं कि वह दिन कब आयेगा जब नन्दबाबाकी गोदमें बैठा हुआ मेरा लाल मुझे देखते ही दौड़कर मुझसे लिपट जायगा ? (पुत्रका प्रेम माताके प्रति पितासे कई गुना बड़ा होता है ।)

(५)

कान्ह को पकर्‍यौ हलधर कान ।
'हौं तो कहँ कबते रह टेरत', तू इत टेरत तान ।
चलिय घेरि लै आइय गैयन, अहैं रिसान सखान ।
हरि दृग-अँसुवन-माल पिरोवत, चले मनहिं डरपान !
सखन कह्यौ क्यौं रे कनुआ कहं, अबलौं रह्यौ लुकान ?
जितनोइ छोट, खोट तू तितनोइ, झूठेहि रोदन ठान ।
कह 'कृपालु' यह छलिन-शिरोमणि- माया-पति भगवान ।।

भावार्थ—(श्रीकृष्ण सखाओंसे छुपकर कहीं दूर जाकर वंशी बजा रहे थे । सखाओं ने कई बार पुकारा एवं बलरामको ढूंढ़नेके लिए भेजा । जब बलरामको श्रीकृष्ण मिले तबका यह वृत्तान्त है ।)

बलरामजी ने श्रीकृष्णका कान पकड़ लिया और कहा, 'क्यों रे ! मैं तुझे कबसे टेर रहा हूँ, और तू इधर छिपकर मुरलीकी तान टेर रहा है। चल, शीघ्र ही गायोंको हाँककर ले आ, सखागण अत्यन्त क्रुद्ध हैं।' श्रीकृष्णका कान बलराम पकड़े हुए हैं और श्रीकृष्ण आंखोंसे आँसू बहाते हुए बलरामके साथ चले जा रहे हैं। साथ ही मनमें डर भी रहे हैं कि पता नहीं सखाओंकेद्वारा क्या नौबत गुजरे ! सखाओंने दूरसे ही श्रीकृष्णको आता देखकर कहा, 'क्यों रे कनुआ ! तू अभीतक कहाँ छिपा हुआ था। तू जितना ही छोटा है उतना ही अधिक खोटा भी है, और झूठ-मूठ ही रो रहा है ताकि सखा लोग क्षमा कर दें।' इसी अवसरपर "कृपालु" ने भी सखाओंसे कहा कि अरे मित्रो ! क्या तुम लोग नहीं जानते कि यह कपट करनेवालोंमें सिरमौर, स्वयं मायाका स्वामी भगवान् नंदलालके रूपमें अवतरित हुआ है।

(६)

ग्वाल संग, गो चारत गोपाल।
कोउ गावत, कोउ बेनु बजावत, कोउ नाचत दै ताल।
खेलत खेल, हरावत, हारत, रीझत, खीझत ग्वाल।
षटरस व्यञ्जन करत बियालू, राजत बिच नंदलाल।
"भोग लगाय खाउ पुनि" इमि कहि, चली मनसुखा चाल।
हरि दृग मूंदत खाय गये सब, उन कर अशन रसाल।
हँसनि सखिन सुनि, अशन न निज लखि, भज्यौ रुदत तत्काल।
इमि 'कृपालु' तेहि ग्वाल रुवावत, अमित काल जेहि गाल।

भावार्थ—(श्रीकृष्ण यमुनाके किनारे गाय चराते हुए, सखाओंके साथ खेल कर रहे हैं।)

गोपाल ग्वालोंके साथ गायोंको चरा रहे हैं। कोई गाना गाता है, कोई

बाँसुरी बजाता है, कोई हाथोंसे ताल दे-देकर नाचता है। परस्पर विविध प्रकारके खेल खेलते हैं, एवं एक-दूसरेको हराते हैं, कभी हारते भी हैं, कभी प्रसन्न होते हैं, कभी खीज जाते हैं। इस प्रकार जीत व हारके अनुसार सभी ग्वाल सुख-दुःखका अनुभव करते हैं। खेलनेके पश्चात् मधुर, खट्टे, नमकीन, कड़ुवे, तीखे, कसैले इन छः प्रकारके रसोंसे बने हुए विविध प्रकार के व्यंजन, जो अपने घरसे लाये थे, एक मण्डल बनाकर तथा मण्डलके बीचमें श्रीकृष्णको बिठाकर, खाने लगे। इतनेमें ही मनसुखा ने एक चाल चली। मनसुखा कहता है कि देखो भाई आज तो सब लोग भगवान् का भोग लगाकर तत्पश्चात् कलेऊ करो। सबने यह बात मान ली, एवं सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्णने ही भगवान् को भोग लगानेके लिए अपने नेत्र बन्द किए। इतनेमें ही मनसुखा की रायसे सभी सखा चुपकेसे श्रीकृष्णका कलेऊ आगेसे उठाकर चट कर गये। इसके बाद सखा लोग हँसने लगे, तब श्रीकृष्णके नेत्र खुले। श्रीकृष्णने यह सब चाल सखाओंकी समझकर रोना प्रारम्भ कर दिया, एवं रोते हुए ही मैयाके पास चल दिये। ''कृपालु'' कहते हैं कि जिनके मुखमें करोड़ों काल निवास करते हैं आज उसीको गोकुलके ग्वाल रुला रहे हैं। धन्य है उस सख्य-प्रेमको ! ! !

(७)

ग्वाल सँग, जेंवत बाल गोपाल।
लेत सखनि मुख छोर कौर हरि, भाजत इत उत ग्वाल।
मनसुख मन-सुख-सिंधु सामने, ठाने मन कछु चाल।
'हमरी दही पकोरी जो कोउ, खावै होय निहाल।'
सुनतहिं श्याम भये उठि ठाढ़े, खोलि वदन तत्काल।
मनसुख मुख डारन मिस लै दधि, चुपरि दियो हरि गाल।
लखि 'कृपालु' बलि हंसे ग्वाल सब, दै पुनि पुनि करताल।

भावार्थ—(सख्य-प्रेमसे विभोर ब्रह्म श्रीकृष्ण अपनी भगवत्ताको भूलकर एक साधारण बालककी तरह सखाओंके संग भोजन करते हुए, उन्हें प्रसन्न कर रहे हैं।)

श्रीकृष्ण ग्वालवालोंके साथ भोजन कर रहे हैं। बार-बार सखाओंके मुखसे कौर छीन-छीनकर खा रहे हैं, एवं ग्वाल इधर-उधर भाग रहे हैं, जिनका अभिप्राय यह है कि हम अपना भोजन तुमको नहीं देंगे। इतनेमें ही मनसुखा अत्यन्त आनन्दमें उन्मत्त मनमें कुछ चाल सोचते हुए सखाओंके बीचमें कहने लगा, 'हमारी दही-पकौड़ी इतनी बढ़िया है कि जो कोई खाय बस खाता ही रह जाय।' यह सुनते ही तत्क्षण ही श्रीकृष्ण अपना मुंह खोलकर उठ खड़े हुए। मनसुखा ने भी मनमें सोची हुई चालके अनुसार, श्रीकृष्णके मुखमें दही-पकौड़ी डालने के बहाने दही-पकौड़ी मुख के पास ले जाकर भी मुखमें न डालकर गालमें ही दही चुपड़ दिया। "कृपालु" कहते हैं कि ऐसा परिहास देखकर हम भी ग्वालों के साथ ताली बजा-बजाकर हँसने लगे। परिणाम स्पष्ट ही है कि बेचारे भोले-भोले श्रीकृष्ण खिसिया गये।

(८)

गोद-हित झगरत सुन्दर श्याम।
अम्बर पकरि, महरि को दृग झरि, लावत पटकत पाम।
अति-अधीर मुख-मातु लखत, सो, जाति करन गृह-काम।
कर सों कर अम्बरहिं छुटावति, 'करति हाय! ब्रज बाम'।
इमि दोउ लरत, लखत मुनि नारद, ठड़े, ठगे तेहि ठाम।
नारद चकित कहत 'धनि भामिनि, धनि-धनि गोकुल-ग्राम'।
"कत कृपालु' इतराति" नन्द कह, लैले री सुखधाम॥

भावार्थ—(मैया किसी गृहकार्यके लिये घर जा रही है। बालकृष्ण

चाहते हैं कि मैया मुझे गोदमें लेले, इस विषयमें माँ-बेटेका प्रेम-युद्ध हो रहा है।)

बालकृष्ण मैयाकी गोदमें जानेके लिए झगड़ रहे हैं। मैया खड़ी है, बालकृष्ण उनके कपड़े पकड़े हुए, पैर पटकते हुए, आँखोंसे आँसुओं की झड़ी लगाँते हुए रो रहे हैं, एवं अत्यन्त अधीर होकर मैयाके मुखकी ओर देख रहे हैं (ताकि मैया पुत्रकी आँखसे आँख मिलाकर वात्सल्यप्रेममें विभोर होकर श्रीकृष्णको गोदमें लेले), किन्तु मैया किसी आवश्यक कार्यसे घर जाना चाहती है। अतएव मैया अपने हाथसे अपने लालके हाथको अपने कपड़ेसे बार-बार छुड़ानेका प्रयत्न करती है, जिसे देखकर ब्रज-गोपियाँ कहती हैं—"हाय ! हाय ! ! मैया लालाको क्यों रुला रही है ? गोदमें लेले। इस प्रकार इन दोनोंको वात्सल्यप्रेम में लड़ते हुए देवर्षि नारदने भी देखा—यों देखकर किंकर्तव्य-विमूढ़से होकर ठगे से वहीं खड़े रह गये। (नारदजीको आश्चर्य यह था कि ब्रह्म जीवकी गोद में जाना चाहता है, किन्तु जीव उसे डाँट रहा है। धन्य है इस वात्सल्य-प्रेमको !) नारदजी आश्चर्यमें पड़कर कहते हैं, 'मैया तुझको धन्य है, एवं इस गोकुलग्रामको भी धन्य है, जहाँ यह अलभ्य रस लुट रहा है।' "कृपालु" कहते हैं कि इतनेमें ही नन्दजी आ गये और उन्होंने कहा कि अरी ! क्यों बहुत इतरा रही है। लालाको लेले ना, काम फिर कर लेना।

(६)

चलन लागें ठुमुकि-ठुमुकि नँदलाल।

ठड़े होत, पग द्वै क चलत पुनि, गिरि-गिरि परत गोपाल।
पुनि घुटरुवनि-गवनि तहं पहुँचत, जहं देहरी विशाल।
कर-पद-उदर सबै छल-बल करि, लाँघन चह तत्काल।
लाँघि न सकेउ, मचायेउ रोदन, दौरीं मातु बेहाल।

'बंक-भृकुटि जेहि प्रलय' सोई कर, लीला-बाल-रसाल ।
'जनि रोवहि मेरो लाल ! कालि ही, देहरिहिं देउं निकाल' ।
इमि 'कृपालु' कहि हरि दुलरावति, देहरिहिं ताड़ति ताल ॥

भावार्थ—(यशोदाजीकी कामनाके अनुसार श्रीकृष्ण थोड़ा-थोड़ा चलने लगे, उस समयकी लीलाका दृश्य।)

श्रीकृष्ण ठुमुक-ठुमुककर थोड़ा-थोड़ा चलने लगे किन्तु अभी अधिक अभ्यास नहीं है, अतएव अपने-आप खड़े होकर दो-एक पग चलते हैं, फिर वार-वार गिर पड़ते हैं। बार-बार गिरनेसे थककर फिर घुटनेके बल चलते हुए द्वारकी बड़ी ऊँची-देहरीके पास पहुँच जाते हैं। अपने हाथ, पेट एवं पैर सभीका बल लगाकर अनेक प्रकारसे प्रयत्न करके, तत्क्षण ही उस ऊँची देहरीको लाँघना चाहा, किंतु नहीं लाँघ सके। इसके परिणामस्वरूप खीझकर रोने लगे। रोनेकी आवाज सुनकर, प्रेमविह्वल होकर मैया ने श्रीकृष्णके पास दौड़ कर उनको उठा लिया। कवि कहता है कि जिसकी भृकुटिविलाससे प्रलय हो जाता है, आज वही देहरी न लाँघ सकनेकी क्या ही मधुर बाललीला कर रहा है। मैयाने कहा, 'मेरे लाल ! अब न रोवो, मैं कल ही देहरी को निकलवा दूंगी। "कृपालु" कहते हैं कि इस प्रकार कह कहकर यशोदा अपने लालाको गोदमें झुलाती हुई अनेक प्रकारसे दुलार करती हैं, एवं देहरीको हाथकी ताली बजाकर मारनेका बहाना करती है, ताकि अबोध श्रीकृष्ण को शान्ति मिल जाय।

(१०)

चलीं दधि बेचन ब्रज की बाम ।
मटुकी-शीश धरी रसमाती, पहुँचीं सब नंदगाम ।
नन्द-द्वार भई जुरि ठाढ़ीं, जहं नव-लख-धेनु ललाम ।
'लो कोउ दही' टेर भूलीं कह, 'लो कोउ सुन्दर श्याम' ।

लखि बिहाल ब्रजबाल, लाल तहं, आये तजि निज धाम ।
'दधि बेचत हरि मिलहिं 'कृपालुहिं' एक पंथ दो काम' ।।

भावार्थ—(श्यामसुन्दरके मधुर-मिलनकी आकांक्षा में गोपियाँ दही बेचने के बहाने नंदगाँव जाती हैं ।)

ब्रजकी गोपियाँ दही बेचने जा रही हैं । दहीकी मटुकी सिरपर रखकर श्यामसुन्दरके प्रेम-रसमें विभोर नंदगाँवकी ओर चलीं, तथा सब इकट्ठी होकर नंदजीके द्वारपर खड़ी हो गईं, जिन नंदजीके घरमें एक-से-एक बढ़िया नौ लाख गायें हैं । जब द्वारपर अपने प्यारे श्यामसुन्दर को नहीं देखा, तब विरहमें व्याकुल होकर अपनी सुधि-बुधि भूल गईं । जिसके परिणामस्वरूप 'कोई दही लो' इस पुकारको छोड़कर 'कोई सुन्दर-श्याम लो' ऐसी टेर लगाने लगीं । गोपियोंको अत्यन्त विरहमें व्याकुल देखकर श्यामसुन्दर तत्क्षण ही अपने घरसे बाहर निकल आये, एवं उन गोपियोंको दर्शन देकर कृतार्थ किया । ''कृपालु'' कहते हैं कि तुम भी सखी बनकर वहीं चलो जहाँ दही भी बेचेंगे एवं श्याम-सुन्दरसे भी मिलेंगे । 'एक पंथ दो काज' इस लोकोक्ति के अनुसार दोनों ही कार्य सिद्ध हो जायेंगे ।

(११)

डगर महँ, झगरि लँगर करे रार ।
मटुकी फोर तोर लर हारन, चुनरी शीश उतार ।
जितनोइ छोट, खोट सखि ! तितनोइ, हारीं सब ब्रज नार ।
'तुम मोरी' इमि कहि सुनु गोरी, करत, दृगन सों वार ।
निधरक कहत 'नेकु चलु कुंजन', लम्पट नर अनुहार ।
हौं 'कृपालु' नहिं जाति लाज ते, मन चाहत रिझवार ।।

भावार्थ—(एक सखी, एक सखीसे श्रीकृष्णके ऊधमोंसे तङ्ग आकर कहती है ।)

हे सखी ! वह ऊधमी श्यामसुन्दर मार्गमें छेड़कर मुझसे ऊटपटांग ढंगसे ऊधम करता है। मेरी मटुकीको फोड़कर, मोतियोंकी लर एवं हारोंको तोड़ डालता है, तथा मेरे सिरसे चुनरी उतारकर फेंक देता है। अरी सखी ! वह जितना छोटा है उतना ही खोटा है। उससे समस्त व्रज-गोपिकायें हार चुकी हैं। वह मुझसे 'तुम मोरी (प्यारी)' ऐसा कहकर, अरी सखी ! अपनी आँखोंसे कटाक्षपात करता है। मुझसे बेधड़क कहता है, 'जरा कुंजोंकी ओर चलो', जैसे कोई लम्पट व्यक्ति कहे। "कृपालु" कहते हैं कि अरी सखी ! यद्यपि लोकलाज-के कारण मैं उसके कथानुसार नहीं जाती, फिर भी हृदय तो चाहता ही है।

(१२)

ढाँपि मुख, कामरि रूठे लाल ।
उठहु लाल ! बेला-गोचारण द्वार टेरि रहे ग्वाल ।
कैसेहु उठत न, उठत न बोलत, रिसि भौंहन, बल भाल ।
'बात कही किन कहा ?' मातु कह, उठि बोले तत्काल ।
सुनु मैया ? 'मोते कह भैया', इमि कहि रुदत गोपाल ।
'बिनु पितु-मातु आपु कह मोकहँ, हँसत ग्वाल दै ताल ।'
बाबा तोहिं परो पायो कहुँ', कहँ लौं कहौं कुचाल ।
तू मैया ? मुसकात बात सुनि, है यामें कछु जाल ।
'जो जस होत 'कृपालु' कहत तस', यशुमति कह सुनु बाल ।

भावार्थ—श्यामसुन्दर प्रातःकाल होनेपर भी आज नहीं उठे, एवं अपने मुखको काले कंबलसे ढाँककर रूठे हुए लेटे हैं। मैया कहती है, 'अरे लाला ! गायोंको चरानेका समय हो गया। शीघ्र उठ, देख तो ग्वालबाल द्वारपर खड़े तुझे पुकारते हुए प्रतीक्षा कर रहे हैं।' श्रीश्यामसुन्दर यशोदाके उठानेपर भी नहीं उठे, बड़ी देर बाद जब उठे भी, तब भी रूठनेका कारण नहीं बताया।

भौहोंके बीचमें बल पड़े हुए हैं, तथा अत्यन्त ही क्रुद्ध हैं। तब मैयाने कहा, 'अरे लाला ! बता तो सही तुझसे किसने क्या कहा है?' तव श्यामसुन्दर तत्क्षण ही बोल पड़े, 'अरी मैया ! सुन, मुझसे भैया कहते हैं—'बस इतना ही कहकर श्यामसुन्दर हिचकियाँ भर-भरकर रोने लगे। थोड़ी देर बाद श्रीकृष्ण ने कहा, 'मेरी मैया ! मुझे बलदाऊ भैया कहते हैं कि तेरे तो माता-पिता ही नहीं हैं, एवं यह सुनकर सभी ग्वालबाल हँसते हुए ताली बजाते हैं। मैया ! बलदाऊ भैया कहते हैं कि अरे कन्हैया ! तुझे तो नन्दबाबा ने कहीं पड़ा हुआ पाया है। मैं उनकी कुचालों को कहाँतक कहूँ ? मैया ! तू भी मेरी वात सुनकर मुस्कराती है जिससे मुझे और भी शंका होती है। अवश्य कुछ-न-कुछ बात है।' "कृपालु" कहते हैं कि तव यशोदा ने कहा, 'अरे लाला ! जो जैसा होता है वह सबको वैसा ही समझता है।' इसका एक अभिप्राय तो यह हैं कि बलराम को ही बाबा ने पड़ा हुआ पाया है, तुझको नहीं। दूसरा अभिप्राय यह है कि, 'अरे लाला ! तू जो मेरे लिए कहता है कि भैया इसमें कुछ-न-कुछ अवश्य जाल है, तो तू सदा ही योगमायासे युक्त जाल किया करता है, अतएव मुझे भी वैसा ही समझता है।'

(१३)

धूसरि, धूरि भरे हरि आवत।

मोर-मुकुट कटि-कछनी काछे, मुरली मधुर बजावत।
धुनि सुनि बेनु सबै ब्रज-बनिता, देखन को जुरि धावत।
कांधे लकुटि, कामरी कारी, लट उरझी मनभावत।
वत्स-प्रेम-रस-पूरि सुरभि-थन, मेदिनि-क्षीर चुआवत।
सो 'कृपालु' झाँकी झाँकन-हित, शंभु समाधि भुलावत।।

भावार्थ—(सायंकालके समय गायोंको चराकर लौटते हुए श्रीकृष्णकी अनुपम झांकी।)

गायोंके पैरसे उड़ी हुई धूलसे युक्त हुए श्रीकृष्ण आ रहे हैं। सिरपर मयूरपंखका मुकुट, एवं कमरमें सुन्दर काछनी काछे हुए हैं। मधुर-मधुर स्वरों से मुरली बजा रहे हैं। उस मुरलीकी मधुर-ध्वनिको सुनकर समस्त ब्रज-गोपाङ्गनायें (जो, एक क्षणके लिए भी श्रीकृष्णसे पृथक् होकर अत्यन्त विरह-व्याकुलता में पुनः श्रीकृष्ण-दर्शन होने पर, विधाता को कोसती थी कि तूने एक क्षणके वियोगके बाद भी पूर्ण मधुर-मिलनकी बाधक पलकोंका निर्माण क्यों किया है ?) अत्यन्त आतुर होकर श्यामसुन्दर के दर्शनार्थ अपने घरोंसे भागकर इकट्ठी हो गई हैं। श्रीकृष्णके एक कंधेपर लठिया है, दूसरे कंधेपर काला कंबल है, घुंघराले बाल, उलझे हुए हटात् मनको मुग्ध कर रहे हैं। गायें अपने बछड़ोंके वात्सल्य प्रेमरसमें विभोर अपने थनोंसे पृथ्वीपर स्वाभाविक ही दूध चुआती हुई चली आ रही है। "कृपालु" कहते हैं कि गायोंसे युक्त गोपालकी इस बाँकी झाँकीको देखनेके लिए भगवान् शंकर भी बरबस अपनी निर्विकल्प समाधिको भूल जाते हैं।

(१४)

नन्द-घर निरतत नन्दकुमार।
ताण्डव-नृत्य करत जनु शंकर, यशुमति-अजिर मझार।
धूरि-धूसरित तनु इमि सोहत, जनु लेपित-तनु क्षार।
गल विशाल-कमलन की माला, मुण्डमाल अनुहार।
मोर-पंख-मिस, कालकूट-विष, रहे शीश निज धार।
केहरिनख-मिस शशि धरि कंठहि, 'थल भल उचित विचार'।
जानि 'कृपालु' दिगम्बर शंकर, डरपत मदन निहार॥

भावार्थ—(कवि नंद के घरमें नाचते हुए श्रीकृष्णकी शंकरजीसे तुलना करता है।)

आज नंदके घरमें श्रीकृष्ण शंकरजी के समान बनकर मानों तांडव नृत्य

कर रहे हैं। यशोदाजीके आँगनमें धूलिसे सफेद-से हुए श्रीकृष्ण ऐसे लगते हैं मानों शंकरजीने भस्मका लेपन कर रखा है। कृष्णके गलेमें कमलके बड़े-बड़े फूलोंकी माला ही मानो शंकरजीकी मुंडमालाकी समानता कर रही है। मोरपंखमें जो नीलिमा है, मानों वही शंकरजीके कण्ठमें रहने वाला विष है, जिसे विष समझकर श्रीकृष्णने अपने गलेमें न धारण करते हुए शरीरसे बाहर मोरपंख में धारण कर रखा है। बाघके नाखूनको पहने हुए श्रीकृष्णने मानों शंकरजीकी तरह सिर के बजाय गलेमें ही चन्द्रमाको धारण कर लिया है। यह दोनों ही स्थल इसलिए बदल दिये गये हैं कि श्रीकृष्णको अपना वंश प्रिय है, इसलिए चन्द्रमाको गले लगाया, एवं विष प्रिय नहीं है, इसलिए उसे मोर-पंखमें रखा। "कृपालु" कहते हैं कि इस प्रकार अति लघु बालक रूप नंगे-धड़ंगे श्रीकृष्णको साक्षात् शंकर ही समझकर कामदेव डर रहा है कि कहीं ऐसा न हो ये शंकरजो हमें पूर्वकी भाँति भस्म कर दें।

(१५)

नन्द-महर घर बजत बधाई।
जायो पूत आज नंदरानी,
नाचत, गावत लोग-लुगाई।
दूध, दही, माखन की काँदौं,
सब मिलि भादों मास मचाई।
बाजत झाँझ, मृदंग, उपंगहि,
बीना, बेनु, शंख, शहनाई।
थिरकत चोवा-चन्दन, थिरकत;
करि 'जयकार' कुसुम बरसाई।

शिव समाधि बिसराइ भजे ब्रज,
देखन के मिस कुंवर-कन्हाई।
याचक भये अचानक सिगरे,
हम 'कृपालु' धनि ! ब्रज-रज पाई।

भावार्थ—गोकुलमें नन्दराय बाबाके घरमें श्रीकृष्णके अवतार लेने के उपलक्षमें वधाई बज रही है। (यद्यपि श्रीकृष्णका अवतार मथुरामें लीला-रूपसे देवकीके गर्भसे हुआ था, एवं अर्धरात्रिके ही समय वसुदेव श्रीकृष्णको उनकी योगमायाके सहारे यशोदाके पास सुला आये, एवं उसी समय यशोदाके गर्भसे उत्पन्न योगमाया को अपने साथ ले आये थे, किंतु प्रकट रूपसे यह रहस्य यशोदा भी नहीं जानती थी। केवल वसुदेव, देवकी ही जानते थे। अतएव समस्त गोकुल-ग्राम-वासियोंको यही ज्ञान रहा कि आज रातको यशोदाके ही गर्भ से श्रीकृष्णका जन्म हुआ है।) समस्त गोकुल के नर-नारी नाचते-गाते हुए आनन्दविभोर होकर कह रहे हैं कि आज नन्दरानीके लाल हुआ (नन्दके आनन्द भये, जै कन्हैयालाल की)। भादोंके महीनेमें कृष्ण-पक्षकी नौमी तिथि पर समस्त नर-नारियों ने दूध, दही, मक्खन आदिको छिड़कते हुए सारे गोकुल में कीचड़-ही कीचड़ कर दी (दधि-काँदौं)। झाँझ, मृदंग, उपंग, वीना, मुरली, शंख, शहनाई आदि विविध प्रकारके बाजे बजने लगे। चोवा, चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्योंको एक दूसरेपर छिड़कते हुए नाच-नाचकर पुष्प-वर्षा करते हुए कन्हैयाकी जयकारें करने लगे। शंकरजी भी अपनी निर्विकल्प समाधि भुलाते हुए अपने इष्टदेव, प्रेमावतार यशोदाके लाल कुंवरकन्हैयाके दर्शनके लिए शिवलोकसे भागे-भागे गोकुल चले आये। जिसने जो कुछ भी माँगा उस याचकको वही दिया गया। "कृपालु" कहते हैं कि जिनको बड़ी-बड़ी चीजें मिलीं वह अपनी जानें, हम तो ब्रजकी धूल ही पाकर कृतार्थ हो गये।

(१६)

निज ब्रजधाम लेहु नंदरानी, हम तो अंत बसेंगी जाय ।।
अति खोटा यह तुम्हरो ढोटा, नेकहुँ नाहिं लजाय ।
हम भोरी गोपिन सों नित वह, बरबस रार मचाय ।।
छीके हूँ ते खात काढ़ि दधि, भाजन फोरि गिराय ।
‘छोटो सो मत जानु जसोदा !, हाल बड़ो ह्वै जाय’ ।
मग रोकत, अरु कहत गूजरी !, ‘हम ब्रजराज कहाय’ ।
दै दधि-दान जाहु तब आगे, नाहिं तो जान न पाय ।।
जौ हौं कहौं ‘कंस पै जैहौं’, खोटी-खरी सुनाय ।
मटुकी फोरि, खाय दधि छलिया, चितवन चोट चलाय ।।
मोको घ़ायल करि बेदरदी, मन्द-मन्द मुसकाय ।
वशीकरन, जादू, चेटक सब, यह तो जाने माय ! ।।
तू याको बरजति नहिं नेकहुँ, बहुतहिं लाड़ लड़ाय ।
को ‘कृपालु’ बसि जादूनगरी, तन, मन, प्राण गंवाय ।।

भावार्थ—(गोपियाँ श्रीकृष्णके ऊधमोंसे तंग आकर यशोदासे कहती हैं।)

हे यशोदाजी ! तुम अपना ब्रजधाम अपने ही पास रखो, अब हमें इस ब्रज में नहीं रहना है । हम तो जाकर कहीं और बस जायेंगी. क्योंकि तुम्हारा यह लाला देखनेमें तो बहुत ही छोटा है, किन्तु यह इतना खोटा है कि हम भोली-भाली गोपियोंसे सदा ही हठात् ऊधम करनेमें थोड़ा भी नहीं लजाता । हम लोग इससे अत्यधिक तंग हो चुकी हैं । यह छींकेपर भी रखे हुए दहीको निकालकर चटकर जाता है, तथा उस मटकीको ही गिराकर फोड़ डालता है । तुम इसे सदा छोटा ही समझती हो, पर यह ऐसा मायावी है कि तुरन्त ही बड़ा भी हो जाता है । जब मैं दही बेचने जाती हूँ, तब यह मेरा मार्ग रोक-

कर खड़ा हो जाता है और कहता है, 'ओ गूजरी ! हम इस व्रजके राजा हैं, हमें दहीका दान देकर ही आगे जा सकती हो, अन्यथा जाने नहीं पाओगी ।' इसपर जब मैं कहती हूँ कि मैं अभी जाकर कंससे कह दूँगी, तब मुझे खरी-खोटी बातें सुनाने लगता है, एवं मेरा दही खाकर मटकी फोड़ डालता है। इतना ही नहीं वरन् इसके पश्चात् अपनी आँखोंके कटाक्षोंसे मुझे घायल कर देता है। फिर यह निष्ठुर मुझे घायल देखकर मंद-मंद मुस्कराता है। अरी सखी ! यह उच्चाटन, मोहन आदि सभी जादू, तंत्र, मंत्र जानता है। "कृपालु" कहते हैं कि हे यशोदा ! तू अपने लालाको इन ऊधमोंसे जरा भी नहीं रोकती, वरन् और भी लाड़ करती है जिससे इसका मन और भी बढ़ता जाता है। ऐसी जादूकी नगरीमें रहकर भला कौन अपना तन, मन, प्राण गँवाना चाहेगी ?

(१७)

निरत करे, आजु ब्रह्म साकार ।
दै करताल, मातु यशुमति-संग, पग नूपुर झनकार ।
झिंगुली झीन, छीन-कटि किंकिनि, मोरपंख सिर धार ।
गोपद-रज-राजित-तनु, अलकनि, उरझि रहीं घुंघरार ।
तुतरिन-बतियन कहि कछु 'गुनगुन', पुनि पुनिकर किलकार ।
लखिय 'कृपालु' ब्रह्म-गति जेहि कह, 'माया गुन गोपार ॥

भावार्थ—(यशोदाके आँगनमें वेदान्तके सिद्धान्त सच्चिदानंद श्रीकृष्ण नृत्य कर रहे हैं।)

आज साकार-ब्रह्म नंदलाल बनकर मैया यशोदाके हाथकी तालिका-ध्वनिके संकेतपर नाच रहा है। पैरोंमें नूपुरोंकी मधुर ध्वनि हो रही है। वे श्रीकृष्ण बड़ी ही बारीक झिंगुली पहने हुए है, एवं पतली-सी कमरमें किंकिण तथा सिरपर मोर का पङ्ख धारण किये हैं , उनका सारा शरीर गायोंके खुरके

नीचेसे निकली हुई धूलसे स़फेद हो रहा है। घुंघराले बाल उलझे हुए अत्यन्त ही मन को मोहित कर रहे हैं। तोतली भाषामें कुछ गुनगुनाकर गाते हुए बार-बार किलकारियाँ भी मार रहे हैं। "कृपालु" ज्ञानियोंकी ओर संकेत करके कहते हैं कि हे ज्ञानियों ! मैं अधिक कुछ भी शाब्दिक शास्त्रार्थ करना उचित नहीं समझता। तुम लोग स्वयं चलकर अपने ब्रह्मकी दशा देख लो, जिसे तुम माया एवं तीनों गुण तथा इन्द्रियोंसे परे कहते हो।

(१८)

पकरि गयो माखन चोरत कान्ह।

द्रुत युग-पानि नवनि मुख मेलत, चितवत चहुँ दै कान।
यदपि निविड़-तम तन-दुति दमकति, घन, दामिनि उनमान।
लखि पूछति गोपी 'तू को है ?, धंसि आयो घर आन।'
अति सभीत कह चौंकि 'कान्ह मैं', 'आयो निज घर जान।'
कहा करत मटुकी बिच ? चींटी, अपसारत सच मान।
सोवत शिशु कस आय जगायो ?, सपनो लखि डरपान।
किमि 'कृपालु' इमि देत थेगरी, मृषा फटे असमान॥

भावार्थ—(श्रीकृष्ण किसी गोपीके प्रेममें बँधे हुए उसके घरमें जाकर चुपकेसे मक्खन खानेके लिए ज्यौं ही मटकीमें हाथ डालकर खाने लगे त्यों ही वह गोपी आ गई—उस अवसरका वृतान्त है।)

कवि कहता है कि श्रीकृष्ण मक्खन चुराते हुए ही रँगे हाथों पकड़े गये। श्रीकृष्ण अपने दोनों हाथोंसे जल्दी-जल्दी मटकीसे मक्खन निकाल कर खाते जा रहे थे, तथा चारों ओर कान लगाये देखते भी जा रहे थे। यद्यपि जिस स्थानपर श्रीकृष्ण ऐसा कर रहे थे वहाँपर अत्यन्त प्रगाढ़ अंधकार था, तथापि श्रीकृष्णके शरीरसे स्वाभाविक ही बादलमें बिजलीके समान हल्का प्रकाश छाया हुआ था। अतएव गोपीने देख लिया, एवं पूछा, 'अरे ! तू कौन है जो मेरे घरमें घुस आया है।' श्रीकृष्णने चौंककर अत्यन्त भयभीत होते हुए कहा,

'मैं कान्ह हूँ, मैंने समझा कि मेरा ही घर है, इसी भ्रममें चला आया।' फिर गोपीने पूछा, 'यदि तुम अपना ही घर समझकर भूलसे यहाँ चले आये तो यह बताओ कि यहाँ आकर मटकीमें हाथ डाले हुए क्या कर रहे हो?' श्रीकृष्णने कहा, 'मैं चींटी निकाल रहा था।' फिर गोपीने पूछा, 'मेरे सोते हुए बच्चोंको क्यों आकर जगा दिया।' तब श्रीकृष्णने कहा, मैंने नहीं जगाया, सपना देखकर डर गये होंगे।' "कृपालु" कहते हैं कि हे श्रीकृष्ण! इस प्रकार सारे फटे हुए आसमानमें कितने कपड़ोंके जोड़ लगाओगे, अर्थात् कहाँ तक बातें बनाओगे।

(१९)

पालने झूलत बाल-गोपाल।
लोरी गावति, मातु झुलावति, लखि-लखि होति निहाल।
शिशु-भूषन-भूषति तनु सोहत, मन मोहत ब्रजबाल।
कर-अरविन्द, पदारविन्द कहं, मुख-अरविन्दहिं डाल।
कबहुँक दुहुँन पाणि-पग पटकत, किलकत अति नंदलाल।
कबहुँक फरकावत निज अधरन, 'गूं, गूं' शब्द रसाल।
कबहूँक लखत, मातु ढिग, कबहुँक, इत उत दृगन विशाल।
कबहुँक दृगन मूँदि पुनि रोवत, पोवत अंसुवन-माल।
विविध खिलौने जननि दिखावति, गावति कछु दै ताल।
तदपि हठीलो लाल न मानत, ठानत रोदन-जाल।
जब 'कृपालु' लिए अंक दौरि हम, मौन भये तत्काल।।

भावार्थ—यशोदाके आँगनमें बालकृष्ण पालनेमें झूल रहे हैं। यशोदा मधुर स्वरमें विविध प्रकारकी वात्सल्यसे भरी लोरियाँ गा रहीं हैं, एवं धीरे-धीरे अपने गोपालको झुला रही हैं तथा बार-बार अपने लालाको देख-देख कर आनन्दविभोर हो रही हैं। बालकृष्ण शिशुओं के समस्त शृङ्गारोंसे सुशोभित हो रहे हैं, एवं समस्त गोपियोंके मनको हठात् मुग्ध कर रहे हैं। कभी अपने

हाथ-रूपी कमलमें पैर-रूपी कमलको मुख-रूपी कमल में डालते हैं, कभी अपने दोनों हाथों एवं पैरोंको अत्यन्त आनंदमें विभोर होकर किलकते हुए पटकते हैं। कभी अपने-आप ही अपने होठोंको फड़काते हैं, एवं परम मधुर गूँ गूँ शब्द उच्चारण करते हैं। कभी अपनी मैयाको भली-भाँति नहीं पहचानते इसीलिए कभी-कभी अपने चपल विशाल नेत्रोंसे स्वभावतः इधर-उधर देखने लगते हैं, और कभी अकारण ही अपनी आँखोंको मूँदकर आँसू बहाने लगते हैं। मैया अपने लालाको चुप कराने के लिए अनेक प्रकारके खिलौने दिखाती है, एवं साथ ही ताली बजा-बजाकर कुछ गाती भी है, फिर भी हठीले बालकृष्ण रोना नहीं बन्द करते एवं और भी रोने का ढोंग करने लगते हैं। ''कृपालु'' कहते हैं कि मैंने बालकृष्णके रोनेके कारण समझकर ज्यों ही दौड़कर अपनी गोदमें ले लिया त्योंही गोपाल चुप हो गये, क्योंकि वे तो गोदमें आनेके लिए ही रो रहे थे।

(२०)

बड़ो कब ह्वै है हमरो लाल।
कब चलिहैं घुटुवन-बल आँगन, करिहंहिं हमंहि निहाल।
कब कर-अंगुरि पकरि ह्वै ठाढ़ो, चलिहंहिं लटपट चाल।
कब तुतरिन-बतियन कछु मोते, बोलिहंहिं बचन रसाल।
कब दृगजल भरि, मम अंचल गहि, 'कछु मंगिहंहिं गोपाल।
कब 'कृपालु' मोते कह 'मैया !', इमि कहि चूमति गाल॥

भावार्थ—यशोदा अपने लालको गोदमें लेकर वात्सल्य-प्रेममें विभोर होकर विधातासे कामना करती हैं, और कहती है कि वह दिन कब आयेगा जब मेरे लाल बड़े हो जायेंगे। कब हमारे आँगनमें घुटनोंके बल चलते हुए हमें निहाल करेंगे। कब हमारे हाथकी अँगुलियोंके सहारे खड़े होकर लड़खड़ाते हुए चलेंगे। कब हमसे तोतली भाषामें मधुर-मधुर बाल-विनोद-युक्त बातें करेंगे।

कब अपनी आँखोंमें आँसू भरकर हमारा अंचल पकड़े हुए कोई वस्तु माँगेंगे। "कृपालु" कहते हैं कि मुझे मेरा लाल कौनसी घड़ीमें 'मैया' कहेगा ? इसके पश्चात् वात्सल्य-प्रेममें विभोर यशोदा कुछ भी न कह सकी। इतना ही कहकर बार-बार अत्यन्त प्यारसे अपने लालके दोनों गाल चूमने लगीं।

(२१)

बलि जाउँ सलोने श्याम की।
मटकनि सिर-शिखि-पुच्छनि, लटकनि,
लटुरिन छवि अभिराम की।
किलकनि द्वैक-दंतुलियनि-दमकनि,
घुटुवनि-गवनि ललाम की।
झलकनि पीत झंगुलियनि हलकंनि,
कुण्डल-भल सुखधाम की।
रुन-झुन करनि चरन पैजनियनि,
देखनि छुपि ब्रजबाम की।
धनि-धनि अवनि 'कृपालु' जननि धनि,
धनि-धनि गोकुल-ग्राम की॥

भावार्थ--(यशोदाके आँगन में बालकृष्ण घुटनोंके बल चल रहे हैं—उस समयकी अनुपम झाँकी।)

कवि कहता है कि मैं सलोने बालकृष्ण पर बलिहार जाता हूँ। उनके सिर-पर सुशोभित मोरपंखके झूमने, एवं घुंघराली लटकती हुई सुन्दर लटुरियोंकी छविपर बलि-बलि जाता हूँ। उनके किलकनेपर, दूधके दो दाँत चमकने तथा घुटनोंके बल सुन्दर चलनेपर भी बलि-बलि जाता हूँ। उनकी पीली झँगुलीके

झलमलाने, एवं चंचल कुण्डलके हिलनेपर भी बलि-बलि जाता हूँ। उनके चरण-के नूपुरोंके रुनझुन शब्द करने, एवं उनको छुप-छुपकर ब्रज-गोपियों के देखनेपर भी बलि-बलि जाता हूँ। "कृपालु" कहते हैं कि मैं उस ब्रजभूमि पर, एवं यशोदा-मैया पर तथा गोकुल ग्राम पर बार-बार बलि-बलि जाता हूँ, क्योंकि यह छवि परम धन्य है।

(२२)

मातु ! सुनु साँची-साँची बात।
कालि निकट यमुना-तट मैया !, रह्यो सखन संग न्हात।
इतनेइ माँहि सखिन मोंहि टेरीं, 'सुनियो श्यामल गात।'
हौं नहिं गयौं सखिन तब बोलीं, 'चलहु आजु ढिग मात।'
ये मोते गागरि उठवावति, इनकी बड़ी जमात।
गुलचन गाल मार मोंहि सिगरी, हंसत न नेकु लजात।
जो कहुँ इनकी बात न मानहुँ, तो मोपै रिसियात।
बार बार मो कहं डरपावति, 'देन उरहनो जात।'
ये 'कृपालु' ऐसी ब्रज-ग्वालिनि, बिनु एकहिं कर सात ॥

भावार्थ—(गोपियोंके बार-बार उलाहना देनेपर जब मैया बहुत ही विरुद्ध हो गई तब भगवान् अपनेको निरपराध सिद्ध होनेका प्रमाण देते हैं।)

मैया ! मैं सच्ची-सच्ची बात बता रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुन। 'कल यमुनाके किनारे मैं सखाओंके साथ स्नान कर रहा था, इतने ही में सखियों ने मुझे पुकार-कर कहा कि ओ श्यामसुन्दर ! जरा एक बात सुन जाओ। मैया ! मैं उनके बुलानेपर नहीं गया। तब सखियोंने कहा कि अच्छी बात है, मैयाके पास चलो तब बताऊँगी। ये सखियाँ मुझसे जलके भरे घड़े उठवांती हैं। ये बहुत बड़ी संख्यामें हैं, मैं अकेला क्या करूँ ? मैया ! यह सब-की-सब बार-बार मेरे गालमें

गुलचे मारती हैं, निर्लज्जकी तरह हंसती है और जब कभी इनकी आज्ञा नहीं मानता, तभी यह अप्रसन्न हो जाती हैं, एवं बार-बार झूठ-मूठको ही उलाहने देनेकी धौंस बताकर मुझे डराती हैं। "कृपालु" कहते हैं कि हे मैया ! ये ब्रजकी गोपियां इतनी झूठी हैं कि बिना एक ही के जोड़कर सात बना देती हैं। एककी सात तो अनेकानेक स्त्रियाँ लगाती हैं।

(२३)

मैया री ! मैं नहिं माटी खायो।
'जाकी भृकुटि-विलास प्रलय' सोइ, साँटी लखि डरपायो।
दोउ कर-उदर बँधे दामोदर, दृग झर-झर झरि लायो।
'मत मारिय' मैया ! सुनु 'भैया, गैया मोहिं हँकवायो।'
तू बरजति लालन ! गैयन बिच, भूलि कबहुँ जनि जायो।
आजु न गयौं बहोरन गैया, भैया मोहिं धमकायो।
हारे कालि खेल महं मोते, याहू ते खिसियायो।
कछु बस चल्यौं न जब 'मैया सों, झूठी आय लगायो।'
मैया कह 'मुख खोलि दिखावहु', तब हरि कछु मुसकायो।
अति ही प्रबल-योगमाया बल, रूप विराट दिखायो।
लखि कोटिन-ब्रह्माण्ड एक मुख, यशुमति अति अकुलायो।
तब 'कृपालु' भये सौम्य श्याम इमि, 'दामोदर' पद पायो॥

भावार्थ—(बलरामके कथनानुसार मिट्टी खानेके अपराधमें श्रीकृष्णको यशोदाने बाँध दिया है, एवं डण्डा लेकर मारनेके लिए तैयार खड़ी हैं।)

उसी अवस्थामें श्रीकृष्ण अत्यन्त दीन भावसे कातर होकर मैयासे कह रहे हैं, 'मैया मैंने मिट्टी नहीं खाई।' कवि कहता है कि जिन श्रीकृष्णकी भृकुटि-

विलास-मात्रासे अनंतकोटि ब्रह्माण्डोंका प्रलय हो जाता है, वे ही श्रीकृष्ण आज यशोदाके वात्सल्य-प्रेममें बँधे हुए एक छोटेसे डण्डेसे भयभीत हो रहे हैं। श्रीकृष्णके दोनों हाथ पेटके साथ वँधे हुए हैं, एवं आँखोंसे आँसुओंकी धारा वह रही है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि मैया ! मुझे मत मार, मेरी बात तो सुन ले। बात यह है कि तू मुझे बार-बार यह शिक्षा देती है कि लाला तू भूलकर भी गायोंके बीच में मत जाया कर फिर भी वलदाऊ भैंया मुझसे प्रतिदिन गायोंको हँकवाते हैं। आज मैं तेरी ही बात मानकर गायोंको हाँकने नहीं गया। इसपर वलदाऊ भैयाने मुझे बड़ी धमकी दी कि आज मैयाके पास चलो तो तुम्हें पिटवायेंगे। दूसरा कारण यह भी है कि बलदाऊं भैया मुझसे कल खेलमें हार गये थे इससे भी बहुत खिसियाये हुए थे। इन दोनों ही कारणोंसे जब कोई वश नहीं चला तब तुमसे आकर मिट्टी खानेकी झूठी-मूठी वात गढ़कर लगा दी। यशोदाने कहा, अच्छा, 'तुम अपना मुख खोलकर दिखाओ।' अव तो श्रीकृष्ण कुछ मुस्कराने लगे। (श्रीकृष्ण जब कोई लीला करना चाहते हैं, तब गम्भीर मुद्रामें मुस्कराते हैं।) श्रीकृष्णने अपनी अलौकिक योगमायासे अपने मुखमें अनंतकोटि ब्रह्माण्डों से युक्त अपना विराट् स्वरूप दिखला दिया। अपने लालके भोले-भाले छोटेसे मुखमें यह सब देखकर मैया अत्यन्त व्याकुल होकर डर गई। "कृपालु" कहते हैं कि श्रीकृष्ण मैयाको डरी हुई देखकर वात्सल्य-रसके अनुसार फिर अपने स्वरूपमें आ गये, इस प्रकार श्रीकृष्णको दामोदर पद प्राप्त हुआ। (दामोदर—दाम = रस्सी, उदर = पेट।)

(२४)

मोहन ! मोंहि न आँखि दिखायो।
हटो जी, लंगर ! 'करि झगर डगर महं, माखन चाहत खायो।
हौं राधे बरसाने वारी, पितु वृषभानु कहायो।
भाजि जाहु अब बेगि ग्वाल लै, जनि मोय रिस लगवायो।
ढोर चरावत सब दिन बीतत, चाहत मोंहि चरायो।

बिनु पितु-मातु, रूप-कारो अति, जाति-अहीर जतायो।
सुनि रिसाय ग्वालन सैनन दै, बरबस दधि लुटवायो।
सखी विशाखा खीझि श्याम सिर, दधि मटुकी ढुरकायो।
तब 'कृपालु' बलि संग सखिन के, हंसि-हंसि ताल बजायो॥

भावार्थ--(बरसाने की सांकरी-गली में राधिकाजी से बरवस मक्खन मांगते हुए श्रीकृष्णसे वाद-विवाद।)

राधिकाजी कहती हैं; 'हे मोहन ! मुझे आँख दिखाकर धौंस जतलानेका प्रयत्न मत करना। मार्गसे हट जाओ, झगड़ा करके वरवस मक्खन नहीं पा सकते। तुम कदाचित् यह नहीं जानते कि मैं वरसानेमें रहनेवाली वृषभानुकी बेटी राधिका हूँ। अब तुम्हारा कुशल इसीमें है कि शीघ्र ही समस्त ग्वालोंको लेकर भाग जाओ। मुझे क्रोध न दिलाओ। सदासे ढोरोंको चराते रहे हो, इसीसे कदाचित् धौंस बताकर मुझे भी चराना चाहते हो ? तुम्हारी वास्तविकता कौन नहीं जानता ? तुम्हारे माँ-बापका पता नहीं है। शरीरका रंग अत्यन्त ही काला है, एवं जाति भी अहीरकी है।' यह सुनकर श्रीकृष्ण क्रुद्ध हो गये एवं सखाओंको संकेत किया कि मक्खन लूट लो। श्रीकृष्णके संकेतानुसार सखाओंने समस्त गोपाङ्गनाओंका दही और मक्खन लूट लिया। इतनेमें ही अत्यन्त चतुर सखी विशाखाने खीझकर श्रीकृष्णके सिरपर पूरी दहीसे भरी मटुकी ढुलका दी, ताकि जिधर भी जायँ अपराध स्पष्ट रूपसे दिखाई पड़े। "कृपालु" कहते हैं कि श्रीकृष्णको दहीमें सराबोर देखकर हम भी सखियों के साथ ताली बजा-बजाकर हँसने लगे, एवं श्रीकृष्ण खिसियानेसे रह गये।

(२५)

रूठे, कान्ह मनावति माय।
झूठहिं रोदन ठान, मान गहि, लोटत पग पटकाय।
पुनि उठि खीझि, रेनु-तनु-मण्डित, कछुक दूरि चल जाय।

प्रेम-मगन मन ही मन यशुमति, पकरति कर गहि धाय ।
पूछति मातु 'काह तुम लैहौ, काहे धूम मचाय' ।
हरि 'कृपालु' कह तोतरि बोलनि, 'मोहिं दुलहिनि देहु लाय' ।।

भावार्थ—(श्रीकृष्ण आज किसी कारणसे रूठकर बैठे हुए हैं।)

बालकृष्ण रूठे हुए हैं एवं मैया मना रही हैं। बालकृष्ण अकारण ही अत्यधिक रोनेका नाटक कर रहे हैं, साथ ही भूमिपर पैर पटकते हुए लोट भी रहे हैं। जब मैया उनके पास मनाने नहीं जाती, वह तुरन्त ही उठकर खीझे हुए से समस्त शरीरमें धूल लपेटे हुए एवं पैर पटकते हुए, कुछ बड़बड़ाते हुए थोड़ी दूर तक भागे चले जाते हैं। मैया वात्सल्य प्रेममें विभोर होकर मन-ही-मन हर्षसे फूली नहीं समाती और विवश होकर दौड़कर पकड़ लेती है तथा बड़े प्यारसे पूछती है, 'क्यों लाला ! आखिर क्यों आसमान सिरपर उठा रखा है? बताओ तो सही क्या लोगे?' "कृपालु" कहते हैं कि तब बालकृष्णने अवसर देखकर तोतली भाषामें कहा—'मैया ! मुझे दुलहिन ला दे।'

(२६)

रेनु-तनु-मण्डित सुन्दर श्याम ।
भरि भरि मूठि धूरि सिर मेलत,
अवहेलत शत-काम ।
कबहुँक दुध-दँतुलिन मुख आपुहि,
किलकत अति अभिराम ।
कबहुँक कहि तोतरि बोलनि कछु,
गुनगुनात गुन धाम ।
कबहुँक टेरि, बुलावत लै लै,

'दाऊ जी को नाम' ।
लखि यशुमति लै अंक खीझि कह,
गहि निज-युग-भुज-दाम ।
'तुम हो पूर्व जनम को सूकर',
सुनि बिहँसत बलराम ।
बलि बलि जात 'कृपालु' लाल लखि,
सिगरी ब्रज की बाम ।।

भावार्थ—(कवि धूलसे सने हुए बालकृष्णकी समालोचना पूर्वजन्म के शुकरावतारसे करता है ।)

धूलसे सने हुए बालकृष्ण अत्यन्त ही सुन्दर लग रहे हैं । बालकृष्ण धूलको मुट्ठियोंसे भर-भरकर बड़े ही हर्ष के साथ अपने सिरपर डालते हुए करोड़ों कामदेवको लज्जित कर रहे हैं । कभी तो अपने-आपही दूधके दाँतोंसे युक्त मुखसे अति ही मधुर किलकते हैं, कभी तोतली भाषामें कुछ गुनगुनाते भी जाते हैं और कभी मस्तीमें आकर दाऊजीको उनका नाम ले-लेकर पुकारते हैं । इस अवस्थामें मैयाने जब अपने लाला को देखा तो अत्यन्त ही खीझकर अपने दोनों ही हाथोंमें जकड़कर श्रीकृष्ण को उठा लिया, एवं अपनी गोदमें लेकर झकझोरते हुए कहा 'तुम पिछले जन्मके शूकर मालूम पड़ते हो ।' यह सुनकर बलराम हँसने लगे, क्योंकि श्रीकृष्णका पहले शूकरावतार हो चुका है । यह रहस्य बलराम भली-भाँति जानते थे । "कृपालु" कहते हैं कि इस प्रकार धूल-धूसरित बालकृष्णको पूर्व जन्मका शूकर कहते हुए सुनकर समस्त ब्रजाङ्गनायें भी आनंद में विभोर हो गईं, क्योंकि वह भी उपर्युक्त अवतार रहस्यको जानती थीं ।

(२७)

लँगर मोते डगर चलत करे रार ।
लपटि झपटि, झटपट, पनघट, घट, फोर तोर लर हार ।

अली ! गलीं साँकरि, कर काँकरि, ताकरि, गागरि मार ।
कह 'बर जोरी' कर बरजोरी, बरजो री ! बटमार ।
मोंहि कह 'प्यारी भानु-दुलारी, घूँघट वारी नार ।'
नैनन कहि 'कृपालु' कछु सैनन, बैनन नहिं रिझवार ।।

भावार्थ—(राधिकाजी एक सखीसे प्यारे श्यामसुन्दरके किये हुए प्रेमयुक्त ऊधमोंका वर्णन करती हैं ।)

हे सखी ! वह ऊधमी श्यामसुन्दर मुझे मार्गमें चलते हुए भी तंग करता हैं । मुझे देखते ही तुरन्त ही झपटकर पनघटपर लपट जाता हैं और जब मैं कुछ खरी-खोटी सुनाती हूँ, तब मेरा घड़ा भी फोड़ डालता है, तथा मेरी मोतियोंकी लड़ों एवं मेरे हारोंको भी तोड़ डालता है । अरी सखी ! बरसानेकी साँकरी-गलीमें मेरी मटकीमें ताककर (निशाना लगाकर) काँकरी मारता है । अरी सखी ! वह निर्लज्ज मुझसे कहता है कि हमारी-तुम्हारी जोड़ी अच्छी है एवं ऐसा कहकर बरबस ऊधम करता है । मैं चिल्लाकर कहने लगती हूँ, 'अरे ! कोई इस ऊधमीसे बचाओ ।' मुझे बार-बार 'प्यारी भानुदुलारी' एवं 'घूँघटवारी नारि' कहकर पुकारता है । "कृपालु" कहते हैं कि अरी सखी ! कहाँतक कहूँ, वह बिना कुछ बोले ही, आँखोंके कटाक्षपातसे ही पता नहीं क्या-क्या बातें करता है ?

(२८)

सखी ! मोय दैजा दधि को दान ।
हौं ब्रज को सरताज न जानति ?, भरी गरूर गुमान ।
सखी कही 'मोते जनि अटकिय, मोय न जान कोउ आन' ।
हौं ललिता, वृषभानुलली की, सखियन परम-प्रधान ।
यह ब्रज-भूमि लाड़लीजू की, सूधेंहि करिय पयान ।

अबहीं जाय कहौं यशुमति ते, 'करु साँटी को ध्यान'।
हँसि 'कृपालु' कह 'सखि ! साँटी हम, खात भये बलवान' ॥

भावार्थ—(बरसानेकी साँकरी-गलीमें दही बेचनेके लिए जाती हुई ललिताको रोकते हुए सखाओंके संग खड़े होकर श्रीकृष्ण कहते हैं।)

हे सखी ! मुझे कर-रूपसे दहीका दान देती जा। मैं इस ब्रजका राजा हूँ : क्या तू यह नहीं जानती ? जो इठलाती हुई बड़े गुमानके साथ बिना दान दिये चली जा रही है। सखीने उत्तर दिया कि मुझसे न अटकना, मुझे कोई ऐसी-वैसी न समझना। मैं वृषभानुनन्दिनीकी सखियोंमें भी परमप्रमुख सखी 'ललिता' हूँ। बड़े दुःखकी बात है कि ब्रजमें रहते हुए भी तुमको अभीतक यह पता नहीं है कि इस ब्रजकी महारानी राधिकाजी हैं। तुम्हें कौन पूछता है ? सीधे ही अपना रास्ता पकड़ो, नहीं तो अभी जाकर तुम्हारी मैया से यह सब बातें कह दूंगी, जिसका क्या परिणाम होगा यह तुम डंडेकी मारका ध्यान करके ही समझ सकते हो। "कृपालु" कहते हैं कि तब भगवान्‌ने यह कहा कि हे ललिता सखी ! हमको सांटीकी धौंस मत बता, साँटी खाते-खाते हम अब बलवान हो गये हैं। बिना दहीका दान लिये हम तुझे किसी भी प्रकार आगे नहीं जाने देंगे।

(२८)

हमारे बैर परीं ब्रजबाल।
ये अति चतुर, मातु ! मैं भोरो,
जानत नहिं कछु चाल।
मोको इकलो देखि बुलावति,
उर विष बचन रसाल।
सरल सुभाय जात ढिग जबही,

पकरि लेतिं तत्काल ।
'माखन खाय निहाल करहु चलि,
मोरेहु घर नंदलाल ।'
हौं साँचेहि पतियाय गयौं घर,
इन मन रह कछु जाल ।
पुनि पुनि पकरि नचावति मो कहँ,
मारत गुलचन-गाल ।
कोउ छोरति अम्बर, कोउ नूपुर,
कोउ मुरली, कोउ माल ।
बाबा की सौगन्ध खवावति,
'कहहु आइहौ काल ।'
पुनि बरबस मुख दधि लपटावति,
हँसति सबै दै ताल ।
कर गहि पुनि इत बात बनावति,
कहँ लौं कहौं कुचाल ।
हौं 'कृपालु' बालक ये धींगरि,
सुनि सखि होति निहाल ।।

भावार्थ—(गोपियोंके वार-वार उलाहना देनेपर श्रीकृष्णने अपने को निर्दोष सिद्ध करनेके लिए कहा ।)

मैया ! यह समस्त ब्रज-गोपाङ्गनायें हमें तंग करनेपर तुली हुई हैं । मैया ! यह ब्रज-बालायें अत्यन्त ही चालाक हैं और मुझे तो तू जानती ही है कि कितना भोला-भाला हूँ, किसी प्रकारका भी छलकपट नहीं जानता । मैया ! ये गोपियाँ

मुझे अकेला देखकर हृदयमें विष भरे हुए बड़ेही मधुर स्वरोंमें बुलाती हैं । और मैं अपने सरल स्वभाव के कारण जैसे ही इनके पास जाता हूँ, वैसे ही ये सब मुझे पकड़ लेती हैं और मुझसे कहती हैं कि, 'हे नन्दलाल ! हमारे घर भी चलकर एवं मक्खन खाकर हमें कृतार्थ करो ।' मैं इनकी बातोंका सचमुच ही विश्वास करके इनके घर जाता हूँ, किन्तु इनके मनमें कपट ही भरा रहता है । ये व्रज गोपियाँ मुझे पकड़-पकड़कर सब-की-सब बारी-बारी से नचाती हैं, एवं सभी हमारे गालमें गुलचे मारती हैं । अरी मैया ! कोई तो पीताम्बर छीनती है, कोई नूपुर, कोई मुरली एवं कोई बनमाला छीनती है । अगर तू यह सोचती हो कि फिर तू दुबारा क्यों इनके पास जाता है ? तो मैया सुन, यह सब मिलकर बरबस बाबाकी सौंगध खिलाकर दूसरे दिन आनेके लिए भी प्रतिज्ञा करवा लेतीं हैं । इसके पश्चात् मेरे मुखमें हठात दही लगाकर सभी ताली बजा-बजाकर हँसती है । फिर मेरा हाथ पकड़कर तुम्हारे पास लाती हैं और बातें बनाती हैं कि देखो तुम्हारे लालाने हमारा दही खाया है । मैया ! इनकी करतूतोंको मैं कहाँतक कहूँ, मैं तो तङ्ग आ गया । यदि तू यह कहे कि तू कुछ भी नहीं कर सकता ? तो ''कृपालु'' कहते हैं कि मैया ! मैं क्या करूँ ? मैं एक छोटा-सा बालक हूँ एवं ये करोड़ों हृष्ट-पुष्ट देहवाली (धींगरी) हैं । यह सुनकर सारी गोपियाँ प्रेममें विभोर हो गईं और उन्हें धींगरी शब्दपर हँसी आ गई ।

(३०)

हमारो कौन बनैगो लाल ?
हमरी बात कौन मानैगो ?, 'हौं' कह हरि तत्काल ।
'कजरी गाय दूध को पी है ?', यह सुनि भज्यौ गोपाल ।
महरि पकरि कर बहु समुझावत, नहिं समुझत हठ-बाल ।
जो यह दूध पियत है, 'वाकी, चोटी होति विशाल ।'
'बेगि बड़ो ह्वै जात' कान्ह सुनि, फँस्यौ कीर ज्यौं जाल ।

घूँटेक पियत, लखत पुनि चोटिहिं, हँसत सकल मिलि ग्वाल।
इमि धोखेंहि पय पिये लाल जब, चलीं यशोमति चाल।
जो इक बार 'कृपालु' कहे पिय, चोटी जाति पताल ॥

भावार्थ—(मैया लालाको दूध पिलाने के लिए मधुर चाल चलती है।)

(मैया कहती है—'हमारा लाला कौन बनेगा?' फिर कहती है—'हमारी बात कौन मानेगा?' तुरन्त ही बलरामके भी पहले बालकृष्णने कहा 'मैं'। फिर मैयाने कहा—'कजरी गैयाका दूध कौन पीयेगा।' दूधका नाम सुनते ही बालकृष्ण चल दिये। मैया हाथ पकड़कर अनेक प्रकारसे समझाती है, पर बालहठके कारण किसी प्रकार दूध पीने कों तैयार नहीं होते। तब मैयाने कहा—'जो यह दूध पीता है उसकी चोटी बड़ी लम्बी हो जाती है।' तब भी श्रीकृष्ण तैयार नहीं हुए। तब फिर मैयाने कहा—'जो यह दूध पीता है वह शीघ्र ही बड़ा हो जाता है।' बड़ा होनेकी बात सुनते ही श्रीकृष्ण मैयाके बगल में तोतेकी तरह फँसकर दूध पीने को तैयार हो गये, किन्तु जितने घूंट दूध पीते हैं उतनी ही बार अपनी चोटीको अपने हाथसे टटोलते हैं। यह देखते हैं बढ़ी कि नहीं। यह भोलापन देखकर समस्त ग्वाल-बाल एक साथ हँसने लगते हैं। इस प्रकार अबकी घूंटमें चोटी बढ़ जायेगी, इस धोखेमें जब सारा दूध बालकृष्ण पी गये तब मैयाने सोचा कि अब पुनः चोटी न बढ़नेके कारण यह दूध कैसे पियेगा? यह सोचकर "कृपालु" कहते हैं कि चाल चलते हुए मैयाने कहा—'जो एक ही बार कहनेसे दूध पी लेता हैं इसकी चोटी पाताल तक बढ़ जाती है।'

(३१)

हरि! जनि मो कहँ आँखि दिखायो।
अपनी गाय हिगारि चरावहु, कियो बहुत मन भायो।
हौं सहि सकौं न धौंस तिहारी, केहि बल रह डहकायो।

बल भैया को अनुज जानि हौं, अब लौं तोहिं बचायो ।
कबहूँ जाय खिरक परि सोयो, कबहुँक बेनु बजायो ।
तुम्हरे बाबा को नहिं चाकर, जाकर धौंस बतायो ।
खात न नंद बबा को दीनो, रहत न उन घर छायो ।
सखन रिसाने मोहन जाने, नैन नीर भरि आयो ।
सखे ! 'कृपालु' लोक हूँ दीखत, गोद लियो इतरायो ।।

भावार्थ—(श्रीकृष्ण एवं सखाओंमें गायोंके बहोरनेके बारेमें कुछ झगड़ा हो गया है, इसपर सखालोग श्रीकृष्णको डाँट रहे हैं ।)

अरे कन्हैया ! तुम हमें आँख मत दिखाना । अपनी गायोंको निकालकर पृथक् कर लो, तथा अपने-आप चराओ । तुमने बहुत मनमाना कर लिया है । हम बार-बार तुम्हारी धौंस नहीं सह सकते, तुम अपनेको क्या समझते हो ? तुमको अबतक हम बलरामका छोटा भाई समझकर बचाते रहे हैं । तुम कभी जाकर डेरेपर सो जाते हो, कभी किसी पेड़पर चढ़कर वंशी बजाया करते हो । हम गाय चरानेके लिए तुम्हारे बापके नौकर नहीं है जिनका बार-बार भय दिखाते हो, तथा तुम्हारे नन्दबाबाका दिया हुआ भी नहीं खाते, एवं उनके छवाये हुए घरमें भी नहीं रहते । समझे ! अपने प्यारे सखाओंको इस प्रकार क्रुद्ध देखकर श्रीकृष्णकी आँखोंमें आँसू भर आये, क्योंकि उन सखाओं के बिना श्रीकृष्ण एक क्षण भी नहीं रह सकते । इतनेमें ही व्यंग-रूपसे "कृपालु-जी" कहने लगे, 'प्यारे सखाओं ! मैंने संसारमें भी देखा है कि गोद लिया हुआ बहुत इतराया करता है । आखिर यह भी तो नन्दके गोद आये हैं, पुत्र तो वसुदेवके हैं ।'

———

मिलन माधुरी

(१)

आजु सखि ! ह्वै गये नैना चार ।
हौं दधि बेचन जात वृन्दावन, देख्यों नन्दकुमार ।
सो छबि लखत बनत, नहिं बरनत, रूप-माधुरी-सार ।
तन-मन-प्रान निछावर करि मैं, लियो मोल रिझवार ।
पुनि-पुनि कह्यौ 'हमारी प्यारी', सुनि-सुनि गइ बलिहार ।
कत 'कृपालु' बलि जात नन्दको, कै गयो बण्टाढार ।।

भावार्थ—(एक गोपीका प्रियतम श्यामसुन्दरसे प्रथम-मिलन, एवं उसकी अपनी सहेलीसे बातचीत ।)

अरी सखी ! आज मैं वृन्दावनकी ओर दही बेचने जा रही थी । अचानक ही मार्गमें प्यारे श्यामसुन्दर दिखाई पड़े और उनकी आँखोंसे हमारी आँखें चार हो गईं । अरी सखी ! वह रूप-माधुरी देखते ही बनती थी, वर्णन करनेमें नहीं आ सकती । मानों सौन्दर्यकी मधुरताका सार निकालकर वह छवि बनी हुई हो । मैं भी उस छविपर अपना तन, मन, प्राण सर्वस्व न्यौछावर करके सदाके लिए उनकी बन गई । उसने बार-बार मुझसे 'हमारी प्यारी', ऐसा कहा । मैं इस शब्दको सुनकर प्रेममें विभोर हो गई । "कृपालु" कहते हैं कि अरी सखी ! तू नाहक ही इतनी अधिक आनन्दमें मग्न हो रही है, उस छलिया नन्दकुमारने तो तेरा लोक-परलोक सभी चौपट कर दिया, क्योंकि अब तू सदा ही उसके मधुर-मिलनके लिए तड़पा करेगी ।

(२)

इकली जनि जइयो कहुँ गोरी।
श्याम सलोना नंद डुठोना,
टोना करत फिरत ब्रज खोरी।
नवकिशोर सिरमोर छलिन को,
तू अति भोरी सरल किशोरी।
जादू तंत्र, मंत्र सब जानत,
याते बात मानि लेहु मोरी।
बिनु बैनन नैनन-सैनन ही,
वाते लेत नात निज जोरी।
हा प्राणेश्वर ! प्राणनाथ हा !,
कहि कहि भजिहौ इत उत को री।
बनि उन्भादिनि नचिहौ छिन-छिन,
पी हौ लोक लाज सब घोरी।
परी ठगोरी सब ब्रज गोरी,
को 'कृपालु' अस जो न ठगो री ?

भावार्थ— (एक चतुर सखी एक भोली-भाली सखीको श्यामसुन्दर के मिलनसे रोकती हुई सावधान करती है।)

अरी सखी ! तू घरसे अकेली कहीं भी मत जाना, क्योंकि मैंने सुना है कि नन्दकुमार श्यामसुन्दर ब्रजकी गलीमें घूमता फिरता है, एवं जादू किया करता है। वह किशोर अवस्था का है, एवं छलियोंका सरताज है और तू भी किशोर अवस्थावाली एवं अत्यन्त ही भोली-भाली सरलहृदया है। अरी सखी ! वह

छलिया विविध प्रकारके जादू, तंत्र, मंत्र आदि सभी कुछ जानता है, अतएव तू मेरी बात पूर्णरूपसे मान ले। अरी सखी! बिना कुछ बातचीत किये ही केवल नेत्रोंके संकेतोंसे वह प्रत्येकको सदाके लिए मोहित करके अपनी बना लेता है। उसकी बन जानेपर फिर तू 'हा प्राणेश्वर! हा प्राणनाथ!!' कहकर मधुर-मिलनके लिए इधर-उधर पागलकी भाँति भागती फिरेगी तथा उन्माद के रोगी की भाँति लोकलाजको खोकर प्रेममें विभोर होकर निरंतर नाचा करेगी। "कृपालु" कहते हैं कि समस्त ब्रज-गोपियाँ जो भी उसके सम्मुख गईं, उसकी ठगाईमें आ चुकी हैं। समस्त ब्रह्माण्डोंमें ऐसा कोई भी जीवात्मा नहीं है जो उसके समक्ष जाकर पागल न बन जाय।

(३)

कछू सखि! कै गयो मोपै आज।
हौं पनघट-तट गई भरन घट, चट आयो ब्रजराज।
हौं अनजानी, भेद न जानी, जुरे नैंन गई लाज।
नैंन-सैंन तन, मन अरु प्रानन, गह्यौ लवा जनु बाज।
अब हम बिकल, न कल इक पल कहँ, लगत न चित घरकाज।
सागर बिरह 'कृपालु' बूड़िहौ, न तु चढ़ आश जहाज॥

भावार्थ—(एक गोपीका प्यारे श्यामसुन्दरसे मिलन, एवं उसका अपनी सखी से कहना।)

अरी सखी! आज तो मेरे ऊपर प्यारे श्यामसुन्दरने जादूका-सा काम किया है। मैं पनघटपर घड़ा लिए हुए जल भरने गई थी कि एकाएक वह नन्दकुमार वहीं पर आ गया। मैं भोली-भाली इस रहस्यको बिलकुल ही न समझ सकी, इतनेमें हमारी आँखें श्यामसुन्दरकी आँखोंसे जाकर ऐसी मिल गईं कि उन्होंने लोकलाजकी भी परवाह नहीं की। आँखोंके कटाक्षपातोंने मेरे तन, मन एवं प्राणोंको वैसे ही अपना बना लिया, जैसे कि बाज नामक पक्षी लवापर

झपट्टा मारकर उसे अपने वशमें कर लेता है। उसी क्षणसे, अरी सखी ! मैं अत्यन्त ही व्याकुल हूँ, मुझे एक क्षणको भी चैन नहीं है, एवं घरमें भी किसी काम-काजमें मन नहीं लगता। "कृपालु" कहते हैं कि अरी सखी ! तू जल्दी ही 'प्रियतम अवश्य मिलेंगे' इस आशारूपी जहाजकी शरण लेले, अन्यथा विरहके अगाध समुद्रमें डूबकर अपने प्राणोंसे भी हाथ धो बैठेगी। अर्थात् पूर्ण-विश्वासपूर्वक यह आशा रख कि प्रियतम अवश्य मिलेंगे, अन्यथा प्राण निकल जायेंगे।

(४)

कान्ह कछु कै गयो टोना री।
यमुना-तट रह धेनु चरावत, श्याम सलोना री।
हौं तहँ गई, अचानक देखी, नंद डुठोना री।
देखत ही मोंहि डस्यौ दृगन जनु, नागिनि-छौना री।
तन, मन, प्रान सबै सखि लै अब, दै गयो रोना री।
दिवस 'कृपालु' न चैन एक छिन, रैन न सोना री॥

भावार्थ—(एक सखीका प्यारे श्यामसुन्दरसे प्रथम मधुर-मिलन, एवं उसका अपनी एक अंतरंग सखीसे कहना।)

अरी सखी ! श्यामसुन्दर मेरे ऊपर कुछ टोना-सा कर गया। यमुनाके किनारे वह श्यामसुन्दर गाय चरा रहा था। मैं अचानक ही वहाँपर गई, एवं मैंने उसको देखा। देखते ही उसकी आँखोंने नागिन बनकर मुझे डस लिया। अरी सखी ! वह मेरा तन, मन और प्राण सभी-कुछ लेकर उसके बदले में रोना-मात्र ही दे गया। "कृपालु" कहते हैं कि अब उसके वियोगमें न तो मुझे दिनमें एक क्षणके लिए चैन ही मिलता है और न तो रातमें नींद ही आती है अर्थात् उसके मधुर-मिलनके लिए निरंतर तड़पती ही रहती हूँ।

(५)

गयो हरि मो पै जादू डार ।
हौं यमुना-स्नान करन गई, तहँ रह नन्दकुमार ।
पिय दृग पिय-रस-रूप-माधुरी, दृगन बचाइ निहार ।
रस-लंपट दृग-पट घूँघट-पट, करन चहत जनु पार ।
जब घट भरि चलि घर नटवर तब, चट काँकरि दइ मार ।
फूट्यो घट टूट्यो घूँघट पट, औचक दृग भये चार ।
उत 'कृपालु' नागरि इत गागरि, बहत प्रेम-जल धार ।।

भावार्थ—(एक सखीका, प्यारे श्यामसुन्दरसे आँखोंको वचाते हुए भी, अद्भुत प्रथम-मिलन ।)

हाय ! हाय !! उस छलिया श्यामसुन्दरने मेरे ऊपर जादू-सा कर दिया है। मैं यमुना-स्नान करने गई थी, अचानक वहींपर वह भी आ गया । मैंने घूँघटके ओटसे ही उसकी आँखोंको बचाते हुए अपनी आँखोंके द्वारा रूपरस-माधुरीका पान किया । पान करते ही आँखें उस रसमें इतनी दीवानी हो गईं कि वे मानों अब घूँघट के वस्त्रको चीरकर निकल जाना चाहती हैं । किन्तु फिर भी मैंने अपनी आँखोंको उनकी आँखोंसे नहीं मिलने दिया । जब मैं जल-का घड़ा भरकर अपने घरकी ओर चलने लगी, तब उस छलिया श्यामसुन्दरने तुरंत ही पीछेसे मेरे घड़ेमें कंकड़ी मार दी। मेरे घड़ेमें छेद हो गया एवं मैंने चौंककर अनजान अवस्थामें, घूँघटकी परवाह न करते हुए, ज्यों ही पीछेकी ओर मुड़कर देखा त्यों ही अचानक आँखें चार हो गईं । "कृपालु" कहते हैं कि उस समयकी क्या ही अनुपम झांकी थी ? एक ओर तो उस सखीके नेत्रोंसे प्रेम-अश्रु बह रहा था, एवं दूसरी ओर घड़ेसे जल बह रहा था । कविने उन दोनों को उसी अवस्थामें छोड़ दिया ।

(६)

मोहि लियो, मो मन मदनगोपाल ।
देखत ही छबि भई बावरी, ललितत्रिभंगीलाल ।
कासों, केहिबिधि, कहा कहूँ अब, सब हँसिहैं दै ताल ।
दोउ नैना धैना करि बैठे, मैं ना समझी चाल ।
टोना सों कछु कै गयो मोपै, भई हाल बेहाल ।
तुम 'कृपालु' निज भाग सराहिय, फँसे न जो येहि जाल ।।

भावार्थ—(एक सखीका प्यारे श्यामसुन्दरसे प्रथम मधुर-मिलन, एवं उसका अपने-आपसे कहना ।)

हाय ! हाय !! आज तो मदनमोहनने मेरा मन ही मोहित कर लिया । मैं उनकी तीन जगहसे टेढ़ी अनुपम रूप-माधुरी को देखते ही पागल-सी हो गई। अब यह बात भला किस प्रकार एवं किससे कहूँ ? यदि कहूँ तो भी सुननेवाले ताली बजा-बजाकर मेरी हँसी उड़ायेंगे । ये मेरी दोनों आँखें बिना मुझसे पूछे ही उनसे छेड़-छाड़ कर बैठीं । मैं भोली-भाली इन आँखोंकी चालाकी बिलकुल ही न समझ सकी । देखते ही उसने मेरे ऊपर कुछ जादू-सा कर दिया, एवं मैं तत्क्षण ही अपनी सुधि-बुधि खो बैठी । अब मैं प्रियतमके मिलनेके लिए अत्यन्त ही व्याकुल हूँ । "कृपालु" अपने लिए कहते हैं कि हे कृपालु ! तुम अपने भाग्यकी भूरि-भूरि सराहना करो जो उस छलियाके रूप-सौन्दर्यके जालमें नहीं पड़े, अन्यथा तुम्हारा भी हाल उपर्युक्त गोपीकी भाँति ही होता ।

(७)

लूटि मोंहि लै गयो नन्दकुमार ।
यमुना-पुलिन, अलिन-सँग हौं गइ, ह्वै गये नैना चार ।
नैनन-नैनन बात भई कछु, कै गयो कछु रिझवार ।

मधुर-मिलन-रस प्याय हाय ! अब, दै गयो बिरह अपार ।
हौं भूली सुधि-बुधि तब कर गहि, लै गयो कुंज मझार ।
अब 'कृपालु' जनि कहिय जानि गइ, बै गयो बीजहिं प्यार ॥

भावार्थ—(एक सखीका प्यारे श्यामसुन्दरसे प्रथम-मिलन, एवं उसका अपने-आपसे कहना ।)

आज उस नंदके कुमारने मेरा तन, मन, धन सर्वस्व छीन लिया । मैं सखियोंके संग यमुनाके किनारे गई थी । वहीं उसकी आँखोंसे मेरी आँखें मिल गई एवं आँखों-आँखोंसे ही संकेतमें कुछ बातें हुईं, तथा वह छलिया तत्क्षण ही मेरे ऊपर कुछ जादू-सा कर गया । उपर्युक्त मधुर-मिलनका रस पिलाकर हाय ! हाय !! अब वह मुझे असह्य वियोग प्रदान कर गया । मैं विरहमें जब व्याकुल हो गई, एवं उसकी रूपमाधुरीका ध्यान करते हुए अपनी सुधि-बुधि खो बैठी, तब वह छलिया मुझे बेसुध अवस्थामें ही हाथ पकड़कर लताओंके कुंजकी ओर ले गया । "कृपालु" कहते हैं कि बस-बस अब आगे मत कहो, मैं समझ गई, वह तुम्हारे हृदय में वास्तविक विशुद्धप्रेमका बीज बो गया । तुम धन्य हो ।

(८)

सखि ! हरि 'छू-मंतर' सों करि गयो ।
हौं जमुना-जल भरन गई रहि,
सखि ! हरि तहँ किरिकिरि सों परि गयो ।
दुहुंन दृगन मिलि कछु बतराये,
सखि ! हरि तुरतहिं हिय सों हरि गयो ।
अब दिन रैन चैन नहिं कैसेहुँ,
सखि ! हरि नैनन जल सों भरि गयो ।

पलक लखात कलप जनु उन बिन,
सखि ! हरि विरह शैल सों धरि गयो।
तुम 'कृपालु' मूरख, लखि बिरहिनि,
सखि ! हरि प्रीति जुरन सों डरि गयो ॥

भावार्थ—(एक सखीका प्रियतम श्यामसुन्दरसे प्रथम मधुर-मिलन, एवं उसका अपनी अंतरंग सखीसे कहना।)

अरी सखी ! आज तो श्यामसुन्दर मेरे ऊपर कुछ जादू पढ़कर मोहनमंत्र-के द्वारा छू-मन्तर-सा कर गये। मैं यमुनामें पानी भरने गई थी। अरी सखी ! वहींपर श्यामसुन्दर मेरी आँखोंमें किरकिरी-सी वनकर पड़ गये (किरकिरीसे अभिप्राय है अत्यन्त छोटा-सा कंकड़का टुकड़ा)। इसके पश्चात् हमारी आँखोंने उनकी आँखोंसे मिलकर कुछ बातें कीं। अरी सखी ! वातें करते ही श्यामसुन्दरने मेरा मन चुरा लिया। अब दिन-रात एक क्षणके लिए भी किसी भी प्रकारसे चैन नहीं है। अरी सखी ! वे श्यामसुन्दर तो मेरी आँखोंमें सदाके लिए आँसुओंका जल-सा भर गये। अब उनके विना एक क्षण भी हमारे लिए कल्प के समान भारी बन गया है। अरी सखी ! वह छलिया तो मेरे हृदयके ऊपर विरहका पर्वत-सा रख गया है। बिरहिणीकी उपर्युक्त बहिरंग दुःखद अवस्थाओंको देखकर "कृपालु" अपने लिए कहते हैं कि तुम अत्यंत ही मूर्ख हो जो विरहिणीको देखकर श्यामसुन्दरसे प्रेम करने में डर गये। उस विरहमें मिलन का कितना अपार आनन्द है, इसे पूर्णरूपसे विरहिणी ही अनुभव करती है।

(९)

सखि ! इक सपनो देख्यों रात।
बंशी-वट तट-तरणि-तनूजा, हौं इकली रहि जात।
औचक लख्यौं एक तहं ढोटा, सुन्दर श्यामल गात।

पियरो पट, कटि काछनि काछे, मोर-मुकुट बल खात।
कर मुरली, गल-गुंजमाल भल, गति सों हंस लजात।
अति रस भरे नैन रतनारे, कजरारे मदमात।
कटि किंकिनि, पग पायल सोहत, मन मोहंत मुसकात।
कहं लौं कह सखि ! रूप माधुरी, कोटि काम सकुचात।
लखतहि हौं सखि ! भइ वश ताके, बड़ी बुरी यह बात।
यह 'कृपालु' कछु भेद अलौकिक, जग न होत अस नात॥

भावार्थ—(श्रीवृषभानुनन्दिनी राधाका श्यामसुन्दरसे प्रथममिलन।)

श्रीराधिकाजी अपनी किसी अंतरंग सखी से कहती हैं कि हे सखी ! आज रातमें मैंने एक स्वप्न देखा है। वह यह है कि मैं वंशीवटपर यमुनाके किमारे अकेली जा रही थी। जाते हुए ही अत्यन्त सुन्दर श्याम रंगका अचानक ही एक वालक देखा, जो पीताम्बर पहने हुए था, कमरमें काछनी बाँधे हुए था, एवं सिरपर झूमता हुआ मयूर-पङ्खोंका मुकुट धारण किये हुए था। हाथमें मुरली एवं गलेमें गुंजोंकीमाला पहने हुए था, तथा हँसोंको भी लजानेवाली अत्यन्त मतवाली चालसे चल रहा था। उसकी आँखें अत्यन्त ही मतवाली एवं प्रेमरससे भरी हुई थीं। आँखोंमें स्वाभाविक ही काजल-सा लगा हुआ था। कमरमें करधनी एवं पैरोंमें नूपुर सुशोभित हो रहे थे, एवं मुस्कराते हुए हठात् मनको मुग्ध कर रहा था। अरी सखी ! उसके रूप माधुर्यका कहाँतक वर्णन करूँ, करोड़ों कामदेव भी फीके लगते थे। अरी सखी ! उसके देखते ही मैं उसके वशमें हो गई, किन्तु यह अत्यन्त ही बुरी बात है। "कृपालु" कहते हैं कि यह कुछ लोकातीत रहस्य है, क्योंकि संसारमें किसीका किसी से प्रेम स्वप्नावस्था में नहीं हुआ करता।

(१०)

सखी ! मैं गिरिधर हाथ बिकानी।
पी बिनुमोल अमोल-मधुर-मधु, भइ पिय प्रेम दिवानी।

छकी पिया-रस-रूप-माधुरी, लोग कहैं 'बौरानी'।
रोम रोम रमि रह्यो श्याम-रस, सुधि-बुधि देह भुलानी।
तृण सम डारि वेद-मर्यादा, लोक-लाज कुलकानी।
पिय 'कृपालु' सखि ! हरि-रस-मदिरा, करति सदा मनमानी।।

भावार्थ—(एक सखीका प्यारे श्यामसुन्दरसे प्रथम मधुर-मिलन, एवं उसका एक सखीसे कहना।)

अरी सखी ! आज तो मैं प्यारे श्यामसुन्दरके हाथ सदाके लिए बिक गई। बिना मूल्य दिये ही अमूल्य मधुर प्रेम-मदिराको पीकर प्रियतमके प्रेममें उन्मत्त हो गई। मुझे प्रियतमकी रूप-माधुरीमें दीवानी देखकर लोग पगली कहते हैं। अरी सखी ! मेरे रोम-रोममें श्याम-रस समा गया है। मुझे अपने शरीरकी बिलकुल ही सुधि-बुधि नहीं रहती है। लोक-लाज, वंशकी मर्यादा एवं वेदकी आज्ञाओंको भी मैंने तृणके समान फेंक दिया है। "कृपालु".अपने लिए कहते हैं कि तू भी इस प्रेमरस-मदिराका पान किया कर, सदाकी अपनी मनमानीको छोड़ दे।

(११)

सखी ! मैं बिकी आजु बिनु दाम।
कियो न मोल-तोल कछु मोते, लियो मोल घनश्याम।
करि तन, मन, अरु प्रान निछावर, भइ जग सों बेकाम।
अब सोइ नाम-रूप-गुन-लीला, सुमिरत आठो याम।
भुक्ति-मुक्ति तजि पियत प्रेम-रस, कान्तभाव निष्काम।
जाको चहत 'कृपालु' पिया बस, सोइ सुहागिनि बाम।।

भावार्थ—(एक गोपीका प्यारे श्यामसुन्दरसे प्रथम-मिलन एवं उसका अपनी सखीसे कहना।)

अरी सखी ! आज मैं तो बिना मोलके ही बिक गई। उस प्यारे श्यामसुन्दरने बिना कुछ मोल-तोल अर्थात् बात-चीत किये ही मुझे मोल ले लिया, अर्थात् सदाके लिए अपनी बना लिया। मैं भी तन-मन, प्राण आदि सर्वस्व देकर संसारसे सदाके लिए पृथक् हो गई। अरी सखी ! अब मैं श्यामसुन्दरके नाम, रूप, गुण, लीलाका निरन्तर ही स्मरण कर रही हुँ। संसारके सुख एवं मोक्ष आदिके सुख, सभीको छोड़कर कान्तभावयुक्त निष्काम-प्रेमका ही निरंतर पान कर रही हूँ। "कृपालु" कुछ लम्बी साँसें भरते हुए कहते हैं कि जिसको पिया चाहता है वही सुहागिनी स्त्री हो सकती है अर्थात् मुझ अभागिनी के भाग्यमें ऐसा विधाताने अभीतक विधान ही नहीं रचा।

(१२)

सखी ! मैं ह्वै गइ काउ की आज।
वे मेरे, मैं उनकी, जग ते, कहा हमारो काज।
माँगत रही भीख सब दिन ते, बंध्यौ आज सरताज।
जेहि बिधि बढ़ै प्रीति छिन छिन सोइ, सजिहौं अब सब साज।
इमि कहि बार-बार भइ बावरि, नाचति नेकु न लाज।
हम 'कृपालु' जानी, नहिं छानी, मोते, सो ब्रजराज॥

भावार्थ—(एक सखीका प्यारे श्यामसुन्दरसे प्रथम-मिलन, एवं उसका एक सखीसे कहना।)

अरी सखी ! मैं तो आज किसीकी हो गई। वह हमारा हो गया, मैं उसकी हो गई। अब मुझे संसारसे कुछ भी मतलब नहीं रहा। अरी सखी ! अनादिकालसे अनन्तानन्त जन्म लेकर, अनन्तानन्त जीवों से जिस विशुद्धप्रेमकी भीख मांगा करती थी, वह विशुद्धप्रेम आज मिल गया, एवं आज मुझ भिखारिन के सिरपर साम्राज्ञीका (राजरानीका) मुकुट बँध गया। अब मैं वही कार्य

करूँगी जिससे प्रियतम प्रसन्न हों, एवं उनसे हमारा प्रतिक्षण प्रेभ बढ़े। अपनी सखीसे इस प्रकार—'मैं किसीकी हो गई' 'मैं किसीकी हो गई', बार-बार कहकर वह दीवानी-सी होकर नाचने लगी। उसने लोक-लाजकी बिलकुल परवाह न की। उसकी ऐसी दशा देखकर "कृपालु" ने कहा कि तुम जिसकी हो गई हो मैं उसे जान गई, मुझसे तुम छिपा नहीं सकती, वह आनंदकंद श्रीकृष्णचन्द्र हैं।

(१३)

साँवरो जादूगर सरकार।
लखतहिं लटू भटू ह्वै जावति, देत मूठि सी मार।
ब्याही, जनब्याही सब ही सखि, मोहीं ब्रज की नार।
जित देखूँ तित ही तिय तलफति, कहि हा प्राणाधार।
बिंधी बान हिरनी ज्यौं बन बन, ढूँढत नन्दकुमार।
जब 'कृपालु' सबही बौराईं, को केहि कहइ गंमार॥

भावार्थ—(समस्त ब्रजगोपियोंको प्यारे श्यामसुन्दरके मधुर-मिलनके पश्चात्, पुनः मधुर-मिलनकी परम व्याकुलतामें देखकर कवि कहता है।)

वह श्यामसुन्दर जादूगरोंका सरदार है। वह जिसको भी देख लेता है उसके ऊपर मूठ-सी मारकर घायल कर देता है, एवं उसको जो भी कोई देख लेती है वह उसकी रूपमाधुरीमें प्रेम-दीवानी हो जाती है। विवाहिता गोपाङ्गनायें एवं अविवाहिता गोपकन्यायें, सभी सखियाँ उसके प्रेममें दीवानी वन गई हैं। ब्रजकी जिस किसी भी दिशाकी ओर देखती हूं, उसी ओर गोपियाँ 'हा प्राणनाथ!' कहकर तड़पती हुई दिखाई देती हैं। वाणसे बिंधी हुई घायल हिरणीकी तरह व्याकुल होकर वे इधर-उधर अपने प्रियतमको ढूँढ़ती फिरती हैं। "कृपालु" कहते हैं कि जब सभी ब्रजदेवियाँ श्यामसुन्दरके पीछे दीवानी हो गईं, तो कौन गोपी किस गोपीको नासमझ कहे?

(१४)

हर्‌यो सखि ! मो-मन मोहन लाल ।
हौं यमुना-तट, गई भरन घट, पनघट मिल्यो गोपाल ।
सुघर सलोना, नन्द डुठोना, टोना किय तत्काल ।
परी ठगोरी, रति-रस बोरी, भोरी हौं ब्रजबाल !
नैन निगोरे, अति बरजोरे, जोरे नात रसाल ।
अब मोंहि पल पल, परत न कहु कल, जल भर नैन विशाल ।
अनजाने 'कृपालु' मनमाने, ठाने हठ अस हाल ॥

भावार्थ—(एक सखीका प्यारे श्यामसुन्दरसे प्रथम मधुर-मिलन, एवं उसका एक सखीसे कहना ।)

अरी सखी ! आज तो मनमोहनने मेरा मन हर लिया है । मैं यमुनाके किनारे जल भरने गई थी कि अचानक पनघटपर, वह छलिया मिल गया । अत्यन्त ही सुन्दर उस नंदके ढोटाने तत्क्षण ही कुछ टोना सा कर दिया । मैं भोली-भाली गोपी उसकी ठगाईमें आकर, उसके प्रेममें विभोर हो गई । इन हठीले नेत्रोंने भी हठपूर्वक उससे सदाके लिए परम मधुर नाता जोड़ लिया । अब उसके वियोगमें एक-एक क्षण मुझे दुःखदाई हो रहा है, एवं मेरी आँखोंमें बार-बार आँसू भरे जा रहे हैं । ''कृपालु'' कहते हैं कि अरी सखी ! जो भी बिना समझे-बूझे मनमाने ढंगसे ऐसा चांचल्यपूर्ण हठ कर डालती है, उसकी ऐसी ही दशा होती है ।

(१५)

हाय सखी ! दृगन मिलाय मन लै गयो ।
हम भोरी सखि ! वयस किशोरी,

हाय सखी ! न जानूँ का जादू कै गयो ।
भई बावरी तड़पत डोलूँ,
हाय सखी ! दुसह-पीर उर दै गयो ।
मृदु मुसकाय मधुर धुनि 'प्यारी'
हाय सखी ! कहिके न जाने कितै गयो ।
कहा करूँ, कित जाउँ पिया बिनु,
हाय सखी ! पलक, कलप सम ह्वै गयो ।
अब 'कृपालु' केहि भाँति सरेगी,
हाय सखी ! बिष-बेलरि उर बै गयो ॥

भावार्थ—(एक सखीका प्यारे श्यामसुन्दरसे प्रथम मधुर-मिलन, एवं उसका अपनी अंतरंग सखीसे कहना ।)

हाय सखी ! आज तो प्यारे श्यामसुन्दरने मेरी आँखोंको मिलाकर मेरा मन हर लिया । हम किशोर अवस्थावाली अत्यन्त ही भोली-भाली थी । अरी सखी । उसने पता नहीं मेरे ऊपर क्या जादू कर दिया है ? अब मैं उसके लिए दीवानी सी हुई इधर-उधर तड़पती डोल रही हूँ । अरी सखी ! उसने मुझे असह्य विरह-वेदना दे दी है । अब मैं उसके बिना कहाँ जाऊँ, क्या करूँ ? अरी सखी ! अब तो मेरा एक क्षण भी कल्पके समान भारी हो गया है । अरी सखी ! अब क्या होगा ? ''कृपालु'' कहते हैं कि अब तू कैसे जीवित रहेगी ? उस छलियाने तो तेरे हृदयमें बिरहकी विष-बेल बो दी है । अभिप्राय यह है कि अभी तो वह विरह अंकुररूप ही है, किन्तु जब वह वृक्ष बनेगा तब कैसे बीतेगी ?

श्रीकृष्ण-माधुरी

(१)

कहुँ देखे आली ! ललितत्रिभंगीलाल ।
जेहि सिर सोहति मोर-चन्द्रिका, लोचन कमल विशाल ।
भृकुटी कुटिल, कनक श्रुति कुण्डल, मृगमद तिलक सुभाल ।
उर फहरत पट पीत मनोहर, गल बिलसत बनमाल ।
जुगल पाणि मणिमय कंकण कटि, किंकिणि शब्द रसाल ।
झूमत चलत बजत पग पायल, लजवत राजमराल ।
मृदु मुसकाय बजाय मुरलि धुनि, मोहत सब ब्रजबाल ।
सो 'कृपालु' मम जीवन धन पिय, नँदनंदन गोपाल ।।

भावार्थ—एक सखी अपनी अंतरंग सखीसे कहती है कि अरी सखी ! क्या तूने कहीं ग्रीवा, कमर एवं पैरसे टेढ़े श्यामसुन्दरको देखा है ? जिनके सिर पर मोरके पङ्खोंका मुकुट शोभित हो रहा है, एवं जिनके नेत्र कमलके समान बड़े-बड़े हैं। जिनकी भौंहें टेढ़ी हैं एवं कानोमें स्वर्णके कुंडल तथा ललाटमें कस्तूरीका तिलक शोभायमान हो रहा है। जिनके वक्षस्थलपर पीताम्बर लहरा रहा हैं तथा गलेमें सुन्दरवनमाला लटक रही है। जिनके दोनों हाथोंमें मणियों से जटित कंकण हैं तथा कमरमें किंकिणीकी मधुरध्वानि हो रही है। जिनके चरणोंमें नूपुर सुशोभित है तथा जो झूमती हुई चालसे राजहंसको भी लज्जित करते हैं। जो किंचित् मुस्कराकर मधुर मुरलीको बजाते हुए समस्त ब्रज-गोपाङ्गनाओंको मोहित करते हैं। "कृपालु" कहते हैं कि वे ही हमारे प्राणेश्वर प्रियतम हैं जिन्हें लोग नंदनंदन एवं गोपाल भी कहते हैं।

(२)

कुंज बिच बिहरत कुंजबिहारी ।
लै अरविन्द वृन्द कर पिवु को, सजवति नख सिख प्यारी ।
पीत पाग पर अरुन कमल धरि, बलि बलि जात निहारी ।
पीत कमल की नवल कलिन लै, करनफूल श्रुति धारी ।
नील कमल को वलय युगल कर, लटकनि कलिन सँवारी ।
नील, पीत अरु अरुण कमल की, गर मनहर माला री ।
करि 'कृपालु' सिंगार लली इमि, लखि निज सुरति बिसारी ॥

भावार्थ—(लताओंके कुंजमें कुंजविहारी श्रीकृष्ण मधुर विहार कर रहे हैं।)

श्रीकिशोरीजी श्रीश्यामसुन्दर का नखसे शिख तक कमलके फूलोंसे शृंगार कर रही हैं। पीली पगड़ीपर लाल कमलका शृङ्गार किया है एवं उसे देख-देखकर प्रेम-विभोर हो रही हैं। पीले कमलकी नई-नई कलियोंके कर्णफूल पहनाये हैं, नीले कमलके कंकण दोनों हाथोंमें पहनाये हैं एवं कलियोंकी लटकन लगाये हैं। नीले, लाल एवं पीले कमलोंकी सुन्दर माला गलेमें पहनाई है। "कृपालु" कहते हैं कि किशोरीजी इस प्रकार कमलके फूलोंका शृङ्गार करके आनंदमें विभोर हो रही हैं।

(३)

देखु सखि ! झूमत आवत श्याम ।
गति-मदमत्त-गयंद लजावत, मनभावत ब्रजबाम ।
झुकि झुकि झोंके खाति चन्द्रिका, झुकी ग्रीव दिशि बाम ।
मुख आवति पुनि पुनि लटकारी, घुँघुरारी अभिराम ।

मुरली मधुर बजाय बुलावत, लै लै सखियन नाम ।
लखि 'कृपालु' अनुपम छबि, लाजत, कोटि कोटि शत काम ।।

भावार्थ— एक सखी अपनी सखीसे कहती है कि अरी सखी ! उधर देख, झूमते हुए मतवाली चालसे प्रियतम श्यामसुन्दर आ रहे हैं। उनकी चाल मतवाले हाथीको भी लज्जित करने वाली है तथा वे गोपियोंके अत्यंत ही मन भाते हैं। मतवाली चालके कारण उनके सिरकी मोर-चंद्रिका झुक-झुककर झूम रही है। उनकी गर्दन बाईं ओर झुकी हुई है। उनके मुखपर काली-काली अत्यन्त ही सुन्दर घुंघराली लटें बार-बार आ रही हैं। वे गोपियोंके नाम मुरलीकी ध्वनिमें ले-लेकर बुला रहे हैं। "कृपालु" कहते हैं कि इस अनुपम रूप-माधुरी को देखकर करोड़ों कामदेव लज्जित हो रहे हैं।

(४)

बलि जाऊँ रसीले लाल की ।
बिलसत कटि पट पीत मनोहर, लोचन चपल विशाल की ।
उर बनमाल दुकूल अलंकृत, मणिमय मुक्तामाल की ।
पग नूपुर झनकार मधुर मृदु, गवनि मत्त गज चाल की ।
निर्निमेष ह्वै लखु 'कृपालु' छबि, ललित त्रिभंग गोपाल की ।।

भावार्थ—मैं रसिकशिरोमणि श्यामसुन्दरकी बलैया लेता हूँ। उनके अधो-पीत-वस्त्र एवं चंचल विशाल नेत्रोंकी बलैया लेता हूँ। वक्षस्थलपर धारण की हुई वनमाला एवं पीताम्बर तथा मणियुक्त मुक्तामालाओंकी बलैया लेता हूँ। पैरकी कोमल मधुर नूपूरकी झनकारकी, एवं मतवाले हाथी सरीखी चालकी बलैया लेता हूँ। "कृपालु" कहते हैं कि उन तीन भागसे टेढ़े श्यामसुन्दरकी रूपमाधुरी को देखकर देखनेवाले निर्निमेष-से (पलकोंका न गिरना अर्थात् एकटक) रह गये।

(५)

रसिकवर नागर नंदकुमार ।
चन्दन-चर्चित-नील-कलेवर, रूप - सुधा - रस - सार ।
मणिन जटित सिर कनक मुकुट पर, मोरपुच्छ रिझवार ।
अनियारे कारे घुँघरारे, कुंतल कुटिल सँवार ।
मणि मण्डित मकराकृत कुण्डल, गंडनि करत बिहार ।
बाँकी भृकुटि बनी अति बाँकी, लजवत जनु धनुमार ।
गरल-सुधा मदमइ दृग चितवनि, मृदु मुसकनि मनहार ।
गोल कपोल नासिका बेसर, मुक्ताहल भल धार ।
पीताम्बर फहरात भात तनु, घन-दामिनि अनुहार ।
गुंजमाल बनमाल अलंकृत, विविध मणिन उर हार ।
युगकर कंकन, कटितट किंकिनि, काछनि अति अरुणार ।
पद-नख-मणि-छबि-चन्द्र-तिरस्कृत, मृदु नूपुर झनकार ।
चलित-दृगंचल चंचल नैनन, मोहत सब ब्रजनार ।
रोम रोम लखि रूप-माधुरी, कोटि काम बलिहार ।
ताहू पै 'कृपालु' मुरली धुनि, जरे लोन जनु डार ।।

भावार्थ—नंदकुमार रसिकोंके सिरमौर एवं प्रीत-रीतिमें पूर्ण निपुण हैं। उनके नीले शरीरमें चन्दन लगा है एवं वे सुन्दरता-रूपी अमृतके रसके सार स्वरूप हैं। उनके सिरपर मणि-मंडित स्वर्णका मुकुट शोभित हो रहा है, एवं उसमें झूमता हुआ मोरका पंख लगा हुआ है। उनके बाल अत्यन्त ही घने, काले एवं घुंघराले हैं। गालोंपर मकरके समान मणि जटित कुण्डल झूल रहा है। उनकी सुन्दर भौंहें अत्यन्त ही टेढ़ी हैं तथा कामदेवके धनुषको भी लज्जित

करनेवाली हैं। उनकी आँखोंकी चितवनमें अमृत विष एवं मदिरा भरी हुई है, तथा उनकी मधुर-मुस्कान बरबस मन को हर लेती है। उनके गाल अत्यन्त हो बोल तथा उसकी नासिकामें सुन्दर बेसर एवं मुक्ताहल शोभित हो रहा है। उनकें शरीर-रूपी बादल में पीताम्बर बिजलीके समान फहराता हुआ शोभित हो रहा है। उनके वक्षस्थलपर गुंजमाल, बनमाल एवं अनेक प्रकारके मणियोंके हार शोभायमान हो रहे हैं। उनके दोनों हाथोंमें कंकण तथा कमरमें किंकिणी एवं लाल रङ्गकी काछनी अलंकृत हो रही है। उनके पैरके नखमणिके सौंदर्यसे चन्द्रमा भी लजा रहा है तथा मधुर पायलकी ध्वनि हो रही हैं। उनके चंचल नेत्रों के कटाक्ष से समस्त ब्रजगोपियाँ मोहित हो रही हैं उनके प्रत्येक रोम की सौन्दर्यमाधुरीको देखकर करोड़ों कामदेव वार दिये जा सकते हैं। "कृपालु" कहते हैं कि इसपर भी उनकी मधुर मुरलीकी ध्वनि तो और भी घायल कर देती है।

(६)

लखी मैं सखी ! सुन्दर श्यामल गात।
अलकनि कुटिल मनहुँ मुख कमलन,
अवलिन अलि चलि जात।
कनकन मुकुट लकुटि वर कनकन,
कनकन कंकन भात।
कुंडल लोल सुगोल कपोलन,
करत कलोल लखात।
दृग अंजन खंजन मद गंजन,
जन रंजन मदमात।
मणिन जटित कटितट किंकिनि धुनि,
हार मणिन बहु भाँत।

पीताम्बर परिधान काछनी,
ता बिच बेनु सुहात।
चलत चाल अलमस्त चन्द्रिका,
झुकि झुकि झोंके खात।
मणि मण्डित मंजीर गुंजरति,
ताहूपर मुसकात।
कोटि अनङ्ग 'कृपालु' अंग प्रति,
वारत हौं न अघात॥

भावार्थ—(श्रीश्यामसुन्दरके शृंगार-माधुरीका वर्णन।)

अरी सखी ! मैंने सलोने श्यामसुन्दरको देखा है। उनकी घुंघराली अलकें इस प्रकार शोभित हो रही हैं मानों उनके मुखरूपी कमलपर भौरोंका झुंड एकत्र हो-होकर पंक्तिबद्ध हो रहा हो। वे स्वर्णके मुकुट एवं स्वर्ण की ही लकुटी तथा स्वर्णके ही कंकण पहने हुए हैं। उनके सुन्दर गोल कपोलों पर हिलता हुआ चंचल कुण्डल खेल-सा रहा है। उनकी मतवाली आँखोंका अंजन रसिकोंको आनंद देनेवाला एवं खंजन पक्षीके मदको चूर्ण करनेवाला है। उनकी कमरमें मणियोंसे जड़ी हुई किंकिणी की सुमधुर ध्वनि हो रही है। गलेमें विविध प्रकारके मणियोंके हार शोभित हो रहें हैं। वे पीताम्बर पहने हुए हैं, एवं उसके ऊपर काछनी काछे हुए हैं तथा उसके बीचमें मुरली खोंसे हुए हैं। वे मतवाली चालसे चलते हैं अतएव मुकुटकी मोर-चंद्रिका बार-बार झूमती हुई झोंके ले रही है। उनके पैरमें मणियोंसे युक्त नूपुर गुंजार कर रहा है। तिसपर भी उनका मुस्कराना तो बरबस मनको मोहित कर रहा है। "कृपालु" कहते हैं कि हम तो उनके एक-एक अंगपर करोड़ों कामदेवोंको निछावर करते हुए भी तृप्त नहीं होते।

(७)

हमारो दृग अंजन नँदलाल ।
कुंचित कच निकुरम्ब बिडम्बित,
बिलुलित अलि-कुल-माल ।
सिर शिखि पुच्छ तिलक गोरोचन,
लोचन कमल विशाल ।
मत्त-मधुब्रत गुन गुन गुंजित,
गल दोलित बनमाल ।
मंद-स्मित-मृदु-चारु-बिलोकनि,
मोहिनि सब ब्रजबाल ।
कटि किंकिनि कलरव मन रंजिनि,
मुखरित बेनु रसाल ।
चलत 'कृपालु' झूमि झुकि लटपट,
लजवत चाल मराल ॥

भावार्थ—प्यारे श्यामसुन्दर हमारी आँखोंके अंजनके समान हैं। उनके लटकते हुए घुंघराले बाल चंचल भौंरोंके झुंडको भी लज्जित करनेवाले हैं। उनके सिर पर मोरपङ्खका मुकुट, एवं ललाटमें गोरोचन का तिलक लगा हुआ है, तथा उनकी आँखें कमलके समान बड़ी-बड़ी हैं। उनके गलेमें लटकती हुई वनमाला के ऊपर मतवाले भौंरे गुन-गुन-गुन-गुन गुंजार कर रहे हैं। उनकी मधुर,मन्द मुस्कानसे युक्त सुन्दर चितवनि समस्त ब्रजाङ्गनाओंको मोहित कर रही हैं। उनकी कमरमें मनको मुग्ध करनेवाली किंकिणीकी मधुर-ध्वनि हो रही है, तथा मुखसे मधुर मुरली बजा रहे हैं। "कृपालु" कहते हैं कि वे झूमते हुए झुक-झुककर ऐसी लटपट चाल चलते हैं कि उन्हें देखकर हंस भी अपनी चालपर खिन्न होते हैं।

(८)

हमारो अलबेलो नँदलाल ।
झूमत चलत प्रमत्त चाल सों लजवत बालमराल ।
अति रस भरे नैन जित घूमत, तित सब होत बेहाल ।
मोर मुकुट पट पीत मनोहर, लट उरझी घुँघुराल ।
श्रुति कुण्डल नासा भल बेसर, उर दुकूल बनमाल ।
पग नूपुर कटि किंकिनि अरु मुख, मुरली शब्द रसाल ।
लखतहिं बनत 'कृपालु' न बरनत, कुकबि बजावत गाल ॥

भावार्थ—(एक सखी दूसरी सखीसे अपने प्रियतम श्यामसुन्दरकी रूप-माधुरीका वर्णन करती है ।)

हे सखी ! हमारे श्यामसुन्दर बड़े ही अनोखे हैं। वे मस्त चालसे जब चलते हैं तो उनकी उस मदभरी चालको देखकर बालहंस भी लजा जाता है । उनके नेत्र रससे परिपूर्ण हैं और वे उन रसभरे मदमाते नेत्रोंसे जिस ओर देख लेते हैं, वहीं सबके हृदयको अनायास ही अपनी ओर खींचकर बेसुध बना देते हैं । उनके सिरपर सुन्दर मोर-मुकुट विराजमान है, सुन्दर पीताम्बरको धारण किये हैं और उनके घुंघराले केश एक-दूसरेसे उलझ रहे हैं, कानोंमें कुण्डल हैं, नासिका में बड़ी ही प्रिय लगनेवाली बुलाक है और वक्षस्थलपर मनोहारी वनमाला सुशोभित हो रही है । पैरोंमें पैंजनियाँ, कमरमें करधनी और मुखसे रसभरी मुरलीकी ध्वनि निकल रही है । "कृपालु" कहते हैं कि बस प्रियतम श्यामसुन्दरकी उपर्युक्त छवि केवल देखते ही बनती है । वाणी उसको वर्णन करनेमें पूर्णतया असमर्थ है, यह मूर्ख कवि तो इस छविको बताकर केवल गाल बजा रहा है ।

(६)

हमारो प्रियतम नन्दकिशोर ।
नील-जलद-रुचि-रुचिर-कलेवर, रसिकन को सिरमोर ।
मनमाने नैना अलसाने, श्रीमुख - चन्द्र - चकोर ।
अद्भुत-रूप-विलास-बिलोकनि, परहंस-चित-चोर ।
ब्रज-रस ब्रजबीथिन बरसावत, होत साँझ ते भोर ।
हम 'कृपालु' नित पियत प्रेमरस, गौरश्यामरस घोर ।।

भावार्थ—हमारे प्रियतम नन्दके लाल हैं, जिनका शरीर नीले बादलों की कांतिके समान सुन्दर है, तथा जो समस्त रसिकोंके सरताज हैं। उनकी आँखें मधुसे भरी हुई अलसाई हैं, एवं किशोरीजी के मुखरूपी चन्द्रमाके लिए चकोररूपी हैं। वे अपनी अद्भुत रूपमाधुरीके अवलोकनसे परमहंसोंके भी मनको मोहित करते हैं। ब्रजकी निकुंजोंमें ब्रजरस-प्रेम-माधुरी को बरसाते हुए उनको सांयकालसे प्रातःकाल हो जाता है। "कृपालु" कहते हैं कि हमतो निरन्तर ही गौर-श्याम-रसयुक्त प्रेम-सुधा-माधुरीका पान करते हैं।

श्रीराधा-माधुरी

(१)

किशोरी ! तोरे चरनन की बलि जाऊँ।
जिन युग-चरण-अरुणिमा-उपमा, पचिहारी नहिं पाऊँ।
जपा, गुलाल, प्रबाल आदि की, उपमा देत लजाऊँ।
मृदुता में गुलाब, नवनी की, समता कैसे पाऊँ।
जिन चरनन को चापत हरि नित, का महिमा मैं गाऊँ।
यह 'कृपालु' की चाह रैन-दिन, चरनन ध्यान लगाऊँ।

भावार्थ—हे किशोरीजी ! मैं तुम्हारे चरणोंकी बलैया लेता हूँ। इन चरणकमलोंकी लालिमाकी उपमा ढूंढ़कर थक गया, कहीं नहीं पाता। इन्द्र-वधूटी (एक लाल रङ्गका बरसाती कीड़ा), गुलाल, एवं आमके नये पत्ते आदि-की उपमा देनेमें लज्जा लगती है। कोमलतामें गुलाब एवं मक्खन भी फीके लगते हैं। जिन चरणोंको निरंतर ही श्रीकृष्ण दबाया करते हैं, उन चरणोंकी महिमा मैं क्या कहूँ ? "कृपालु" कहते हैं कि मेरी यही अभिलाषा है कि मैं दिन-रात इन्हीं चरणोंका ध्यान किया करूँ।

(२)

धरो मन भानुलली को ध्यान।
जाको ध्यान धरत निशि-बासर, सुन्दर श्याम सुजान।
कनक-मुकुट सिर चारु-चन्द्रिका, तापर लर मुक्तान।
चूनरि जरिन-किनार गौर-तनु, नीलाम्बर परिधान।

श्रुति-ताटंक गुथी वर बेनी, लजवति भौंह कमान ।
नासा भल मुक्ताहल सोहत, मन मोहत मुसकान ।
पग-पायल, गति अति अभिरामिनि, लखि मराल सकुचान ।
पाय 'कृपालु' सरस अस स्वामिनि, चरन न कस लपटान ।।

भावार्थ—अरे मन ! तू निरंतर ही वृषभानुनंदिनी राधिकाजीका ध्यान किया कर। जिनका ध्यान साक्षात् ब्रह्म श्रीश्यामसुन्दर भी निरंतर करते रहते हैं। जिनके सिरपर स्वर्णका मुकुट एवं मनोहर चंद्रिका तथा उसके ऊपर भी मोतियोंकी लड़ शोभा दे रही है। जिनकी जरी-किनारेकी चुनरी तथा नीले रङ्गका वस्त्र है और जो स्वयं गौर रङ्गकी हैं। जिनके कानमें झुमके झूल रहे हैं तथा अत्यन्त ही सुन्दर रीतिसे वेणी गुथी हुई है। एवं जिनकी भौंहें धनुषको लज्जित कर रही हैं। जिनकी नासिकामें सुन्दर मुक्ताहल शोभित हो रहा है, एवं जो मुस्कराती हुई हठात् मनको मोहित कर लेती हैं। जिनके पैरोंमें पायल हैं तथा जिनकी चाल हंसोंको भी लज्जित करनेवाली अत्यन्त मतवाली है। "कृपालु" कहते हैं कि ऐसी परममधुर स्वामिनीको पाकर भी, अरे मन ! तू उनके चरणोंमें सदाके लिए क्यों नहीं लिपट गया ?

(३)

प्यारी तोरी अरुण-अधर-छवि न्यारी ।
विकसित जनु बंधूक-कुसुम वर, अधर-ओष्ठ-लेखा री ।
प्रकट साथ मुख-शशि-सन्ध्या सम, शैशव-यौवन प्यारी ।
उदित-मुखेन्दु, अधर-पियूष-भू, बिंब बिंब अनुहारी ।
ह्लादिन्यादि-शक्ति-गणना-मिस, अधर सुरेख सँवारी ।
हम 'कृपालु' उपमान बिंबफल, राधा-अधर विचारी ।।

भावार्थ—हे किशोरीजी ! तुम्हारे लाल अधरोंकी शोभा अत्यन्त ही निराली है, मानों बंधूकका पुष्प खिला है। तुम्हारे अधरोंकी लालिमा उस

बिंबाफलके समान है, जो अमृतकी भूमिमें उत्पन्न हुआ हो, एवं मुखरूपी पूर्ण चन्द्रमाके हल्के प्रकाशमें उस बिंबाफलका प्रतिबिंब पड़ रहा हो। अथवा अधरोंकी लालिमा शिशु एवं यौवन अवस्थाकी उस संध्याके समान है जिस समय मुखरूपी पूर्णचन्द्र भी खिला हो। अधरोंकी लालिमामें जो रेखायें हैं वे ही मानों ह्लादिनी आदि प्रधान शक्तियाँ हैं। "कृपालु" कहते हैं कि हम बिंवफलके समान राधाके अधरोंको न कहकर राधाके अधरके समान कुँदरूका फल कहते हैं।

(४)

प्यारी तोरी लट-लटकनि पर वारी।
कुसुम-गुच्छ-गुंफित वर वेणी, जनु पग चूमन चह घुंघुरारी।
ब्रह्मलीन-जन जानि न पायो, इन अलकन-रहस्य बड़ भारी।
श्रीमुख पेखन हित बहु तप करि, अमित रूप धर कुंजबिहारी।
सोइ कृश तनु बनि केशरूप हरि, गिरत अधोमुख चरण मझारी।
यह 'कृपालु' नहिं कछु कौतूहल, सेवक सदा चरण अधिकारी।

भावार्थ—हे किशोरीजी ! तुम्हारे सिरके बालोंकी घुँघुराली लटकनपर मैं बलिहार जाता हूँ। फूलोंसे गुथी हुई पैरतक लम्बी क्या ही सुन्दर तुम्हारी वेणी है ? इस वेणी के घुंघुराले बालोंका रहस्य ब्रह्मलीन परमहंस भी नहीं जानते। श्रीकृष्णने किशोरीजीके मुखको देखनेके लिए अनन्तानन्त रूप धारण करके घोर तपस्या की थी। वे ही अत्यन्त कृश होकर बालोंके रूपमें बन गये, किन्तु अनधिकार चेष्टाके कारण किशोरीजीने उन्हें बाँधकर चरणोंकी ओर कर दिया। "कृपालु" कहते हैं कि श्रीकृष्णका चरणोंकी ओर रहना उचित भी है, क्योंकि सेवक सदा ही चरणोंकी ओर रहता है, सिर पर नहीं।

(५)

प्यारी ! तोरी वेणी-लटक अति प्यारी।
कारी-कारी, अति घुंघुरारी, अनियारी छबि न्यारी।

जनु मुख-चन्द्र-तिरस्कृत तम भजि, बँध्यो पृष्ठ लट झारी ।
शिखि-कलाप अरु केश परस्पर, तुमुल करत नित भारी ।
लखि विधि दै गलहस्त, अर्ध शशि, चिह्न पुच्छ-शिखि डारी ।
सब 'कृपालु' उपमान प्रकृति-भव, सो चिन्यम छबि वारी ॥

भावार्थ—हे किशोरीजी ! तुम्हारी वेणीकी लटकन अत्यन्त ही मनोहारिणी है । वह धनी, काली एवं अत्यन्त ही घुँघराली है, मानों किशोरीजूके मुखरूपी चन्द्रमासे भगाया हुआ अंधकार ही पीठकी तरफ बँधा हुआ वेणीके रूपमें लटक रहा हैं । एक बार मोरके पुच्छ-भारने किशोरीजूके बालों से होड़ करते हुए वहुत वाद-विवाद किया । जिसके निर्णयके लिए दोनों ही ब्रह्माके पास गये । ब्रह्माने मयूर-पुच्छ-भारको अपमानपूर्वक उसके गलेमें गलहस्त देकर ढकेल दिया । जिसके कारण ही मोरके पंखमें हाथका अर्ध-चन्द्रमाके समान चिह्न वना हुआ है । "कृपालु" कहते हैं कि जितने भी उपमान हैं वे सव प्रकृति से उत्पन्न हैं किन्तु किशोरीजीकी वेणी तो चिन्मय है, अतएव वह समस्त उपमानों से सर्वथा ही अनुपमेय हैं ।

(६)

बलि जाउँ लली बृषभान की ।
रूप उजारी, भानुदुलारी,
प्राननप्यारी, कान्ह की
रति-रस-बातन, बितवति रातन,
घातन नेह सुजान की ।
गति गजगामिनि, छबि अभिरामिनि,
दुति दामिनि उनमान की ।
मुंजु-निकुंजनि भृंगनि-पुंजनि,

गुंजनि सुनि किय मान की।
हम 'कृपालु' मानिनि लखि स्वामिनि,
करत निछावर प्रान की॥

भावार्थ—वृषभानुनंदिनी श्रीराधिकाजी की मैं वार-वार वलैया लेता हूँ। अनुपम रूपवाली वृषभानुलाड़ली एवं श्यामसुन्दर की प्राणों से भी अधिक प्यारी किशोरीजीकी वलैया लेता हूँ। प्रेमकी परम अंतरंग बातों को करते हुए सम्पूर्ण रात्रि व्यतीत करनेवाली, एवं प्रेमके मार्मिक विषयोंकी आचार्या किशोरीजीकी बार-बार वलैया लेता हूँ। मतवाले गजराजके समान चलनेवाली, सुन्दरताको भी लज्जित करनेवाली एवं विजलीके समान कान्तिवाली किशोरीजीकी वलैया लेता हूँ। मनोहर लताओंके कुंजमें भौरोंके झुंडके गुंजार को सुनकर मान अवस्थाको प्राप्त (भ्रमरगीत) किशोरीजी की बार-बार वलैया लेता हूँ। "कृपालु" कहते हैं कि हमतो किशोरीजीको मान अवस्था में देखकर आनंदमें अपने प्राणोंको निछावर कर रहे हैं।

(७)

वलि जाउँ लली सुकुमार की।
सकल सहेली–संग नवेली, अलबेली सरकार की।
नवल-किशोरी, रति-रस-बोरी, भोरी भानुदुलार की।
अभिरामिनि, गजगामिनि, भामिनि, स्वामिनि नंदकुमार की।
रूप उजागरि, राधा नागरि, जनु मूरति शृंगार की।
लखि 'कृपालु' छबि सुधा-माधुरी पियत प्रेम-रस-धार की।

भावार्थ—मैं वृषभानुनंदिनीकी बार-बार वलैया लेता हूँ। समस्त गोपियां के साथ नित्य नूतन अलबेली सरकारकी वलैया लेता हूँ। नित्य ही किशोर अवस्थावाली एवं प्रेमरसमें सरावोर भोली-भाली वृषभानुदुलारीकी वलैया लेता हूँ। मतवाले गजराजसे भी मनोहर चालवाली श्यामसुन्दरकी स्वामिनीकी

वलैया लेता हूँ। अनुपम रूपवाली मूर्तिमान श्रृङ्गार-स्वरूपा, प्रेमरस चतुर राधिकाकी बलैया लेता हूँ। "कृपालु" कहते हैं कि ऐसे ही अनुपम रूपमाधुरी को पीकर मैं प्रेमरसकी धारामें बह जाता हूँ।

(८)

राधे तोरे अरुण-चरण पर वारी।
तव पद-लव-शोभा लखि पल्लव, नाम धर्यौ कवि झारी।
उमा, रमा, ब्रह्माणी आदिक, सदा चरण सिर धारी।
सोइ सुहाग-सिन्दूर मनहुँ भइ, चरण-अरुणिमा सारी।
दोउ पद-नख दस चन्द्र चन्द्रिका, चमकति चरण मझारी।
बड़भागी 'कृपालु' शशि-अंबुज, भये संग अधिकारी॥

भावार्थ—हे किशोरीजी ! तुम्हारे चरणकमलों की लालिमापर मैं वलिहार जाता हूँ। तुम्हारे चरणोंकी लवलेश शोभा होनेके ही कारण कवियोंने आमके नये पत्तोंका नाम पल्लव रखा है। अतएव तुम्हारे चरणोंकी लालिमाका उपमान पल्लव नहीं हो सकता। मेरे मनमें तो पार्वती, लक्ष्मी एवं ब्रह्माणी आदि तुम्हारे चरणोंको सदा अपने सिरपर रखती हैं, अतएव उनके सुहागके सिंदूर लग-लगकर ही किशोरीजीके चरण लाल हो गये हैं। किशोरीजीके दोनों चरणोंके दसों नखोंमें दस चन्द्रमा उनकी उपासना करते हुए चमकते रहते हैं। "कृपालु" कहते हैं कि चरणोंके नीचे कमल भी सुशोभित है। यह अभूतपूर्व वात है कि चन्द्रमा एवं कमल एक साथ ही विकसित होकर एक ही जगह शोभित हो रहे हैं।

(९)

ललो-दृग-छवि लखि कवि भरमाये।
नयन-कमल कहँ कमल-नयन कह, उलटी चाल चलाये।
आघूर्णित-पक्ष्मल-अपांग-दुति, श्वेत-अरुण दरसाये।

चंचल-इन्द्रनील-गोलामल, श्यामल-तारा भाये।
मृग, चकोर-दृग-कमल-सार-रस, यंत्र निमेष खिचाये।
सोइ पियूष-उद्गार समन्वित, सार सुनैन सुहाये।
अति चंचल दोउ नैन पृष्ठ सिर, कबहूँ नहिं मिलि पाये।
लखि 'कृपालु' श्रुति-कूप-पतन-भय, मनहुँ मनहिं डरपाये ॥

भावार्थ—किशोरीजीकी आँखोंकी शोभा देखकर कवियोंकी बुद्धि भ्रममें पड़ गयी। नयनके समान कमलको, कमलके समान नयन कहने लगे, यह उल्टी बात है। किशोरीजीके नेत्र तो साक्षात् कमल है, एवं दिव्य नेत्र भी हैं। उसकी उपमा कमलसे देना पागलपन नहीं तो क्या है? अर्ध-विकसित कमलकी पङ्खड़ियोंके समान किशोरीजीके अधखुले, रसभरे नेत्र हैं, एवं पलकोंके निम्न भागकी कांतिसे नेत्र-कमलमें सफेदी एवं लालिमा है। तथा चंचल गोल इन्द्र-नीलमणिके समान तारा ही भौंरा है। अतएव किशोरीजीके नेत्र कमलसे भी अधिक सुन्दर कमल हैं, फिर साथ ही द्रष्टा भी हैं, किशोरीजीके नेत्र अमृतसे युक्त हिरनके नेत्र (चन्द्रमाके बीचमें हिरनके रहनेके कारण), एवं चकोरके नेत्र (अमृतमयी चन्द्रमाको पीनेके कारण), तथा कमलके फूलों (चन्द्रवंशी होनेके कारण) के तत्वको पलक-रूपी यंत्रसे निकालकर अमृत-रससे युक्त बनाये गये हैं। किशोरीजीके नेत्र अत्यन्त ही चंचल होनेके कारण कानतक बड़े-बड़े हैं, किंतु आश्चर्य है कि वे सिरके पिछले भागमें जाकर अभीतक नहीं मिल सके। "कृपालु" कहते हैं कि कान-रूपी कुएँमें गिरनेके डरसे कदाचित् ऐसा नहीं हो सका।

(१०)

ललो-मुख, उपमा देत लजाये।
सभय चन्द्र जनु राहु-भखन-भय, राधानन बनि आये।
चन्द्रबाल-कर-चक्रबाल जनु, अधर बिम्ब पद पाये।

अर्धचन्द्र सम भाल, निम्न पुनि, पूर्णचन्द्र छबि छाये ।
यह मुख छबि चन्द्राधिक सोहति, भ्रू-कलंक बिलगाये ।
श्रीमुख-श्रीप्रतिबिंब, अंबु अरु, दर्पण कबहुँक पाये ।
पद्म, चन्द्र तिन तात, मित्र सों, याचि दिवस, निशि भाये ।
शशि 'कृपालु' मिस होड़ अजहुँ जनु, शिव सिर तनुहिं तपाये ।

भावार्थ—(अनुपम किशोरीजीके मुखकी उपमा देनेमें मुझे लज्जा आती है । फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि मानों राहुके खाने के भयसे भयभीत चन्द्रमा ही किशोरीजीका मुख बन गया है । बालचन्द्रमाकी किरणोंका चक्राकार मण्डल ही अरुण अधर बन गया हैं । किशोरीजीका ललाट आधा चन्द्रमा, एवं उसके नीचेका भाग पूरा चन्द्रमाकी तरह सुशोभित हो रहा है । इस प्रकार किशोरीजीका मुख डेढ़ चन्द्रमासे युक्त है, एवं चन्दमामें स्थित कालिमासे भौंहें बन गई हैं । कवि कहता है कि किशोरीजीके मुखका उपमान चन्द्रमा एवं कमल जो प्रायः कवि-लोग कहा करते हैं, किसी भी प्रकार नहीं हो सकता । क्योंकि चन्द्रमाको तो सौंदर्य उसके मित्र दर्पणसे याचना करनेपर मिला है, एवं कमलको उसके पिता जलसे मिला है तथा जल एवं दर्पणको किशोरीजीसे ही सौंदर्य प्राप्त हुआ है । अर्थात् किशोरीजीने जब कभी शीशे में अपना मुख देखा तब शीशेने किशोरीजीके मुखका प्रतिबिंब (अक्स) चुरा लिया, एवं जब कभी स्नानादि करते समय किशोरीजीके मुखका प्रतिबिंब जलमें पड़ा तब जलने चुरा लिया । इस प्रकार किशोरीजीके श्रीमुखका प्रतिबिंब चुरानेवाले जल एवं शीशेके से याचना करके प्राप्त किये हुए उनके पुत्र तथा मित्र स्वरूप कमल और चन्द्रमा क्रमसे दिन एवं रातमें सुशोभित होते हैं । फिर वे किशोरीजीके मुखका उपमान कैसे बन सकते हैं । "कृपालु" कहते हैं कि चन्द्रमा तो मानों पुनः किशोरीजीके मुखकी समानता करनेके विचारसे शंकरजीके सिरपर तपस्या कर रहा है । एवं तपस्या करते-करते क्षीण होकर, सोलह कलासे दो कलाका ही रह गया है, किंतु फिर भी अपना हठ नहीं छोड़ता ।

(११)

ललो-मुख, लखि लाजत सिगार।
कुंतल-कुटिल कलित कलिकनि जनु, हँसि उपमान निहार।
सघन-भंगु-भंगुर जनु बल-हल,-कर्षित यमुना-धार।
कनक-पट्टिका भाल चंचला, जनु कच-जलद मझार।
पी मुख-चन्द्र-सुधा-रस चपला, लई अमरता सार।
दृग-अंजन जनु ब्रह्म विजय हित, दृग इषु-किण अनुहार।
हौं, 'कृपालु' कहँ लौं अनुपम की, उपमा कहौं गँमार॥

भावार्थ—किशोरीजीके मुखके सौंदर्यको देखकर शृंगार भी लज्जित हो रहा है। घुंघराले वालोंसे युक्त सजाई हुई सिरके ऊपर सज्जित कलियां मानों अलकोंके समस्त उपमानोंका उपहास कर रहीं हैं, अर्थात् घुंघराले बालों ही ने मानों कलियोंका स्वरूप धारण कर लिया है। किशोरीजीके घुँघराले वाल ऐसे शोभायमान हो रहे हैं जैसे कि बलरामके हल के द्वारा हस्तिनापुरमें खींची हुई परन्तु ऊँची-नीची लहरों से युक्त यमुनाकी धारा हो। किशोरीजीके ललाटके ऊपर सोनेकी पट्टिका-रूप आभूषण इस प्रकार शोभित हो रहा है जैसे कि किशोरीजीके सिरके बाल-रूपी वादलों से उत्पन्न बिजली हो। यदि कोई कहे कि बिजली तो स्थिर नहीं रहती किन्तु स्वर्ण-पट्टिका तो स्थिर है तो कहते है. किशोरीजी के मुखरूपी चन्द्रमाके अन्तर्निहित अमृतको पीकर वह चंचल बिजलीभी अमरताको प्राप्त हो गई है, अतएव स्थिर है। किशोरीजीके आँखोंका अंजन मानों ब्रह्म श्रीकृष्ण को जीतनेके लिए प्रत्यंचाके समान है। "कृपालु" कहते हैं कि हम अल्पज्ञ अनुपम मुखकी उपमा देते हुए अपनी अल्पज्ञताका ही परिचय दे रहे हैं।

(१२)

सखी ! ये सब के सब बौराये।
श्रीमुख-कमल जानि अम्बुज चहुँ, भ्रमर-निकर मँडराये।

अधर-बिंब हिय जानि बिंबफल, शुक अहार-हित आये ।
वेणी-शीश जानि जनु नागिनि, मोर-वृन्द ललचाये ।
मधु-बानी सुनि जानि वेणु रव, मृग-कदम्ब उठि धाये ।
इमि 'कृपालु' वृषभानुललिहिं लखि, भ्रमरादिक भरमाये ।।

भावार्थ—अरी सखी ! यह सब-के-सब पागल हो गये हैं। देखो तो किशोरीजीके मुखको साक्षात् कमल समझकर मुखके चारों ओर भौंरोंके झुण्ड मँडरा रहे हैं। किशोरीजीके अधरोंको साक्षात् कुँदरूका फल समझकर तोतोंने चोंच मारने के लिए घेर लिया है, एवं किशोरीजीकी वेणीको साक्षात् सर्पिणी समझकर मोरोंके समुदाय भी उसे खाने के लिए चले आ रहे हैं। किशोरीजीकी वाणीको साक्षात् मुरली-ध्वनि समझकर हिरनोंके झुण्ड चले आ रहे हैं। "कृपालु" कहते हैं कि इस प्रकार किशोरीजीको देखकर भौंरे, तोते, मोर एवं हिरन सभी भ्रममें पड़ गये हैं।

(१३)

हमारी राधे रसिकन-जीवन-मूरि ।
रसिकशिरोमणि श्यामहुँ याचत, जिनके पग की धूरि ।
लली चरन चापन हित आपन, भाग मनावत भूरि ।
पल पल कलप लखात ललिहिं गये, पलक-ओटहू दूरि ।
गहवर-मंजु-निकुंजनि-पुंजनि, रस बरसत भरपूरि ।
लखि 'कृपालु' बलि जात सरस रस, ज्ञानी रहे बिसूरि ।।

भावार्थ—एक रसिक सखी कहती है कि हमारी स्वामिनी श्रीवृषभानुनंदिनी रसिकजनोंकी जीवन-स्वरूपा हैं। जिनके चरणों की धूलको साक्षात् ब्रह्म श्रीकृष्ण भी चाहते हैं। श्रीकृष्णजी, श्रीराधिकाजीके चरणों को दबानेमें

अपना अहोभाग्य समझते हैं, तथा उनके विना एक पल भी नहीं रह सकते। एक क्षणको भी जब राधिकाजी आँखोंसे ओट हो जाती हैं तब श्रीकृष्णको वह क्षण कल्पके समान प्रतीत होता है। गह्वरवनकी सुन्दर कुंजों में निरन्तर प्रेम-रास-रस बरसता रहता है, अर्थात् उपर्युक्त प्रकार से किशोरीजीकी सेवा ब्रह्म श्रीकृष्ण करते रहते हैं। जिसे देखकर "कृपालु" कहते हैं कि हम तो वलि-वलि जाते हैं, किन्तु आत्माराम, पूर्णकाम, परमहंस ज्ञानी लोग आश्चर्यमें पड़कर सोचने लगते हैं कि अरे! यह क्या हो रहा है? परात्पर-ब्रह्म भी राधिकाजीके चरण दबा रहा है—'यह क्या जादू है?'

महासखी-माधुरी

(१)

इन्दुलेखा सखियन गल हार ।
सोहति अति हरिताल बरन तनु, रूप-माधुरी-सार ।
पहिरे दाड़िम-बरन बसन सब, लखि लाजत सिंगार ।
रति-रस-प्रेम-कलानि सिखावति, सदा युगल-सरकार ।
मोहन, वशीकरन-मंत्रादिक, सब की जाननिहार ।
याही ते 'कृपालु' यह दोउन, अति प्रिय सखिन मझार ।।

भावार्थ—इन्दुलेखा सखी समस्त सखियोंकी पूज्य एवं प्रिय हैं । इनके शरीरका रङ्ग हरितालके समान है, यह सौन्दर्यकी सार-रूप हैं । अनारके रंगके कपड़े पहनती हैं एवं उनको देखकर शृंगार भी लज्जित होता है । यह सदा प्रिया-प्रियतमको प्रेम-रसकी अंतरंग, मार्मिक क्रियाएँ सिखाती हैं । मोहन, वशीकरण आदि सभी तन्त्र-मन्त्र जानती हैं । "कृपालु" कहते हैं, अतएव यह प्रिया-प्रियतम दोनों को ही समस्त सखियों में अत्यन्त प्रिय हैं ।"

(२)

चम्पकलता सखिन-सिरमोर ।
चम्पक बरनि सुतनु मनहरनी, नित रह प्रेम-विभोर ।
पहिरे तनु सोहति नीलाम्बर, अम्बर-द्युति लिय चोर ।
व्यञ्जन विविध बनाय खवावति, नित उठि युगलकिशोर ।

जानत प्रीति रीति सब बातन, घातन नेह अथोर ।
जेहि विधि पाव 'कृपालु' दोउ सुख, सोइ कर, नित उठि भोर ॥

भावार्थ—सखी चम्पकलता समस्त सखियों में श्रेष्ठ हैं । चम्पाके समान इनके शरीरका रंग मनोहर है, एवं ये निरंतर ही प्रेमविभोर रहती हैं । आकाश के रंगको भी चुरानेवाले नीले रंगके कपड़े पहनती हैं । श्यामा-श्यामको अनेक प्रकारके व्यंजन बनाकर निरंतर ही खिलाती हैं । प्रीतिकी रीतिको एवं उसकी घातोंको पूर्णरूपसे जानती हैं । "कृपालु" कहते हैं कि जिस प्रकारसे भी दोनोंमें अधिक-से-अधिक प्रेम बढ़े उसी प्रकारका नित्यप्रति आचरण करती हैं ।

(३)

तुंगविद्या सखियन सिरताज ।
गौरबरन, तनु-सुन्दरता लखि, सुन्दरताहू लाज ।
पहिरे पाण्डुर-बसन मनोहर, अंग-अङ्ग छबि छाज ।
विविध राग लै तान सुनावति, साज सबै बिधि साज ।
गुन-आगरि, नागरि तहँ राजत, जहँ दोउ रहे बिराज ।
लखि 'कृपालु' दोउन रुचि रिझवति, महरानिहिं महराज ॥

भावार्थ—तुंगविद्या समस्त सखियोंकी सरताज हैं । इनका गोरा रङ्ग एवं इनकी सुन्दरताको देखकर सुन्दरता भी लज्जित होती है । पांडु रंगके प्रमुख अंगोंमें कपड़े पहनती हैं, एवं समस्त बाजोंके साजोंको साजकर तान अलापके साथ श्यामा-श्यामको अनेक प्रकारके राग सुनाती हैं । गुणोंकी खानि श्यामा-श्यामके पास ही निरन्तर रहती हैं । "कृपालु" कहते हैं कि ये दोनोंकी रुचिके अनुसार उन्हें प्रसन्न करती हैं ।

(४)

रङ्गदेवी सखियन सरनाम ।
पुण्डरीक-किंजल्क बरन तनु, लखि लाजत शत काम ।

पहिरे बसन जपाकुसुमन रँग, सोहति अति अभिराम।
विविध भाँति भूषण पहिरावति, नित प्रति श्यामा-श्याम।
परम चतुर सिगार-कला महँ, नहिं पटतर कोउ बाम।
रहति 'कृपालु' निकुंजविहारिणि, संगहिं आठो याम॥

भावार्थ—रंगदेवी सखी समस्त सखियोंमें प्रख्यात सखी हैं। इनके शरीर का रङ्ग कमलके केशरके समान है, एवं इनकी रूपमाधुरी से सैकड़ों कामदेव लज्जित होते हैं। यह इन्द्रबधूटी (लाल रङ्गका बरसाती कीड़ा) के रङ्गके अत्यन्त ही सुन्दर कपड़े पहनती हैं। यह नित्यप्रति प्रियतमको अनेक प्रकारके गहने पहनाती हैं, एवं शृङ्गार करनेकी कलामें इनकी समानताकी चतुर गोपी और कोई नहीं है। "कृपालु" कहते हैं कि यह सदा किशोरीजीके साथ रहती हैं।

(५)

विशाखा सखि सखियन सरदार।
दामिनि-दुति सम गौर कलेवर, दमकत सुषमा सार।
पहिरे बसन मनोहर सोहति, तारागन अनुहार।
रंग बिरंगे बसन पिन्हावति, सदा युगल सरकार।
जनु प्रतिबिम्ब, संग श्यामा के, रात दिवस इकसार।
जानत सबै 'कृपालु' रीति-रस, प्यारी सों अति प्यार॥

भावार्थ—विशाखा सखी सब सखियोंकी सरदार के समान हैं। उनका गोरा शरीर विजली के समान चमकता रहता है। नीले आसमान के तारों से युक्त रंग का कपड़ा पहनती हैं। प्रिया-प्रियतम को रंग-विरंगे कपड़े पहनाती हैं। रातदिन किशोरीजी के साथ परछाईं के समान रहती हैं। "कृपालु" कहते हैं कि ये प्रेम-रसकी समस्त रीतियोंको जानती हैं तथा किशोरीजीसे अधिक प्यार करती हैं।

(६)

सखिन महँ नामी चित्रा नाम।
कुमकुम बरनि सुसोहति तनु-दुति, मोहति कोटिक काम।
पहिरे कनक-बसन तनु मनहर, सुन्दर अति अभिराम।
सौरभ सुरभित सकल सरस-रस, प्यावति श्यामा-श्याम।
दोउन रुचि जिय जान, चतुर अति, रसिक रँगीली बाम।
छिन छिन बढ़त 'कृपालु' प्रीति उर, संग रहत बसुयाम ॥

भावार्थ—सखियोंमें सबसे प्रसिद्ध चित्रा नामकी सखी है। कुमकुमके रंगकी उनके देहकी कांति है, एवं करोड़ों कामदेवोंको मोहित करनेवाली हैं; अत्यंत ही सुन्दर सुनहरे रंग के कपड़े मनको हरनेवाले पहनती हैं। विविध प्रकारके सुगन्धित द्रव्योंसे युक्त समस्त मधुर रसोंको प्रिया प्रियतमको पिलाती हैं। एवं प्रिया-प्रियतमकी हार्दिक रुचिको जाननेवाली, अत्यंत ही प्रेम-रसकी रँगीली चतुर नायिका हैं। "कृपालु" कहते हैं कि इनका प्रेम प्रतिक्षण तथा सदा ही बढ़नेवाला है, तथा ये सदा ही प्रिया-प्रियतमके साथ रहती हैं।

(७)

सखिन महँ ललिता परम प्रधान।
गोरोचन सम तनु-दुति दमकति, रति-रस चतुर सुजान।
पहिरे पट परिधान मनोहर, मोरपुच्छ उनमान।
बीरी रुचिर बनाय खवावति, श्यामा-श्यामहिं पान।
प्यारी पी के, ही के, नीके, संकेतहिं पहिचान।
जेहि बिधि बढ़ै 'कृपालु' दुहुँन रति, तिमि आचरति न आन ॥

भावार्थ—सखियोंमें ललिता सखी परम प्रमुख है। जिनकी गोरोचनके समान देहके रंगकी कांति है, एवं प्रेमके अंतरंग रसोंमें दक्ष हैं। मोरपुच्छके रंगके सुन्दर कपड़े पहनती हैं। प्रिया-प्रियतमको पानका सुन्दर बीड़ा बनाकर खिलाती हैं एवं प्रिया-प्रियतमके हृदयके संकेतोंको भली-भाँति जानती हैं। "कृपालु" कहते हैं कि जिस प्रकार भी प्रिया-प्रियतमके प्रेममें बुद्धि हो, उसी प्रकारका कार्य करती हैं, दूसरा नहीं।

(८)

सुदेवी सबै सखिन सिरमोर।
दामिनि-दुति दमकति तनु आभा, लेत काम चित चोर।
पहिरे सुही बसन तनु सोहति, जनु सिंगार-निचोर।
वर बेनी गूँथत सुख-देनी, रिझवति युगल-किशोर।
खंजन-नैन लगावति अंजन, भरि दोउ नैनन कोर।
मनभाई 'कृपालु' दोउन की, मुँहलग, अति बरजोर॥

भावार्थ—सुदेवी सखी समस्त सखियोंमें श्रेष्ठ हैं। इनके शरीरकी कांति विजलीके समान है, एवं यह कामदेवको भी मोहित करनेवाली हैं। सुही रङ्गके कपड़े पहनती हैं। स्वयं मूर्तिमान श्रृंगार के समान हैं। श्यामा-श्यामके वेणी गूँथने एवं बालोंके श्रृंगार करनेका कार्य करती हैं तथा खंजनके समान नेत्रोंके दोनों कोरोंको भरती हुई अंजन लगाती हैं। "कृपालु" कहते हैं कि यह दोनोंकी ही अत्यंत मनभाई, ढीठ एवं मुँहलगी हैं।

लीला-माधुरी

(१)

खेलत श्याम संग श्यामा के,
आँखमिचौनी कुंज मझारी ।
चलि न चातुरी अलि-छल-बल बँधि,
दृगन बँधावत हारि बिहारी ।
प्रेम-सिन्धु चह सुधि-बुधि बोरन,
द्रुत युग-दृग-पट बाँधति प्यारी ।
उत कर-परस पाइ पुलकित तनु,
‘सूर-श्याम’ निज सुरति बिसारी ।
ज्यौं आतम-अवराधक ज्ञानी,
निज-स्वरूप चिन्तत उर धारी ।
त्यौं ही निज-स्वरूप श्रीजू को,
खोजत आजु ब्रह्म बनवारी ।
या बाँकी-झाँकी-झाँकन को,
ब्रह्मलीन जन नहिं अधिकारी ।
हेरत, मानि हारि, हरि टेरत,
‘दरस दिखाओ भानुदुलारी !

येहि विधि दीन-पुकार कीन जब,
दीनबन्धु प्रणतारति-हारी ।
'सूर-ब्रह्म' को दृगपट छोरति,
श्रीजू पर 'कृपालु' बलिहारी ॥

भावार्थ—श्रीश्यामसुन्दर किशोरीजीके साथ सखियोंको लेकर कुंजोंके बीचमें आँखमिचौनी खेल रहे हैं। (आँखमिचौनीमें पहले किसी भी नियम के अनुसार एक चोर बनाया जाता है एवं उसीकी आँखोंमें पट्टी बाँधी जाती है।) श्यामसुन्दर भी सखियोंके छलमें अपनी समस्त चातुरी भूलकर हारे हुए अपनी आँखोंमें पट्टी बँधा रहे हैं। किशोरीजी दोनों हाथोंसे शीघ्रतापूर्वक पट्टी बाँध रहीं हैं तथापि प्रियतमकी आँखोंके स्पर्शसे प्रेमका समुद्र उमड़ता हुआ किशोरीजीकी सुधि-बुधि खोना चाहता है। उधर श्यामसुन्दर भी किशोरीजीके मृदुल हाथोंके स्पर्शसे रोमांचित होते हुए अपनी सुधि-बुधि भूल रहे हैं। जिस प्रकार अपनी ही आत्माका उपासक ज्ञानी अपनी आत्मा को साधनबलसे खोजता है उसी प्रकार ब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण भी अपनी आत्मास्वरूपा किशोरीजीको बिना आँखोंके ही खोज रहे हैं। इस मनोहर झाँकीको देखनेका अधिकारी ब्रह्मलीन परमहंस भी नहीं है बह तो केवल रसिकोंको ही सुलभ है। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते श्यामसुन्दर हार गये तब दीन बनकर पुकारने लगे, 'हे किशोरीजी ! तुम दर्शन दो।' दीनोंकी पुकार सुननेवाले एवं उनके कष्टोंको हरण करनेवाले ब्रह्म श्रीकृष्णने जब इस प्रकार दीनोंकी भाँति साधनहीन बनकर किशोरीजीको पुकारा तब, "कृपालु" कहते हैं कि उन आँखहीन श्यामसुन्दर-ब्रह्मके पट्टीरूपी आवरणको हटाकर उन्हें वास्तविक आँख प्रदान करती हुई किशोरीजीपर कृपालु बलि-बलि जाते हैं।

(२)

चलीं लली, आजु छलन नँदलाल ।
मुकुट मयूर-पुच्छ-गुच्छन सिर, खौरि तिलक दिये भाल ।

दुपटी, पीतपटी, लकुटी कर, गर-गुंजन-वनमाल ।
छूटी लट, कानन कुण्डल, मुख, मुरली-शब्द रसाल ।
काछनि काछे कटितट अटपट, नटखट सों चलि चाल ।
'गोरे ग्वाल' भानुपुर के बनि, गइँ 'कृपालु' ढिग लाल ।।

भावार्थ—(लाड़लीजीका गोरे ग्वालका वेष बनाकर श्रीकृष्णको छलना ।)

आज किशोरीजी नन्दलालको छलने जा रही हैं, अतएव मोरके पङ्खोंका मुकुट पहन लिया है एवं ललाटमें केसरका तिलक लगा लिया है। पीताम्बर ओढ़े हुए हैं एवं हाथमें लठिया लिए हैं तथा गलेमें गुंज-माला व वनमाला पहन ली है। अपनी वेणीको खोल दिया है एवं कानोंमें कुण्डल पहन लिये हैं तथा मधुर मुरली बजा रही हैं। कमरमें सुन्दर काछनी काछे हुए हैं एवं नंदलालकी ही चंचल चालसे चल रही हैं। इस प्रकार "कृपालु" कहते हैं कि अपने-आपको बरसाने का ग्वाल कहती हुई किशोरीजीने नन्दलालको ठगने के लिए प्रस्थान किया।

(३)

जुगलवर जल बिच करत बिहार ।
जुरि गोरिन, जलजन भरि झोरिन, घेरि लईं रिझवार ।
नैन-सैन लहि भानुलली को, सज्जित सखिन अपार ।
लै कर-कमल कोऊ डरपावति, कोउ चुपके कर धार ।
कोउ धावति, कोउ घात लगावति, करि दृग-कमलन वार ।
खेलत, भजत, दुरत जल बिच हरि, बह्यो जाय मझधार ।
लखि कौतुक-विचित्र कालिन्दी, रोक दई निज धार ।
यह 'कृपालु' येहि जलबिहार पर, बार बार बलिहार ।।

भावार्थ—राधा-कृष्ण दोनों ही यमुनाके जलमें क्रीड़ा कर रहे हैं। समस्त गोपियोंके झुंडने झोलियोंमें कमल भर-भरकर प्रियतमको घेर लिया एवं किशोरी-जीके नेत्रों के संकेत को पाकर समस्त व्रज-गोपियाँ तैयार हो गयीं। कोई गोपी हाथमें कमल लेकर मारनेके ब्याजसे डराती है, कोई गोपी चुपकेसे अपने हाथमें कमलका फूल लिये हैं, कोई श्यामसुन्दरका पीछा करती हुई दौड़ती है, कोई अभी अवसर देख रही हैं, कोई परम चतुर गोरी अपने नेत्रोंके कटाक्षपातसे प्रियतमको प्रेम-विभोर करती है, एवं कोई मारनेकी प्रतीक्षामें है। इस प्रकार श्यामसुन्दर कमलके फूलोंका खेल खेलते हुए कभी भागते हैं कभी जलमें छिप जाते हैं, किन्तु ऐसा करते-ही-करते श्यामसुन्दर यमुनाकी धारामें बहने लगे। ब्रह्म श्रीकृष्णके इस विचित्र नाटकको देखकर यमुनाने अपनी धारा को भी रोक दिया है। "कृपालु" कहते हैं कि इस जलबिहारके ऊपर मैं बार-बार बलिहार जाता हूँ।

(४)

बनायो हरि नाइनि को भेष।
करि सोरह सिंगार नवेली, लाजत लखि राकेश।
लिये मिहावरि पाणि चलीं, वृष-भानुलली के देश।
सखिन-समेत लखति 'श्रीराधे', जनु दृग बिनुहि निमेष।
प्रेम सहित बैठारि नाम, कुल पूछति चकित अशेष।
रचति मिहावरि प्रीति दुरावति, दुरति न सो लवलेश।
गिरि 'कृपालु' राधे-पद-मुर्छित, लखि सखि कहीं 'व्रजेश'॥

भावार्थ—(किशोरीजीको छलनेके लिए श्यामसुन्दर नाइन बनकर जाते हैं।)

श्यामसुन्दरने सुन्दरी नाइनका वेष बना लिया एवं सोलह श्रृंगार किये हुए नवेली-सी बनकर चन्द्रमाको भी लज्जित कर रहे हैं। हाथमें महावर लेकर वह नाइन बरसानेकी ओर चली। अपनी सखियोंके सहित किशोरीजीने निर्नि-

मेष दृष्टिसे उस नाइनको देखा तथा उसे बुलाकर बड़े ही प्रेमके साथ अपने पास बैठा लिया, तथा सभी उसके सौन्दर्यको देखकर आश्चर्यसे महावर लगवाने लगीं तथा उसके शरीरमें छिपाने पर भी सात्विक-भावोंका प्राकट्य होने लगा। "कृपालु" कहते हैं कि देखते-ही-देखते वह नाइन किशोरीजीके चरणोंमें गिरकर मूर्च्छित हो गई एवं सखियोंने कहा, 'अरी सखियो ! यह तो नाइन नहीं है वरन् ब्रजराज श्यामसुन्दर हैं।'

(५)

राधे सँग श्याम खेलैं होरी।
इत अगनित सखियन सँग राधे, उतै सखन श्यामहु जोरी।
फाग-समर-आँगन वृन्दावन, भिरे दोउ दल झकझोरी।
लालहिं-लाल-गुलाल, लाल भये, लाल, लाल भइ ब्रजखोरी।
लै पिचकारिन मार परस्पर, रङ्गबिरङ्ग रङ्ग घोरी।
केशर-रङ्ग भरी लै गागरि, नागरि, नागर-सर ढोरी।
औचक अवसर लखि रँगदेबी, लालहिं गाल रँगी रोरी।
हारे सखन संग हरि इत, उत, जयजयकार लली को री।
सखि-परिकरकरपकरिबाँधिहरि, कह्यो 'कियो नित बरजोरी।'
करि सोरह सिंगार लाल को, दियो बनाय सुघर गोरी।
दै 'कृपालु' करताल अलिन संग, हँसत कहत 'हो! हो ! होरी' ॥

भावार्थ—राधाकृष्ण परस्पर होली खेल रहे हैं। इधर राधिकाके साथ असंख्यों सखियाँ हैं एवं उधर श्यामसुन्दरके साथ भी असंख्यों सखा हैं। वृन्दावन रणक्षेत्र बना हुआ है एवं वहीं दोनों सेनाओंका होलीयुद्ध आरम्भ हो गया है। लाल-लाल गुलालोंसे श्रीश्यामसुन्दर भी लाल हो गये हैं एवं ब्रजकी गली-गली-में लालिमा छा गयी है। पिचकारियोंको ले-लेकर दोनों दल एक-दूसरेपर रंग-बिरंगे रंगोंको घोलकर मार रहे हैं। इतनेमें ही किशोरीजीने एक

केशरके रंगसे भरा हुआ घड़ा लेकर सहसा श्यामसुन्दरके सिरपर ढुलका दिया। अचानक ही इसी समय मौका पाकर रंगदेवी सखीने श्यामसुन्दरके गालमें बुरी तरह गुलाल मल दिया। सखाओंके साथ श्रीकृष्णका दल हार गया। सखा लोग भाग खड़े हुए एवं लाड़लीजीकी जय-जयकार होने लगी। भागते हुए श्रीकृष्णको सखियोंने पकड़ लिया एवं बाँधकर कहा कि 'तुम सदा ही हमलोगोंको तंग करते रहते हो, आज सब कसर निकाल लेंगी।' फिर सखियोंने श्यामसुन्दरका सोलहो सिंगार करके सुन्दर नायिका बना दिया। "कृपालु" कहते हैं कि सब सखियोंके साथ हम ताली बजा-बजाकर हँसने लगे और कहा, 'होरी है! होरी है!!'

(६)

लाल सँग खेलिय हिलमिल फाग।
चलु री सखी! भव-निशा सिरानी, भई भोर गइ जाग।
केशर घोर भाव की गोरी, पिचकारी अनुराग।
पानि तानि मारिय दृग-बानन, सहज पिया-रस-पाग।
रति-रस-रँग, सरबोरी गोरी, लखु अपुनो बड़भाग।
इमि 'कृपालु' करि उर-पट-बन्दी, करु निज अमर सुहाग॥

भावार्थ—(जीवरूपी सखीकी ब्रह्म श्यामसुन्दरसे प्रेमहोली।)

अरी जीव-रूपी सखी! अब तो मेरी मायारूपी रात्रि बीत चुकी है एवं प्रातःकाल हो चुका है, तथा तू जाग भी गई है। अतएव चल! श्यामसुन्दरके साथ दिव्य होली खेल आवें। देख सखी! भावरूपी केशर के रंगको अनुराग-रूपी पिचकारीमें भरकर आँखोंके कटाक्षरूपी हाथसे प्रियतम श्यामसुन्दरपर फेंकती हुई सहज ही प्रियतमके प्रेममें विभोर हो। एवं उनके द्वारा भी रति-रसके रंगमें सराबोर होकर परम भाग्यशालिनी बन जा। "कृपालु" कहते हैं कि इस प्रकार श्यामसुन्दरको अपने हृदयमें बंदी (कैदी) बनाकर सदाके लिए अपना सोहाग अमर कर ले।

(७)

'श्यामसखी' अति सुघर नवेली,
भानुललिहिं चुरियाँ पहिरावति।
लली कमल-कोमल-कर अँगुरिन,
चापि सकोरति अति मन भावति।
पुलक, स्वेद, तनु थर-थर काँपत,
हँसि-हँसि प्यारी सों बतरावति।
उमँग्यो परत प्रेम-रस-अम्बुधि,
बिनु चुरियाँ चुरियान पिन्हावति।
उठि सँभारि सुधि-देह साँवरी,
दौरि बेगि कदली-दल लावति।
धरि तर पात चढ़ावति पुनि पुनि,
बेर बेर चुरियाँ चटकावति।
प्रिया भरति मधुभरी-सिसकरी,
मुख सकोरि भौं मोरि नचावति।
भइ मति भोरि छुट्यो कर ते कर,
इकटक चितलिखी दरसावति।
दुहुँन केर अद्भुत गति लखि, सखि,
ललितादिक मन बिस्मय लावति।
मुर्छित गिरी अवनि मनिहारिनि,
'मेरी प्यारी राधे !' गावति।

ललिता कह 'यह यशुमति जाई,
सुनी रही सो साँच जनावति।'
'भूत' 'भूत' कहि भजीं सखी सब,
प्रिया, पिया-निज कंठ लगावति।
अब 'कृपालु' उघरे दृग-छल दोउ,
ललिहिं लाल बहुभाँति रिझावति॥

भावार्थ—(श्रीश्यामसुन्दर श्याम-सखी नामक मनिहारिनके वेषमें किशोरीजीको छलने जाते हैं।)

सोलह श्रृंगारसे युक्त श्यामसुन्दर-रूपी श्याम-सखी सज-धजकर एवं किशोरीजीके महलमें जाकर चूड़ियां पहना रही है। सर्वप्रथम वह किशोरीजीके कमलसे भी अधिक कोमल हाथ की अंगुलियोंको दबाती है एवं किशोरीजीके स्पर्शसे अति आनन्द का अनुभव करती है। शरीरमें रोमांच, स्वेद एवं कँपकँपी प्रकट हो रही हैं, फिर भी प्रेमको छिपाती हुई हँस-हँसकर किशोरीजीसे घरेलू बातें करती है, किन्तु प्रेमका समुद्र उमड़कर उन्हें विभोर कर देता है। इसके परिणामस्वरूप यह मनिहारिन बिना चूड़ियोंके ही हाथ-में-हाथ पहना रही है। अर्थात् अपनी सुधिबुधि इतनी भूल गई कि चूड़ी तो पृथ्वी पर पड़ी है एवं अपने हाथको चूड़ी समझकर किशोरीजीके हाथमें पहना रही है। जब थोड़ी देर बाद समाधि खुली तब तुरन्त ही इस प्रेमके गुप्त रहस्यको छिपानेके लिए खड़ी हो गयी, एवं दौड़कर वाटिकासे केलोंके कोमल पत्ते ले आयी। इसके पश्चात् केलेके पत्ते नीचे रखकर ऊपरसे बार-बार चूड़ियाँ पहनाने लगी किन्तु बार-बार चूड़ियाँ फूट जाती हैं(अभ्यास न होने के कारण एवं प्रेम-विभोर होनेके कारण)। चूड़ियोंके फूटनेसे किशोरीजी अत्यन्त ही मीठी सिसकी भरती हैं एवं मुखको सिकोड़कर भौंहोंको नचाती हैं। (सिसकी भरनेसे स्वाभाविक ही ऐसा होता हैं।) श्याम-सखीने अभीतक किशोरीजीकी आँख-से-आँख नहीं मिलाई थी,

किन्तु किशोरीजीको सिसकी भरते हुए देखकर पत्थरकी मूर्तिकी तरह एकटक देखने लगी, एवं किशोरीजीके हाथसे, प्रेम-अधीर होनेके कारण उसका हाथ छूट गया। उधर किशोरीजीकी भी ऐसी ही अवस्था देखकर ललिता आदि सखियों के मन-में आश्चर्य होने लगा। कुछ क्षण पश्चात् ही वह मनहारिन श्यामसखी मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी एवं भावावेशकी अवस्थामें 'मेरी प्यारी राधे मेरी प्यारी राधे' की रटन स्वयं ही लगाने लगी। तब ललिताने कहा, 'अरी ! यह तो यशोदाकी बेटी है। हम लोगोंने सुना था कि एक बेटी हुई थी किन्तु उसे तो कंसने मार डाला था, तो क्या यह भूत बनकर आई है ?' इस प्रकार ललिता के कहनेपर सभी सखियाँ एक-दूसरेसे भूत-भूत कहती हुई भाग गयीं। किशोरीजीने भी इस रहस्यको जान लिया कि यह तो छलिया श्यामसुन्दर है। अतएव मूर्च्छित पड़े हुए प्रियतमको गोदमें उठा लिया। "कृपालु" कहते हैं कि जब थोड़ी देर बाद श्यामसुन्दरकी मूर्च्छा समाप्त हुई तब उन्होंने देखा कि मुझे तो लोगोंने पहचान लिया। तब खिसियाकर किशोरीजीको अनेकों लाड़-प्यारकी बातोंसे रिझाने लगे।

युगल-माधुरी

(१)

धरो मन ! युगल-माधुरी ध्यान ।
मनमोहन-मोहिनि श्यामा अरु, मोहिनि-मोहन कान्ह ।
इन दोउन कहँ बिलग न मानिय, द्वै देही इक प्रान ।
पै लीला-बिलास महँ मोहन, अनुचर, रसिक प्रमान ।
रिझवत नित निकुंज श्यामा कहँ, मरम न सक कोउ जान ।
यह 'कृपालु' रस रसिकहिं जानत, जो नित कर रह पान ।।

भावार्थ—अरे मन ! तू प्रिया-प्रियतमकी. रूपमाधुरीका निरंतर ही ध्यान किया कर। श्यामसुन्दरको मोहित करनेवाली किशोरीजी एवं किशोरीजीको मोहित करनेवाले श्यामसुन्दर हैं। अरे मन ! इन दोनोंको भिन्न न समझना, इन दोनोंके देह तो दो अवश्य हैं किन्तु प्राण एक ही हैं। हाँ रसिकोंके सिद्धाँतों के अनुसार लीला-विलासके क्षेत्रमें श्यामसुन्दर दास अवश्य हैं, तथा नित्य ही निकुंजोंके मध्यमें विविध प्रकारसे किशोरीजी को रिझाया करते हैं। इस मर्मको रसिकोंके सिवा और कोई भी नहीं जान सकता। "कृपालु" कहते हैं कि इस निकुंज-रस-माधुरीको रसिक ही जानते हैं, जो कि इस रसका निरन्तर ही पान किया करते हैं।

(२)

प्रेम-रस बरसत कुंज मझार ।
शरद-चन्द्र, उत्फुल्ल-मल्लिका, ऋतु बसंत रिझवार ।

मधुर मुरलि-धुनि सुनि सनकादिक, दीन समाधि बिसार ।
भृकुटि-लता-विभ्रम करि नाचत, सखियन जूथ अपार ।
मधुर-सुरन सों तान अलापति, गावति राग मलार ।
भजु 'कृपालु' मन लाल लाड़ली, जो चह रास-विहार ।।

भावार्थ—कुंजके बीचमें युगलसरकारके द्वारा प्रेमरसकी अविच्छिन्न वृष्टि हो रही है । शरद्‌कालीन पूर्णिमाका चन्द्रमा लिखा हुआ है, एवं वसंत-कालीन मल्लिका आदिक फूल फूले हुए हैं ! श्यामसुन्दरकी मधुर मुरलीकी धुनि सुनकर शंकर, एवं सनकादिकोंने भी अपनी निर्विकल्प समाधि भुला दी है । गोपियोंका झुण्ड भौंहोंसे कटाक्षपात करते हुए युगलसरकारके साथ नाच रहा है । श्याम-श्यामाके साथ समस्त सखियाँ मधुर स्वरोंसे तान एवं आलाप लेती हुई मल्हार राग गा रही हैं । "कृपालु" कहते हैं कि ओ मन ! तू भी यदि उपर्युक्त रास-बिहार चाहता है, तो श्याम-श्यामाकी शरण होकर उन्हीं का बन जा ।

(३)

बलि जाउँ लाड़ली लाल की ।
गरबाहीं दीने दोउ बिहरत, कुंज-लतान तमाल की ।
कीरति-कुँवरि गौर तनु इत, उत, श्यामल यशुमति बाल की ।
छबि षोडश सिगार इतै उत, नट-वपु-वेष रसाल की ।
प्रेम दिवाने, मनमाने, दोउ, लजवत चाल मराल की ।
यदपि 'कृपालु' एक दोउ,स्वामिनि, स्वामिनि तदपि गुपालकी ।।

भावार्थ—मैं राधा-कृष्णकी बार-बार बलि-बलि जाता हूँ । राधाकृष्ण परस्पर गलेमें हाथ डाले हुए तमाल लताकी कुंजोंमें बिहार कर रहे हैं, इधर तो कीर्ति-कुमारी गौरांगी राधा हैं एवं उधर यशोदा-कुमार श्यामलांग श्रीकृष्ण

हैं। इधर किशोरीजी सोलहों शृंगारसे युक्त हैं एवं उधर श्यामसुन्दर सुन्दर नटवर वेष बनाये हैं, मैं इनकी बलैयाँ लेता हूँ। प्रेमविभोर, स्वेच्छाधीन, दोनों हंसकी भी चालको लज्जित कर रहे हैं। "कृपालु" कहते हैं कि यद्यपि ये दोनों परस्पर अभिन्न हैं, फिर भी रसिकोंके दृष्टिकोणसे किशोरीजी श्यामसुन्दर की स्वामिनी हैं।

(४)

बलि जाउँ युगल सरकार की।
इतै रवति सुर मधुर-मुरलिका, नागर नन्दकुमार की।
उतते आईं भानुनन्दिनी, जनु मूरति सिंगार की।
कुंज कुटीर तीर कालिन्दी, मिलनि दुहुँनि दृग-चार की।
लखहु द्वैत-अद्वैत-मधुरिमा, युगल-माधुरी-प्यार की।
यह 'कृपालु' भी चहत बूंद इक, प्रेम-पयोधि-अपार की॥

भावार्थ—मैं राधा-कृष्ण दोनोंकी वलैया लेता हूँ। इधर तो यमुनाके किनारे श्यामसुन्दरकी मधुर-मुरलीकी, एवं उधर सोलह शृंगारसे युक्त प्रमत्त गजराजके समान चलनेवाली राधिकाजीकी बार-बार बलैयाँ लेता हूँ। यमुनाके किनारे जहाँ शीतल, मंद, सुगन्ध वायु बह रही है, प्रिया-प्रियतम के चार आँखोंसे युक्त मधुर-मिलनकी बलि-बलि जाता हूँ, अरे ज्ञानियो! राधाकृष्णरूपी द्वैतमें प्रेमके अद्वैतकी माधुरीको देखो! इस युगलमाधुरी के प्यारकी मैं बलि-बलि जाता हूँ। "कृपालु" कहते हैं कि मैं भी उसी अपार प्रेमसमुद्रकी एक बूंद चाहता हूँ।

(५)

हमारे मन बसे युगल सरकार।
गौर बरनि वृषभानुनन्दिनी, नील बरन रिझवार।

गरबाँहीं दीने दोउ ठाढ़े, मंजु निकुंज मझार।
उत पहिरे नीलाम्बर सोहति, इत पीताम्बर धार।
उत सोरह सिंगार सजीं इत, नटवर वेष सँवार।
उत सिंगार मध्य छबि सोहति, इति छबि मधि सिंगार।
बड़भागी 'कृपालु' जिन छिन छिन, जोरी जुगल निहार॥

भावार्थ—(सुन्दर निकुंजके मध्यमें दोनों एक-दूसरेके गलेमें हाथ डाले हुए खड़े हैं।)

हमारे मनमें श्यामा-श्याम युगल-सरकार बसे हुए हैं। वृषभानुनन्दिनी गोरवर्णकी एवं नन्दकुमार नीलवर्णके हैं। किशोरीजी नीलाम्वर पहने हुए हैं एवं श्यामसुन्दर पीताम्बर पहने हुए हैं। किशोरीजीने सोलहों प्रकारका श्रृंगार किया है एवं श्याभसुन्दरने नटवर वेषका श्रृंगार किया है। इधर श्रृंगार-रूपी किशोरीजीके हृदयमें छवि-रूप श्रीकृष्णका निवास है। उधर छवि रूप श्रीकृष्ण हृदय में श्रृंगाररूपी राधा का निवास है। "कृपालु" कहते हैं कि वे लोग परम भाग्यशाली हैं, जो प्रिया-प्रियतमकी युगल जोड़ीको नित्य ही निहारा करते हैं।

(६)

हमारे माई, गौर, श्याम दोउ आँखी।
गौर तेज, तिल श्याम, पलक पुनि, रस-विलास-हित राखी।
माया-पलक-विलास होत हम, तलफत दृग-जल साखी।
बिनु बियोग, संजोग सुखद नहि, रसिक-जनन यह भाखी।
सोई रस प्रेम विषामृत जानत, जो बारेक रह चाखी।
चाखे पुनि 'कृपालु' नित नव-रस, रह चाखन अभिलाखी॥

भावार्थ—अरी मैया! हमारे तो श्यामा-श्यामरूप ही दो आँखें हैं। आँखोंमें तेज (ज्योति) स्वरूपा राधिकाजी हैं, एवं काले तिल रूपी श्यामसुन्दर

हैं। इन दोनोंको बड़े प्रयत्नसे पलकोंसे ढाँककर रखा है। थोड़ा भी उनके पकलोंसे ओट होते ही तड़पते हैं। आँखोंके आँसू इसके साक्षी हैं। रसिकों का यह सिद्धान्त है कि वियोगके बिना संयोग सुखप्रद नहीं होता। इस प्रेम-विषामृत-रसको वही जानता है जिसने एक बार चख लिया है। "कृपालु" कहते हैं कि एक बार भी चख लेनेपर वह नित्यके लिए दीवाना बन जाता है।

निकुँज-माधुरी

(१)

अरि देखो आली ! लाली को फुलन सिङ्गार ।
फुलन की चन्द्रकला सिर सोहति, फुलन की बन्दनि धार ।
झूमत श्रवण फुलन के झुमके, बेसर कलिन निहार ।
पहुँची बाजूबन्द फुलन को, फुलन को गल बिच हार ।
नीलाम्बर पर फुलन पंक्ति जनु, तारे गगन अपार ।
फुलन की पायल अंगुरिन बिछुये, वेणिहिं फुलन सँवार ।
अङ्ग अंग प्रति फुलन रंग रँग, लखि 'कृपालु' बलिहार ।

भावार्थ—फूलोंके श्रृंगारसे सजी हुई किशोरीजीको देखकर एक सखी अपनी अंतरङ्ग सखीसे कहती है कि अरी सखी ! देख तो किशोरीजीका फूलोंसे किया हुआ श्रृंगार क्या ही सुन्दर प्रतीत हो रहा है ? सिरमें फूलोंकी चन्द्रकला शोभित हो रही है; एवं फूलोंकी बंदनवार धारण कर रखी है। कानमें फूलोंके झुमके हिल रहे है तथा नाकमें कलियोंकी वेसर शोभायमान हो रही है। हाथमें फूलोंके ही बाजूवन्द एवं पहुँची पहने हैं, एवं गलेमें विविध प्रकारके फूलोंका हार पहन रखा है। नीले वस्त्रपर फूलोंकी कतारें इस प्रकार शोभा दे रही हैं मानों नीले आकाशमें तारे खिले हों । पैरोंमें फूलोंकी पायल एवं अंगुलियोंमें बिछुये पहने हुए हैं। वेणी भी विविध प्रकारके फूलोंसे सुशोभित हो रही है। "कृपालु" कहते हैं कि इस प्रकार प्रत्येक ही अंगमें रङ्ग-बिरङ्गे फूलोंके श्रृंगारको देखकर मैं बार-बार वलिहार् जाता हूँ।

(२)

आजु लखि लर्लिहि गई बलिहार ।
सिंहासन-आसीन लर्लिहि पग, चापत नन्दकुमार ।
बिधि, हरि, हर सब कहत एक स्वर, जय 'श्रीभानुदुलार' ।
अनुपमेय-छवि-सींव-माधुरी, शोभा सिंधु अपार ।
सकल-सुबास-सुबासित जल सों, मज्जन करि रिझवार ।
उर कंचुकि परिधान नीलपट, चूनरि लिय सिर धार ।
किये अरगजा लेप गौर तनु, तेल फुलेलन बार ।
भरी माँग सिंदूर-अलंकृत, बिन्दी इन्दु लिलार ।
कजरारे दृग काजर राजत, सुरमा सुघर सँवार ।
राग-अरुणिमा अधर कपोलन, रदन पान अरुणार ।
चिबुक एक तिल, इत्र सुगंधित, विविध अंग बहु हार ।
अंग अंग आभूषण भूषित, दोउ कर मेहँदी सार ।
चरण मिहावरि अरुण, सखी इमि, किय सोरह सिंगार ।
सोइ 'कृपालु' लखि सकै कृपा करि, जेहि चितवति सुकुमार ।

भावार्थ--(एक सखी कहती है ।)

आज सोलहों शृंगारसे युक्त किशोरीजीको देखकर मैं बलि-बलि गयी । क्या ही मनोहर झाँकी थी ? सिंहासनपर किशोरीजी बैठी हुई थीं एवं श्यामसुन्दर उनके चरणोंको अपनी गोदमें रखकर दबा रहे थे । ब्रह्मा, विष्णु, शंकर आदि सभी एक स्वरसे वृषभानुनन्दिनीकी जय बोल रहे थे । उस समयकी किशोरीजीकी शोभा अनुपम थी एवं उनके रूप का माधुर्य विलक्षण था । सोलह शृंङ्गार निम्नलिखित हैं :—

सर्वप्रथम विविध प्रकारके सुगन्धित द्रव्यों से सुगन्धित जलके द्वारा किशोरीजीने स्नान किया, फिर वक्षस्थलमें चोली तथा नीचे नीलाम्बर एवं सिर-पर चुनरि को धारण कर लिया। फिर गोलोकेश्वरीने अर्गजाका लेप किया, तत्पश्चात् सुगन्धित तेल एवं फुलेल लगाया। फिर माँगमें सिंदूर भरा, एवं ललाटमें चन्द्रमाके समान बिन्दी लगायी। कजरारी आँखोंमें काजल तथा सुरमा आँज लिया। एक विशेष प्रकारके लाल रंगको अधरों एवं गालोंमें लगा लिया। दाँत पान खानेसे लाल हो गये। ठोड़ी पर एक तिल है, एवं सुगन्धित इत्र लगाये हुए हैं तथा अनेक प्रकारके हार विविध अंगोंमें पहन लिये हैं। प्रत्येक अङ्गमें यथोचित गहने तथा हाथमें मेंहदी एवं पैरोंमें महावर लगा ली। इस प्रकार सोलह श्रृङ्गार किए हुए हैं। "कृपालु" कहते हैं कि इस रस-माधुरीका दर्शन वही कर सकता है जिसपर किशोरीजीकी दया दृष्टि हो जाय।

(३)

देखु सखि ! अद्भुत कुंज-बिहार।
प्यारिहिं भेष बनायो प्यारो, करि सोरह सिंगार।
उत प्यारी प्यारे को सुन्दर, नटवर वेष सँवार।
प्यारी कह प्यारे ते 'प्यारी', उर आनन्द अपार।
उत प्यारे प्यारिहिं कहि 'प्यारे', तद्वत रति-रस धार।
रति-विपरीत रास-रस खेलत, आपुहिं आपु बिसार।
लखति 'कृपालु' सखिन ललितादिक, छुपि छुपि कुंज मझार।

भावार्थ—अरी सखी ! आजके प्रिया-प्रियतमाके अटपटे कुँज-विहार को देख ! प्रियतमने सोलहों श्रृंगार करके प्यारीका वेप वनाया है, एवं प्यारीजीने भी प्रियतमका मनोहर नटवर वेष बनाया हैं। इसके पश्चात् प्यारीजीने आनन्दविभोर होकर प्रियतमको 'हे प्यारी' कहकर पुकारना आरम्भ किया,

एवं प्रियतमने भी प्यारीजीको 'हे प्यारे !' कहकर पुकारना आरम्भ किया। इतना ही नहीं वरन् उसी प्रकारकी प्रेमरसकी बातें भी करने लगे। अपने-आपको भूलकर प्रेमविभोर भावावेशकी अवस्थामें उलटे प्रकारसे रास-विलास आदि लीलायें भी करने लगे। "कृपालु" कहते हैं कि इस विपरीत विहारको ललितादिक सखियाँ कुंजलताओंमें छुप-छुपकर देख रहीं हैं।

(४)

बलि जाउँ निकुंज-लतान की।
अलि कुल-संकुल विपुल-सुफूलनि, लतनि तरुनि लपटान की।
नैन-कुरंग-तरंग-तरंगिणि, कुँवरि भूप वृषभान की।
रति-रस-सरस- केलि-रस-लंपट, सुन्दर श्याम सुजान की।
मणि-गण-किरण-कदंबनि भूषण, दामिनि दुति दमकान की।
लखत 'कृपालु' अनूपम जोरी, प्रेम-सुधा-रस-खान की॥

भावार्थ—मैं विविध प्रकारकी लताओंके कुंजोंकी बार-बार बलैयाँ लेता हूँ। मैं वृक्षोंमें लिपटी हुई लता एवं लताओंमें फूले हुए विविध प्रकारके फूल तथा फूलोंपर मँडराते हुए भौंरोंके झुंडोंकी बार-बार बलैया लेता हूँ। मृगोंके नेत्रोंके समान चंचल तरंगोंसे युक्त मृगनयनी वृषभानु-नन्दिनीकी बार-बार बलैयाँ लेता हूँ। लोकातीत प्रेमकी अंतरंग लीलाओंके माधुर्य में उन्मत्त रसिक-शिरोमणि श्यामसुन्दर की बलैयाँ लेता हूँ। अंधकारमें भी विविध प्रकारकी मणियोंसे जटित गहनोंके प्रकाशकी बिजलीके समान चमककी बार-बार बलैयाँ लेता हूँ। "कृपालु" कहते हैं कि प्रेमके अमृतके रसकी सार-स्वरूपा प्रिया-प्रियतमकी अनोखी जोड़ीको देखते हुए बार-बार बलिहार जाता हूँ।

(५)

बलि जाउँ निकुंज बिहार की।
नागरि श्रीवृषभानुकुँवरि अरु, नागर नन्दकुमार की।

जनु धरि रूप अनूप प्रगट भई, मूरति छवि सिगार की।
करत केलि भुजमेलि विविध विधि, बरसावत रसधार की।
संग नवेलिन, अति अलबेलिन, हेलिन जूथ अपार की।
पियत 'कृपालु' रसिक निशिवासर, सुधा प्रेम-रस-सार की ॥

भावार्थ—एक सखी कहती है—मैं प्रिया-प्रियतमके निकुंजमें विविध प्रकार के रास-विहारकी बार-बार बलैयाँ लेती हूँ। मैं प्रेमरसकी आचार्या वृषभानु-नन्दिनी एवं रसिकशिरोमणि नंदनंदनकी बार-बार बलैयाँ लेती हूँ। मानों शृंगार एवं रूपकी मूर्ति ही साक्षात् राधा-कृष्णका स्वरूप धारण करके प्रेमके अंतरंग रसोंको बरसानेके लिए अवतरित हुई है। प्रिया-प्रियतम परस्पर गलेमें हाथ डाले हुए बिविध प्रकारकी अंतरंग लीला विहार करते हुए प्रेमरसको मूसलाधार बरसा रहे हैं, मैं उसकी भी बलैयाँ लेती हूँ। प्रिया-प्रियतमके साथ किशोर अवस्थावाली प्रेमरसकी रँगीली अनंत गोपियोंके झुंडकी बार-बार बलैयाँ लेती हूँ। "कृपालु" कहते हैं कि प्रेमरसके सार-स्वरूप अमृतको रसिक लोग निरंतर ही पिया करते हैं।

(६)

युगलवर झूलैं कुंज मझार।
श्रीवृषभानुदुलारी प्यारी प्रीतम नन्दकुमार।
बह्यो जात रस-सुधा-माधुरी, छबि-निधि-सिंधु अपार।
मृदु मुसकात, झूमि झुकि झूलत, जनु दोउ रूप सिंगार।
बिनु बानी बतरात परस्पर, दुहुँन दृगन दृग डार।
कहि न जात बड़भाग विटप को, बड़भागिनी वह डार।
जो निज गल बन्धन दै झुलवत, युगल-नवल-सरकार।
होत मगन दोउ जमुना जल बिच, निज प्रतिबिम्ब निहार।
लली लाल के या झूलन पर, हम 'कृपालु' बलिहार ॥

भावार्थ—लाड़िली-लाल युगल-सरकार झूला झूल रहे हैं। श्रीवृषभानुकी बेटी एवं नंदके लाल दोनों ही दिव्य प्रेमरसके अमृतको बरसा रहे हैं। दोनों मधुर मुस्कानके साथ झूमते हुए झुक-झुककर झूल रहे हैं, मानों रूप और श्रृंगार साक्षात् स्वरूप धारण करके आये हों। बिना वाणीके ही आँखों-में-आँखें डालकर संकेतसे ही परस्पर बातें करते हैं। उस वृक्ष एवं उस डालके भाग्यकी सराहना भला कौन कर सकता है जो अपने गलेमें फाँसी डालकर प्रिया-प्रियतम को झुला रही है। दोनों ही झूलते हुए यमुनाके जल में परस्पर अपनी-अपनी परछाई देखकर अत्यन्त ही आनन्द-विभोर हो रहे हैं। "कृपालु" कहते हैं कि लाड़लीलालकी इस मधुर झूला-लीलाकी मैं बार-बार वलैया लेता हूँ।

(७)

युगलवर निरतत कुंज-कुटीर।
छिटकि रही चहुँ चारु चाँदनी, कालिन्दी के तीर।
विकसित-मुकुलित, कुसुम-कलिन पर, भई अलिन की भीर।
शीतल, मन्द, सुगंध पवन्न बह, कलरव केकी, कीर।
हास-विलास-रास-रस खेलत, झूमत प्रेम अधीर।
होत 'कृपालु' सुमिरि सो झाँकी, पुलकित सकल सरीर॥

भावार्थ—प्रिया-प्रियतम लताओंके कुंजगृहोंमें नृत्य कर रहे हैं। चारों ओर पूर्णिमाके चन्द्रमाकी किरणें फैल रही हैं। यमुनाका किनारा है एवं खिले हुए फूलों तथा अर्द्ध-विकसित कलियों पर भौंरोंका झुंड मँडरा रहा है। शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु बह रही है, एवं मोर तथा तोते मधुर ध्वनि बोल रहे हैं। श्यामा-श्याम प्रेममें विभोर होकर झूमते हुए विविध प्रकारके अंतरंग दिव्य रास-विलासकी क्रीड़ाएँ कर रहे हैं। "कृपालु" कहते हैं कि उस दिव्य झाँकीका स्मरण करने मात्र से सारा शरीर पुलकायमान हो जाता है।

(८)

लखो री आली ! लाली जु की झुलन बहार ।
झुलवत लाल रूप जनु, लाली, झूलति जनु सिंगार ।
हिय फूली कालिंदी, ता तट, फूली कदमन डार ।
ता पर लता-बेलि बहु फूली, उरझी तरुवर झार ।
रंग बिरंग विविध सुफूलनि, रेशम डोरि सँवार ।
किय सोरह सिंगार फुलन को, राजति भानुदुलार ।
झुकि झुकि झोंटे देत लाल जू, करन चहत दृग चार ।
मुरि मुरि मृदु मुसुकाय लाड़ली, करति नैन सों वार ।
लाल अलापत तान, लाड़ली, गावति मेघ मलार ।
अति द्रुत झोंटे दियो लाल जब, डरपीं हिय सुकुमार ।
कह्यौ लाड़ली 'करो न लँगरई, नटखट नन्दकुमार' ।
हौं 'कृपालु' तब ही मानौं, जब, सँग झुलवो रिझवार ।।

भावार्थ—एक सखी, दूसरी सखीसे कहती है कि अरी सखी ! आज वृषभानुदुलारीकी झूलेकी बहार तो देख ! लालजी मूर्तिमान् रूपके समान झूला झुला रहे हैं तथा लाड़लीजी साक्षात् शृंगारके समान झूल रहीं हैं। श्रीयमुनाजी आनंदमें फूली नहीं समा रहीं हैं तथा यमुनाके किनारे कदंबका वृक्ष भी फूलोंसे सुशोभित हो रहा है, एवं उस कदंबके वृक्षमें पूर्णतया लिपटी हुई अनेक रङ्गके फूलोंसे युक्त लतायें उलझी हुई हैं। अनेक रङ्गके फूलोंसे सजाई हुई झूलेकी रेशमी रस्सी शोभायमान हो रही है। झूलेके ऊपर श्रीराधिकाजी फूलोंके सोलहों शृंगारसे युक्त होकर विराजमान हैं। लालजी झुक-झुककर झूमते हुए पीछेसे झूलेमें झोंटे दे रहे हैं एवं किशोरीजीकी आँखों-से-आँखें मिलानेका प्रयत्न भी कर रहे हैं। किशोरीजी भी मुड़-मुड़कर पीछेकी ओर देखती हुई श्यामसुन्दरपर कटाक्षपात् कर रही हैं। लालजी तान अलाप लेते

हैं, एवं लाड़लीजी मेघमलार रागसे गाना गाती हैं। कुछ देर बाद लालजीने ज्यों ही जोरोंसे झोंटे दिये तब लाड़लीजी, परमसुकुमार होनेके कारण, डर गयीं। किशोरीजीने लालाजीसे कहा, 'अरे नटखट ! ऊधम न करो।''' "कृपालु" कहते हैं कि तब लालजीने कहा कि मैं यह ऊधम तभी बंद करूँगा जब तुम मुझे भी अपने पास बिठाकर झूलने की आज्ञा प्रदान करोगी।

(९)

श्याम ! तुम रसिकन नाम लजायो।
सब दिन ग्वार गँवारन सँग लै, बन बन ढोर चरायो।
वेणी गुहत, केश उरझावत, किन गुरु तोहिं सिखायो ?
लखि सखियन हँसिहैं 'बस करु,हटु', लट छूटी मोहिं भायो।
कुसुम-गुच्छ इमि धरत शीश जनु, शिव-प्रतिमाहिं चढ़ायो।
व्यजन करत पुनि गिरत कुसुम जनु, झंझावात चलायो।
धनि'कृपालु'तुम रसिकशिरोमणि, धनि जिन तोहिं निभायो॥

भावार्थ—हे श्यामसुन्दर ! तुमने रसिकोंका नाम लज्जित कर दिया। सारे दिन तो अशिक्षित ग्वालोंके साथ वनोंमें जा-जाकर गायोंको चराया, तुममें रसिकता कहाँसे आयी ? किशोरीजी कहती हैं कि तुम वेणी गूँथते हुए बालोंको उलझा रहे हो। इस प्रकारकी गूँथनेकी क्रिया तुमने किस गुरुसे सीखी। वस करो, दूर बैठो, नहीं तो कोई सखी देख लेगी तो हम दोनोंकी हँसी वनायेंगी। मुझे खुले बाल ही अच्छे लगते हैं। तुम तो मेरे सिरपर फूलों के गुच्छे इस प्रकार रखते हो, जैसे कोई शिवजीकी मूर्तिपर चढ़ा रहा हो। फिर पङ्खा भी इतने वेगसे झलते हो, मानों आँधी चल रही हो, जिससे सब फूल गिर जाते हैं। "कृपालु" कहते हैं कि तुम सरीखे ग्रामीण भी रसिक-शिरोमणि कहलाने का दावा करते हैं। धन्य है तुमको, एवं धन्य है उन किशोरीजीको जिन्होंने तुम्हें इस प्रकार निभा लिया।

मान-माधुरी

(१)

कुँवरि ! तुम, मेरी जीवन-मूरि ।
तुम्हरे दरस हेतु नित धारत, तव-दासिन-पग-धूरि ।
किंकर जानि सनातन अपनो, कबहुँ न करियो दूरि ।
हौं अवगुन-सागर, तुम नागरि, गुन-आगरि भरपूरि ।
या ते कबहुँ न मान ठानियो, रिस जनि करियो भूरि ।
लली 'कृपालु' लगाय कंठ कह, 'तुम सुहाग हम चूरि' ॥

भावार्थ—(मानके बाद मिलनकी अवस्था में लालजीका लाड़लीजीसे लाड़पूर्वक कथन ।)

हे किशोरीजी ! तुम मुझे जीवन प्रदान करनेवाली हो । तुम्हारे दर्शनके लिए ही मैं सदा तुम्हारी दासियोंकी चरण-धूलि अपने मस्तक पर लगाया करता हूँ । अतएव तुम मुझे अपना सनातन-दास समझकर कभी भी अपनेसे दूर न करना । मैं तो अवगुणोंका भंडार हूँ, सदा ही भूल करता रहूँगा, किंतु तुम तो गुणोंकी भण्डार हो अतएव मुझे अपना समझकर मेरे अपराधोंपर ध्यान न देते हुए कभी भी इस प्रकारका अत्यन्त क्रोधपूर्वक मान मत ठानना । "कृपालु" कहते हैं कि किशोरीजी प्रियतमको गले लगाकर कहती हैं, 'ऐसा मत कहो, तुम तो हमारे सोहाग हो और मैं उससे नित्य सम्बन्ध रखनेवाली चूड़ी हूँ ।' (लोकमें सोहाग एवं चुड़ीका धर्मानुसार नित्य सम्बन्ध रहता है ।)

(२)

कुंवरि तू झूठेंहि दोष लगाय ।
सुनु भामिनि ! सब बात बताऊँ, साँच न बात बनाय ।
कालि सखिन मिलि नवल-कुँज जहँ, ललितहिं दई बिठाय ।
मोते कही चलहु कुंजन बिच, राधे तोय बुलाय' ।
हौं भोरो कछु भेद न जान्यौं, जानि तोहिं गयौं धाय ।
गहन-तिमिर पुनि घूँघट याते, कैसेहुँ मुख न लखाय ।
मोते कह 'किय मान मानिनी, पद गहि लेहु मनाय' ।
हौं याते अकुलाय चरण गहि, दृग अँसुअन झरि लाय ।
याही ते यह लाल-मिहावरि, गई भाल लपटाय ।
मोहिं रोवत तजि उठि पुनि ललिता, कुंजन गई दुराय ।
हौं ढूँढ़त कुंजन-मति हार्‍यौं, कहि कहि राधे हाय ।
भयो प्रभात मरम तब जान्यौं, सखियन गयौं ठगाय ।
याही ते दृग अति अरुणारे, मुरलिहु गई हिराय ।
अपर चिह्न देखति तू जेतिक, सब उनके गुन आय ।
सुनि 'कृपालु' हँसि कंठ लगायेहु, मानिनि सखिन रिसाय ।।

भावार्थ— (श्यामसुन्दर अपने ललाटमें महावर आदि लगने का कारण बताते हुए, एवं अपने-आपको निर्दोष सिद्ध करते हुए किशोरीजीसे कहते हैं ।)

हे कीर्ति-कुंवरि ! तू झूठ-मूठको ही मेरे ऊपर लांछन लगाती है । मैं सर्वथा निर्दोष हूँ । हे मानिनी ! सुन, मैं तुझे साफ-साफ स्पष्टरूपसे इसका कारण बताता हूँ, बात बनाना मुझे नहीं आता । कल सब सखियोंने मिलकर ललिता को अंधेरेमें कुंजके बीचमें बिठा दिया, एवं मुझसे कहा कि हे प्रियतम । चलो

तुम्हें कुंजके बीचमें बैठी हुई राधिकाजी बुला रही हैं। मैं भोला-भाला इनकी चालको विलकुल भी न समझ सका, एवं सचमुच ही एकमात्र तुम्हारे ही लक्ष्यसे अत्यन्त शीघ्र उनके कथनानुसार कुंज में चला गया। वहाँ बड़ा अंधेरा था, फिर ललिताने घूंघट भी काढ़ रखा था, अतएव किसी भी प्रकार मुख न दिखाई पड़नेके कारण मैं न पहचान सका। पश्चात् सखियोंने मुझसे कहा कि किशोरीजीने मान किया है, इनके चरण पकड़कर इन्हें मना लो, हम सब जाती हैं। मैंने, वास्तव में तुम्हें ही समझकर एवं अत्यन्त ही व्याकुलतापूर्वक, ललिता के चरणोंको पकड़कर बहुत आँसू वहाये। इसीसे ललिताके चरणोंकी लाल महावर मेरे ललाटमें लग गयी। हे किशोरीजी ! इसके पश्चात् मुझे रोता हुआ छोड़कर ललिता किसी कुंजमें छिप गयी। मैं 'हा राधे ! हा राधे ! ! कहकर प्रत्येक कुँजमें सारी रात ढूंढ़ता फिरा। जब प्रातःकाल हुआ तब मैंने यह रहस्य समझा कि सखियोंने मुझे ठग लिया हैं। कल रातभर जागने और रोने से ही मेरी आँखें लाल हो गयी हैं, एवं पता नहीं मेरी मुरली भी कहाँ खो गयी ? इसके अतिरिक्त और भी जितने चिह्न तू देखती है, यह सब उन्हीं सखियोंकी करतूतोंके परिणामस्वरूप है। ''कृपालु'' कहते हैं कि भोली-भाली किशोरीजी ने श्यामसुन्दरके इन वचनों का विश्वास कर हँसकर प्रियतम को गले लगा लिया एवं सखियों पर अत्यन्त ही क्रोध प्रकट किया। इस प्रकार मान भङ्ग हो गया।

(३)

कुँवरि बिनु, कैसे राखूँ प्रान ?
बिनु अपराध मान गहि बैठी, ताने भृकुटि-कमान।
हौं पुनि उन बिन रहि न सकत छिन, यह उनहूँ जिय जान।
केहि विधि धरूँ धीर मोंहि पल-पल, भये कलप उनमान।
तनु बिनु प्रान रहे कहु कैसे ? सोचहु मनहिं सुजान।
प्रान एक द्वै तनु 'कृपालु' जब, अचरज कौन महान।।

भावार्थ—(श्रीकिशोरीजीके वियोगमें प्रियतम श्यामसुन्दरका विलाप।)

मैं किशोरीजीके बिना किस प्रकार जीवित रहूँ? उन्होंने अपनी भौंहोंको तानकर अकारण ही मान कर लिया है और मैं उनके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता, इस बातको उनका हृदय भी जानता है। हाय! हाय!! मैं किस प्रकार धैर्य धारण करूँ? मुझे तो एक-एक क्षण कल्पके समान प्रतीत हो रहा है। प्राणके बिना भला शरीर कैसे रह सकता है, इस बातको सभी बुद्धिमान् समझ सकते हैं। "कृपालु" कहते हैं कि मैं बुद्धिमान् हूँ एवं इस बात का उत्तर देता हूँ—वह यह है कि यद्यपि लोकमें प्राणके बिना शरीर नहीं रह सकता तथापि जिन प्रिया-प्रियतमके दो शरीर होते हुए भी प्राण एक है, उनके लिए तो यह स्वाभाविक ही है।

(४)

कुँवरि बिनु, पल छिन कल न परे।
दुसह-विरह-दावानल परि यह, तन, मन, प्रान जरे।
पुनि पुनि ललिहि नाम-गुन गावत, नैनन नीर ढरे।
करि करि सुरति बिहार निकुँजनि, उर नहि धीर धरे।
हाय! हाय!! कहि मुर्छित छिति पर, गिरत लतान तरे।
बेगि 'कृपालु' ललिहि लै आवहु, उन बिन अब न सरे॥

भावार्थ—(किशोरीजीके वियोग में विरही श्यामसुन्दरका विलाप।)

हाय दैया! अब तो किशोरीजीके विना एक क्षणके लिए भी चैन नहीं पड़ता। अत्यन्त असह्य वियोगकी अग्निमें पड़कर मेरा यह तन, मन, प्राण सर्वस्व ही जला जा रहा है, बार-बार किशोरीजीके नाम एवं गुणोंको गाते हुए निरन्तर ही आँसू बहाया करता हूँ। निकुंजोंमें किये हुए लीला-विहारोंका बार-बार स्मरण करके हृदय किसी भी प्रकार धैर्य धारण नहीं कर पाता। हाय! हाय!! कहकर एवं मूर्छित होकर, लताओंके नीचे भूमिपर बार-बार

गिर पड़ता हूँ। "कृपालु" कहते हैं कि अब शीघ्र ही किशोरीजीको ले आओ क्योंकि उनके बिना अब प्यारे श्यामसुन्दरका जीवित रहना अत्यन्त ही कठिन है।

(५)

कुँवरि बिनु, प्रीतम होत अधीर।
तलफत नित जलहीन-मीन ज्यौं, बहत रहत दृग-नीर।
'हा प्राणेश्वरि ! हा राधे !!' कहि, बिलपत कुंज-कुटीर।
पुनि मुरछित ह्वै गिरत छिनहिं छिन, नेकहुँ धरत न धीर।
प्रानन आन परी है अब तो, सहि न जात उर-पीर।
चलु 'कृपालु' द्रुत ललिहिं मनावन, प्रान जात न तु वीर !॥

भावार्थ—(श्रीलाड़लीजीके वियोगमें श्रीश्यामसुन्दरकी दुःखद अवस्था का एक सखीका दूसरी सखी से कहना।)

किशोरीजीके बिना प्रियतम परमव्याकुल हो रहे हैं। जिस प्रकार जलके विना मछली तड़पती हैं, उसी प्रकार लाड़लीजीके बिना लालजी तड़प रहे हैं, तथा लताओंके कुँजमें रोते रहते हैं। एक-एक क्षणमें मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं, तथा 'हा प्राणेश्वरि ! हा राधे ! !' ऐसी रटना लगाते हैं। किंचित भी धैर्य नहीं धारण कर पाते। अब तो श्यामसुन्दरके प्राणोंपर आ बनी है, उनसे यह वियोगका दुःख सहा नहीं जाता। अतएव "कृपालु" कहते हैं कि अरीसखी। अब तो शीघ्र चलकर किशोरीजीको मनाना चाहिए, अन्यथा उनके वियोगमें श्यामसुन्दरका प्राण ही निकल जायगा।

(६)

छैल भल अटपट भेष बनाओ।
चन्द्रावलि-पद बन्दि भाल निज, लाल, लाल करि लायो।
दै उपहार पीत अम्बर निज, अरुण-ओढ़नो भायो।

बिखरे केश, नैन रतनारे, मुरली कित बिसरायो ?
बचन अरबरे, स्वेद, कंप तनु, तव अपराध जतायो ।
धनि धनि निलज !! आजु छल उघर्‍यो, भली करी जो आयो ।
सुनि 'कृपालु' कटु बचन लली के, लाल दृगन तम छायो ॥

भावार्थ—(श्री श्यामसुन्दर चन्द्रावलीके यहाँ से प्रातःकाल किशोरीजीके महलमें पहुँचते हैं, एवं किशोरीजी व्यंग भरे शब्दोंमें कहती हैं।)

अरे प्रियतम श्यामसुन्दर ! आज तो तुमने अत्यन्त ही अद्भुत वेष बना रखा है। चन्द्रावलीके चरण-कमलोंपर आँसू बहाते हुए अपने ललाटमें क्या ही सुन्दर लाल-लाल महावरका श्रृंगार कर रखा है ? अपना पीतांवर भी भेटमें उन्हींको दे आये हो, कदाचित् आजकल तुम्हें लाल रंगकी ओढ़नी ही भाने लगी है। क्या ही सुन्दर लाल ओढ़नी है ? बिखरे हुए बाल एवं रातभर जागनेसे लाल-लाल आँखें क्या ही शोभा दे रही हैं ? अरे प्रियतम ! अपनी प्राणाधिक-प्रिय मुरली भी साथ रखनेका तुम्हें अब ध्यान नहीं रहा। क्या उसे भी चन्द्रावलीके पास छोड़ आये ? रुक-रुककर अटकते हुए बातें करना, शरीर में कंप एवं पसीना होना, यह सब तुम्हारे अपराधोंके प्रत्यक्ष चिह्न हैं। अरे निर्लज्ज। तुझे धन्य हैं, आज तेरा कपट भेद स्पष्टरूपसे प्रकट हो गया। बड़ा अच्छा किया जो ऐसी ही अवस्थामें यहाँ चले आये, अन्यथा यह रहस्य किस प्रकार स्पष्ट होता ? "कृपालु" कहते हैं कि ऐसा कहकर किशोरीजीने कुपित होकर मान कर लिया, तथा श्यामसुन्दरकी आँखोंके आगे डरके मारे अँधेरा-सा छा गया। (इसके पश्चात् देखें पद संख्या २, पृष्ठ १७०)

(७)

जाओ जी न जल बिच आग लगावो ।
तुम्हरो पग, मग चलत थकत कत,
बटत न कछु किमि पुनि पुनि आवो ।
जा-पद-रत, दृग झरत, हरत चित,

धरत सीस तेहि कस बिसरावो।
सुघर ! अधर धर मुरलि मधुर धुनि,
सवतिन-गुन-गन गाइ रिझावो।
कारी रेख खँचाइ प्रेम-पट,
बेदरदी जनि जरिहिं जरावो।
यह 'कृपालु' वृषभानुलाड़ली,
नहिं गँवारि जेहि पाठ पढ़ावो ॥

भावार्थ—(मानिनी राधिकाको मनाते हुए लालजी के प्रति राधिकाजी की कूटूक्ति।)

हे प्रियतम ! जाओ भी, जलमें आग लगानेका प्रयत्न मत करो। तुम्हारे चरण हमारे पास तक आनेमें थक गये होंगे। मेरे पास बार-बार क्यों आते हो, यहाँ क्या बँट रहा है ? जिन चरणोंमें तुम्हारा अनन्य प्रेम है, एवं जिनपर आँसू बहाते हो, उन चन्द्रावलीके चरणोंको कैसे भूल गये ? हे प्रियतम ! अपनी मुरलीकी मधुर-ध्वनिमें हमारी सौतोंके गुण गाते हुए, जाकर उन्हें ही प्रसन्न करो। प्रेमकी अनन्यतामें कलंक लगाकर अब मुझ जलीको जलाने क्यों आये ? "कृपालु" कहते हैं कि मैं वृषभानुनन्दिनी हूँ, कोई अबोध नहीं, जिसे तुम बातें बनाकर ठगने आये हो।

(८)

पिय बिनु पिय सों तिय बतरात।
भावावेश-समाधि-मगन मन, बिहरति तिय दिन-रात।
कबहुँक उठि कह "तुम अति निष्ठुर, तो सन करहुँ न बात"।
कबहुँक कह "कितने प्यारे तुम, सुन्दर श्यामल गात"।

कबहुँक उर लपटाति कहति कछु, कबहुँक पुनि रिसियात ।
लतन‘कृपालु’ लखति ललितादिक, लखि लखि हिय हुलसात ।

भावार्थ—(प्रियतम श्यामसुन्दरके वियोगमें श्रीकिशोरीजी दिव्य भावावेशकी अवस्थामें मधुर-मिलनका अनुभव करती हैं ।)

प्रियतम श्यामसुन्दरके विना ही विरहिणी प्रियतमसे बातें करती है, एवं भावावेश-प्रेम-समाधिमें निमग्न होकर उनसे विहार करती है । कभी तो उठकर कहती हैं, ‘तुस बड़े बेपीर हो अव मैं तुमसे कभी वात नहीं करूँगी’, एवं कभी यह कहती है, हे प्यारे श्यामसुन्दर तुम कितने प्यारे हो ।’ कभी मानों उनके हृदयसे लिपटकर कुछ कहती हुई सी मालूम पड़ती है तथा कभी उमसे मान भी कर लेती है । “कृपालु” कहते हैं कि इस दिव्य मिलनको ललितादिक सखियाँ लताओंके बीच से देखती हुई हृदयमें प्रेमकी हिलोरें लेने लगीं ।

(९)

पिया बिनु प्यारिहिं बिरह सताय ।
बिरहिनि, निशा निशाचरि बनि जनु, रही छिनहिं छिन खाय ।
तारे मनहुँ भये अंगारे, नींद सौत भइ आय ।
दक्षिण-पवन, अहिन-विष लै जनु, सब तनु बिष बगराय ।
बन्यौ सुधाकर, मनहुँ दिवाकर, चिनगारिन बरसाय ।
बिधि बिपरीत ‘कृपालु’कुँवरि लखि, गिरी धरणि बिलखाय ॥

भावार्थ—(प्यारेके वियोगमें प्यारीकी विरह-अवस्थाका वर्णन ।)

प्रियतमके विना प्यारीजीको वियोग अत्यन्त ही कष्ट दे रहा है । रात्रि मानों पिशाचिनी बनकर क्षण-क्षणमें खाये जा रही है । तारे अंगारे के समान जला रहे हैं । नींद भी सौत बन गई है । दक्षिण दिशाकी वायु मानों मलयागिरिपर चन्दनके वृक्षोंमें लिपटे हुए सर्पों के विपको लेकर समस्त शरीरमें विष फैला रही है । अमृतकी किरणोंकी बरसानेवाला चन्द्रमा भी मानों अग्निकी

चिनगारियोंको बरसानेवाला सूर्य बन गया है। "कृपालु" कहते हैं कि इस प्रकार समस्त प्रकृति-तत्वोंको विपरीत देखकर किशोरीजी अत्यन्त व्याकुल होकर अचेतन अवस्थामें पृथ्वीपर गिर पड़ीं।

(१०)

पिया बिनु, प्यारी होति अधीर।
'पिवु पिवु' रटति अटति ब्रज-बीथिन, घटत न दृगघट-नीर।
तरु-तमाल-श्यामल लखि श्यामा, श्याममई भइँ वीर।
लखत शिखिन, शिखि-पुच्छ-मुकुट सुधि, होति बढ़ति उर-पीर।
करि करि सुरति बिहार निकुंजनि, मुरछित कुंज-कुटीर।
निशि 'कृपालु' लखि चक्र-वाक कहँ, कछुक धरति उर धीर॥

भावार्थ—प्यारे श्यामसुन्दरके वियोगमें विरहिणी राधिका अत्यन्त ही व्याकुल हो रही हैं। पिउ पिउकी रटना लगाती हुई, ब्रजकी गली-गलीमें उन्हें ढूँढ़ती हुई, आँखोंसे निरन्तर ही अश्रुधारा बहाती हैं। श्याम रंगके तमाल वृक्षोंको देखकर किशोरीजी श्यामसुन्दरका स्मरण करती हुई तन्मय हो जाती हैं। मयूरों को देखते ही मोरपंखवाले श्यामसुन्दरका स्मरण करती हुई और भीं अधीर हो जाती हैं। प्रियतमके साथ किये हुए पूर्व निकुंज-विहारका स्मरण करती हुई मूर्छित होजाती हैं। "कृपालु" कहते हैं कि रात्रिमें चकवा चकवी पक्षी को देखकर (चकवा चकवी रात्रिभर स्वाभाविक ही एक-दूसरे से वियुक्त रहते हैं) किसी प्रकार थोड़ा-सा धैर्य धारण करती हैं।

(११)

मानिनी ! तुम्हरे उर नहिं पीर।
उत विरहागिनि जरत छिनहिं छिन, सुन्दर श्याम शरीर।
ठाने मान गुमान इतै तुम, बैठी छुटि लट चीर।

तुम बिनु इक छिन कल नहिं पल पल, तलफत होत अधीर।
दृग-अँसुवन सों हार पिरोवत, बैठी यमुना-तीर।
लै कोउ प्राण, 'प्राणप्यारी कहं, कहत 'लाउ अब वीर !'
अति, अति बुरी 'कृपालु' जात परि, बहुत मिठाइहुँ कीर ।।

भावार्थ—(मानिनी राधिकाको ललिता सखीका मनाना।)

हे मानिनी ! तुम्हारे हृदय में थोड़ी भी दया नहीं है। क्योंकि उधर तो श्यामसुन्दरका शरीर विरहकी अग्निमें प्रतिक्षण जल रहा है और इधर तुम अपनी वेणीको खोले हुए, तथा वस्त्रोंको फेंककर मानके गुमानमें बैठी हो। प्रियतमको तुम्हारे बिना एक क्षणके लिए भी चैन नहीं है। वे अधीर होकर निरन्तर तड़प रहे हैं। यमुनाके किनारे अकेले ही बैठे हुए आँखोंके आँसुओंसे हार-सा गूथते हुए बार-बार अधीर होकर कहते हैं, 'अरे कोई प्राण भी लेकर प्राणप्यारी किशोरीजीको एक बार दिखा दो।' "कृपालु" कहते हैं कि हे किशोरीजी ! अति सबकी बुरी होती है, अतएव अतिशय मान भी बुरा है। अत्यन्त मिठाईमें भी कीड़े पड़ जाते हैं, यह लोकमें प्रसिद्ध है।

(१२)

मानिनी ! बात मान तजु मान।
प्रियतम प्राण जात उत तू इत, ठानति मान गुमान।
तुम बिनु उत उन्माद भयो उन, तू इत करति न कान।
हा राधे ! पुनि पुनि कहि टेरत, मंजुल कुंज-लतान।
गिरत धरणि बिलखाय छिनहिं छिन, मनहुँ चले अब प्रान।
अति की बात 'कृपालु' न कतहूँ, नीकी यह जिय जान ।।

भावार्थ—(ललिता सखी मानिनी किशोरीजीको मनाती हुई कहती है।)

हे किशोरीजी ! अब तुम हमारी बात मान लो, एवं मान छोड़ दो । हे किशोरीजी ! तुम इधर मान किये बैठी हो, उधर प्रियतम के प्राण जा रहे हैं। तुम इधर तो मेरी बात तक नहीं सुनती, उधर तुम्हारे बिना प्रियतमको उन्माद रोग हो गया है । सुन्दर कुंजलताओं में प्रियतम अत्यन्त अधीर होकर, 'हा राधे ! हा राधे !!' कह-कहकर तुम्हें पुकार रहे हैं । एवं बार-बार मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं । ऐसा प्रतीत होता है मानों उनके प्राण अब निकलना ही चाहते हैं । "कृपालु" कहते हैं कि हे किशोरीजी ! तुम विश्वास करो, इस लोकमें भी लोग कहते हैं कि किसी भी बातकी अतिशयिता बहुत बुरी होती है ।

(१३)

मानिनी ! मान की बान बुरी ।
तव छबि मधु-मखियाँ पिय-अँखियाँ, नहिं मानत निगुरी ।
निकसन चह असुरी अब तुम बिनु, सुधि भूलो बँसुरी ।
पुनि पुनि कहत बिलखि हा राधे ! कुंजन कौन दुरी ?
दुहुँन रुआवति मान-बानि यह, विष की बुझी छुरी ।
तुम 'कृपालु' दोउ बिलग न रहि सक, ज्यौं घन ते बिजुरी ॥

भावार्थ—(मानिनी किशोरीजीको मनाती हुई ललिताकी उक्ति ।)

हे किशोरीजी ! तुम्हारी यह बार-बार रूठ जानेकी बान अच्छी नहीं है । प्रियतमकी आँखें तुम्हारे रूपकी मधुमक्खियाँ बन चुकी हैं । वे अब तुम्हारे बिना किसी भी प्रकारसे प्रियतमको चैन नहीं लेने देतीं । अब प्रियतमके प्राण निकलना ही चाहते हैं, एवं उन्हें अब तुम्हारे आगे अपनी प्राणाधिक-प्रिय मुरलीका भी ध्यान नहीं रहा । वे बार-बार व्याकुल होकर कहते हैं 'हा राधे ! तुम कौनसी कुंजमें छुप गयीं ।' हे किशोरीजी ! यह विषकी बुझी हुई छुरीके समान तुम्हारी मानकी बान तुम दोनोंको रुलाती है, अतएव इसे छोड़ो ।

"कृपालु" कहते हैं कि तुम दोनों एक-दूसरेसे प्रथक् उसी प्रकार नहीं रह सकते जिस प्रकार बादलोंसे बिजली।

(१४)

मानिनी ! मान मान अब मान।
तुम बिन मोहन रहि न सकत छिन, जान जान जिय जान।
पल पल पंथ निहारत आरत, कान्ह कान्ह तव कान्ह।
रोम-रोम रमि रह्यौ गौर-तनु, ध्यान ध्यान नित ध्यान।
पलकनि अटकि कछुक पल परखत, प्रान प्रान सुनु प्रान।
सुनि 'कृपालु' नहिं रह्यौ मान को, भान भान अब भान॥

भावार्थ—(ललिता सखी मानिनी वृषभानुनन्दिनी को मनाती हुई कहती है।)

हे मानिनी राधिके ! मैं बार-बार कहती हूँ कि तू अब मेरी बात मान ले। तुम्हारे बिना श्यामसुन्दर एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते। इस बात को पक्की समझना। तुम्हारा प्रियतम व्याकुल होकर क्षण-क्षणमें तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा है। उसके रोम-रोममें तुम्हारे ही गौर शरीरका ध्यान रमा हुआ है। उनके प्राण आँखोंके पलकोंमें अटककर मानों अब प्रतीक्षा करनेमें असमर्थ-से हो रहे हैं। "कृपालु" कहते हैं कि प्रियतमकी ऐसी दुःखद अवस्था को देखकर किशोरीजी अपना मान भूलकर प्रेमविभोर हो गयीं।

(१५)

लखी मन, नवनि ते अति मृदुताई।
हौं नीकी सखि जानत पी की, ही की नीकि निकाई।
नवनी द्रवत ताप निज, प्रीतम, पर-तिय-ताप द्रवाई।
सोऊ लखि दूरहि ते, 'हा ! हा !!, कितनो सूध सुभाई'।

'को कह पिय बेपीर ?' वीर ! जो, पीर देत बरिआई ।
अति विशाल मन-मानस उनको, अबला अमित समाई ।
कहा कहौं सखि मन नहिं मानत, उलटो लखत खुटाई ।
अब 'कृपालु' भइ बेर जाहु घर, राधे भलि भरि पाई ।।

भावार्थ—(प्यारे श्यामसुन्दरसे रूठी हुई राधिकाजी ललिताको द्वयर्थक व्यंग भरे शब्दोंमें कहती हैं ।)

अरी सखी ! प्रियतमका हृदय मक्खनसे भी अधिक कोमल है, यह मैंने अनुभव किया है । मैं प्रियतमके हृदयकी अच्छाइयोंको भली-भाँति जानती हूँ, मुझसे अधिक तू क्या जाने ? अरी सखी ! मक्खन तो स्वार्थवश अपने ऊपर आए हुए तापसे ही पिघलता है, किन्तु प्रियतम तो दूसरी स्त्रियों (जीवों) के तापसे पिघल जाते हैं, और वह भी दूर से ही (गोलोकमें ही रहते हुए) । अहा हा ! कितने सरल हैं । अरी सखी ! प्रियतम को कौन बेपीर कह सकता है, जबकि वह सभी को पीड़ा(प्रेम) बाँटा करते हैं । प्रियतमका हृदय अत्यन्त ही विशाल है क्योंकि उसमें अनन्त स्त्रियाँ (जीव) शरण पा लेती हैं । अरी सखी ! यद्यपि उनमें उपरोक्त सभी अलौकिक गुण हैं, फिर भी मेरा मन तो उल्टे अवगुण ही देखता है । "कृपालु" कहते हैं कि अरी ललिता ! अब तुझे बड़ी देर हो चुकी है, अपने घर जा । राधिका का तो उनसे भली-भाँति पेट भर चुका है ।

(१६)

ललो बिनु, सब बिपरीत लखात ।
सखिन-समाज साज सब मो कहँ, नेकहुँ नाहिं सुहात ।
श्रवत सुधा सब जान सुधाकर, मोंहि अंगार जनात ।
किसलय-सेज सबन सुखदाई, मोंहि नागिनि बनि खात ।

शीतल-मंद-सुगंध पवन मोंहि, मारि मूठि सी जात ।
धुनि 'कृपालु' पिक, कीर, मयूरन, बज्रपात जनु गात ।।

भावार्थ—(श्रीकिशोरीजीके वियोगमें प्रियतम श्यामसुन्दरका विलाप ।)

किशोरीजीके बिना मुझे प्रकृतिके भी समस्त तत्व उल्टे लग रहे हैं । मेरी परमप्रिय सखियोंका समुदाय एवं उनके साज किंचित् भी अच्छे नहीं लगते । सारा संसार जानता है कि चन्द्रमा अमृतकी किरण बरसाता है किन्तु इसके बजाय मेरे लिये तो जलते हुए अंगारे ही बरसाता है । नवीन कोमल पल्लवकी शय्या सभीके लिए सुखदायी होती हैं, किन्तु मुझे वह मानों नागिन-सी बनकर खाने दौड़ती है । ठंडी, मन्द एवं सुगन्धित वायु भी मुझे मूठ-सी मारकर नितान्त ही व्याकुल वनाये रहती है । ''कृपालु'' कहते हैं कि मुझे कोयल, तोते एवं मयूरोंकी ध्वनि भी वज्रपातके समान कर्कश बनकर दुःखी करती है ।

(१७)

श्यामा-श्याम धाम-वृन्दावन,
सरस प्रेम-रस विपिन ब्रहावत !
यामिनि-शरद, संग-ब्रजभामिनि,
अभिरामिनि धुनि बेणु बजावत ।
जेहि सुनि, तजि अनहद धुनि ज्ञानी,
जानि समाधि उपाधि भुलावत ।
दिव्य-विलास रास-रस खेलत,
लाल-लाड़ली नाचत गावत ।
उरझत उत कुण्डल अलकनि, इत,
बेसर बनमालहिं उरझावत ।

हिय हुलास कछु हास युगलवर,
लाल युगल निज कर सुरझावत ।
पिवु तनु लखि प्रतिबिंब प्रिया निज,
जानि आन तिय मान बढ़ावत ।
उठि रिसाय चलि कटु सुभाय ललि,
कर धरि चिबुक भृकुटि बल लावत ।
लै ललिता सखि अति सभीत पिय,
सजल-नयन कर जोरि मनावत ।
फिरि बैठीं मुख मोरि कहति 'उर,
धरि कोउ तिय अब मो ढिग आवत' ।
बड़ असमंजस कहि न जाय कछु,
ठाढ़ो गिरिधर दृग बरसावत ।
ललिता बुधि-बल लाल-ओढ़नी,
ओढ़ि, लाल दुति-देह दुरावत ।
लखि 'कृपालु' तिरछे दृग राधे,
हँसि निज प्रियतम कंठ लगावत ॥

भावार्थ—प्रिया-प्रियतम वृन्दावनधाममें मधुर प्रेमरसकी वर्षा कर रहे हैं । शरत् कालीन पूर्णिमाके चन्द्रमासे युक्त रात्रि है, एवं करोड़ों गोपियोंके साथ श्रीकृष्ण मधुर मुरली बजा रहे हैं । जिसे सुनकर जीवन्मुक्त ज्ञानी भी अपने अनहद-नाद एवं समाधिको उपाधि समझकर भूल जाते हैं । श्यामा-श्याम के दिव्य रास-विलासका रस बरसाते हुए एवं गायनपूर्वक नृत्य करते-करते ही, श्रीकृष्णके कुंडल किशोरीजीकी वेणीमें उलझ गये एवं किशोरीजीकी वेसरने वनमालाको उलझा लिया । ऐसी अवस्थामें दोनों ही आनन्दमें कुछ हँसने लगे ।

इससे पश्चात् जैसे ही लालजीने दोनों हाथोंसे सुलझाना शुरू किया, वैसे ही अचानक उनके ऊपर एक महान् आपत्ति आ गयी। वह यह कि लाड़लीजीने प्रियतमके वक्षस्थल पर अपने ही प्रतिबिम्ब को देखकर भोलेपनमें दूसरी प्रेमिका समझकर मान कर लिया, तथा तत्क्षण ही कुपित होकर वहाँसे उठकर चल दीं। कुछ दूर जाकर ठोढ़ीपर हाथ रखे हुए एवं बल खाती भौंहोंको ताने हुए बैठ गयीं। प्रियतम अत्यन्त ही डरकर ललिता सखीको साथ लेकर मनानेके लिए गये। प्रियतम प्यारीजीके सामने खड़े होकर आँसू भरे नेत्रोंसे हाथ जोड़कर अनुनय-विनय पूर्वक मनाने लगे, किंतु प्रियतमके वक्षस्थलमें पुनः पूर्व भ्रम के अनुसार उसी प्रेयसीकी बैठी देखकर किशोरीजी और भी क्रुद्ध होकर कहने लगीं, 'अरे निर्लज्ज ! उसी नायिकाको हृदयमें रखकर फिर अपना मुख दिखाने आया है।' लालजी बड़े ही असमंजसमें पड़कर खड़े-खड़े आँसू बहाने लगे, कुछ भी कहते नहीं बना। तब ललिताके बुद्धिकौशलके द्वारा प्रियतमने लाल ओंढ़नी ओढ़कर अपने शरीरकी कान्तिको ढक दिया। "कृपालु" कहते हैं कि लाल ओढ़नी ओढ़े हुए लालको देखकर एवं पूर्व नायिकाको न देखकर किशोरीजीने तिरछी आँखों से देखते हुए हँसकर लालजीको अपने गलेसे लगा लिया।

(१८)

श्री राधे रानी ! अबकी लेहु अपनाय।
'माँगत भीख क्षमा को राधे ! तुम बिनु रह्यौ न जाय।'
'जाहु पिया ! तुम्हरी बातन महँ, अब राधे नहिं आय।'
'कहाँ जाउँ राधे ! अब' इमि कहि, गह्यो चरण अकुलाय।
'यह पिय ! चंद्रावलि-पद नहिं जेहि, लियो अंक लिपटाय।'
झटकि बैठि,मुख मोरि मानिनी, 'पिय अँसुअन झरि लाय।'
कह 'कृपालु' भामिनि ! ये हारे, अपने सरल-सुभाय॥

भावार्थ—(मानिनी राधाजीको मनाते हुए उनसे श्यामसुन्दर की बहस।)

श्रीश्यामसुन्दर कहते हैं कि हे किशोरीजी ! मैं तुमसे क्षमाकी भीख माँग रहा हूँ। मुझे क्षमा कर दो। तुम्हारे बिना अब रहा नहीं जाता, अतएव अबकी बार तो अपना ही लो। इतना कहकर लालजीने किशोरीजीके चरणोंको पकड़ लिया, एवं रोने लगे। (चरण पकड़नेका संकेत यह है कि मैं इन्हीं चरणोंमें तो रहता हूँ, अन्यत्र कहाँ जाऊँ ?) किशोरीजी अपने पैरोंको हटाती हुई व्यंगभरे शब्दोंमें कहती हैं कि हे प्रियतम ! यह चन्द्रावलीका चरण नहीं है जिसे सदा अपसे हृदयसे लगाया करते हो। ऐसा कहकर किशोरीजी प्रियतमको झटककर मुख फेरते हुए पृथक् जा बैठीं, एवं प्रियतम इसी अवस्थामें आँसू बहाते रहे। "कृपालु" कहते हैं कि हे किशोरीजी, इनका कोई दोष नहीं है, ये तो अपने सरल स्वभावसे हारे हुए हैं।

(१९)

श्री राधेरानी ! अब जनि करियो मान।
जाको जात नात जुरि जासों, जाने या अनजान।
ताको गुन-अवगुन सो सपनेहुँ, धरत न कबहूँ ध्यान।
पुनि तूतो पीकी हू नीकी, ही की गति पहिचान।
हौं तुम बिनु इक छिन नहिं रहि सक, ज्यौं नहिं तनु बिनु प्रान।
तुम 'कृपालु' भल प्रीति रीति कहँ, जानति बनति अयान ॥

भावार्थ—(मानके पश्चात् मिलनकी अवस्थामें किशोरीजीसे प्रियतमके लाड़-भरे वचन।)

हे किशोरीजी ! अब तुम कभी मान मत करना। देखो किशोरीजी ! जानकर या बिना जाने ही जिसका जिससे नाता जुड़ जाता है, वह अपने प्रियतमके गुण अथवा अवगुण स्वप्नमें भी नहीं देखता फिर तुम तो अपने प्रियतमके हृदयकी वास्तविक अवस्थासे भी परिचित हो कि जिस प्रकार बिना प्राणके शरीर नहीं रह सकता, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे बिना जीवित नहीं

रह सकता। "कृपालु" कहते हैं कि तुम यद्यपि भली-भाँति प्रीतकी इन सब बातोंको जानती हो, फिर भी जान-जानकर अनजान बनती हो।

(२०)

श्री राधेरानी ! लागी बुरी बलाय।

बारेक लाग आग अनुरागहिं, फेरि न बुझे बुझाय।
छिन छिन बढ़त जाति बिरहागिनि, तन, मन, प्रान, जराय।
अनुरागिन कहँ मान विषागिनि, नागिनि सी बनि खाय।
मानहिं करन जान तुम मानिनि, कबहूँ देखु मनाय।
सो 'कृपालु' किमि जान पीर जेहि, पग नहिं फटी बिवाय॥

भावार्थ—(किशोरीजीके मान भंग होनेके बाद श्रीश्यामसुन्दर लाड़लीजी से अत्यन्त ही लाड़ भरे शब्दोंमें कहते हैं।)

हे किशोरीजी। किसीसे लगन लग जाना यह बहुत ही बुरा रोग है। क्योंकि एक बार भी प्रेमकी आग लग जाने पर फिर करोड़ों उपायोंसे भी वह आग नहीं बुझ सकती, वरन् क्षण-क्षणमें वह विरहाग्नि तन, मन, एवं प्राणों-को जलाती हुई बढ़ती ही जाती है। प्रेमियोंके लिए मान-रूपी विषकी अग्नि नागिन-सी वनकर विष फैलाती है। हे किशोरीजी ! तुम केवल मान ही करना जानती हो, कभी मनाकर भी तो देखो, तब तुम्हें स्वयं अनुभव हो जायगा कि मान करना कितना बुरा है। "कृपालु" अपने संसारकी नियमावली के अनुसार कहते हैं, "जिसके पैर न फटी बिवाई, सो क्या जाने पीर पराई ?"

(२१)

सखी ! सुनु इक अनहोनी बात।

हिलि मिलि कालि निकुंज मंजु बिच, रहे दोउ बतरात।
औचक उर संकल्प दुहुँन के, भयो एक सँग रात।

'आजु करौं हौं मान अकारन', हँसिन बात बढ़ि जात ।
दोउ किय मान, न दोउ मनायेउ, तब भइ दोउ रिस गात ।
कियो मान साँचेहि तब दोउन, इमि ह्वै गइ परभात ।
सखिन मनावत हारि गईं पै, मरम न जानि सकात ।
पुनि दोउ संगहि चले मनावन, आपहि आपु रिसात ।
लखि 'कृपालु' द्वै गात चित्त एक, अचरज कछु न लखात ।।

भावार्थ—(लाड़ली-लालका अद्भुत मान एवं प्रणय ।)

एक सखी, दूसरी सखीसे कहती है कि ऐ री सखी । एक अनोखी बात सुन । कल रातको प्रिया-प्रियतम निकुंजमें बैठे हुए परस्पर घुलमिलकर बातें कर रहे थे । अचानक ही दोनोंके हृदयमें एक साथ संकल्प पैदा हुआ कि मैं आज बिना किसी कारणके ही मान करूँ । हँसी-हँसीमें ही बातका बतङ्गड़ बन गया । दोनोंने ही अकारण मान कर लिया, एवं दोनों ही ने एक-दूसरेको नहीं मनाया जिसके परिणामस्वरूप खीझकर दोनों ही कुपित हो गये । तत्पश्चात् दोनों ही ने वास्तविक मान ठान लिया । इस प्रकार एक दूसरेको न मनानेके कारण। इसी होड़में सबेरा हो गया । ललिता आदि सखियाँ मनाते-मनाते हार गयीं पर आजकी इस विचित्र मान-माधुरीको नहीं समझ सकीं । प्रातःकाल दोनों ही अपने-आप पर ही क्रोध करते हुए एक साथ एक दूसरेको मनानेके लिए चले । "कृपालु" कहते हैं कि जब इन दोनोंका शरीरमात्र दो है किन्तु मन, बुद्धि प्राण आदि एक ही हैं, तब एक साथ एक संकल्प होनेमें, ऐ री सखी ! आश्चर्य ही क्या है ?

(२२)

हाय ! मैं कैसी करूँ जिय जाय ।
हा राधे ! हा प्रेम अगाधे !!, तुम बिनु कछु न सुहाय ।
पलक-ओट नहिं भइं कबहुँ अब, गइं कितै बिसराय ।

निकलने देती । "कृपालु" कहते हैं कि अब या तो आकर मुझे अपने गलेसे लगा लो, या अपने ही हाथोंसे सुदर्शन चक्र चलाकर मुझे मार डालो, अब तुम्हारा वियोग सहा नहीं जाता ।

(२)

अरी ! कोउ उर उरझी सुरझावे ।
ज्यौं-ज्यौं जतन करत सुरझन को, त्यौं-त्यौं अति उरझावे ।
फाँसी भई दृगन की हाँसी, अब सोउ दृग झरि लावे ।
मनहूँ जाय मिल्यौ उनहिन सँग, बुधि निज सुधि बिसरावे ।
मोंहि अकेली जानि सहेली, बिरह अनल धधकावे ।
दीरघ-श्वास-धूम-दृग-वारिद, कहँ लौं जल बरसावे ।
बड़ कलंक सखि ! अंक प्रेमपट, जो निज प्राण गँवावे ।
अब 'कृपालु' निज सिर धरि ओखलि, चोट ते कस घबरावे? ।।

भावार्थ—विरहिणी कहती है कि अरी सखी ! मेरे हृदयमें प्रियतम श्याम सुन्दरके मधुर-मिलनकी उलझनको दया करके कोई सुलझा दे । मैं तो जितना ही इस उलझनको (प्रियतमके स्मरणको) सुलझाती हूँ अर्थात् भुलाना चाहती हूँ, उतना ही अधिक वह और उलझती जाती है, अर्थात् उतनी ही अधिक उनकी याद आती है । अरी सखी ! आँखोंकी थोड़ीसी हँसी भी मेरे गलेकी फाँसी बन गयी है । अब वे आँखें भी प्रियतमके मधुर-मिलनके लिए तड़प रही हैं । मेरा मन भी प्रियतमसे ही जा मिला, एवं मेरी बुद्धि भी अपनी सुधि-बुधि खो बैठी तथा प्रेमविभोर हो गई । अतएव मुझे अकेली समझकर विरहने मेरे अन्दर आग लगा दी । यद्यपि मैंने इस आगको बुझानेके लिए लम्बी-लम्बी साँसोंकी भापको आँखोंमें बादल बनाकर उनसे निरन्तर ही जल बरसाया फिर भी आग नहीं बुझी । अरी सखी ! यदि प्राण भी छोड़ देती हूँ तो प्रेमके उज्ज्वल वस्त्रपर महान् कलंक लग जाता है, क्योंकि प्रेम तो अमरत्व प्रदान

करनेवाला कहलाता है। अतएव अब तड़पनेके सिवा दूसरा कोई चारा ही नहीं। "कृपालु" कहते हैं कि अरी विरहिणी ! जब ओखलीमें सिर रख दिया, तब चोटोंसे क्या घबराना ?

(३)

अरी तोय कहा भयो ? कछु नाहिं ।
कहा बिसूरति बैठि मौन गहि ?
'ब्रह्म रूप निज काहिं ।'
कत तनु कंप ? 'डरी सखि ! सोचत,
नरक-दुखन मन माहिं ।'
कत रोवति ? 'रोवति नहिं दोउ दृग,
आनँद-जल बरसाहिं ।'
कत दीरघ-निश्वास? 'सिखत सखि!
प्राणायाम सदाहिं ।'
कत पुनि पुनि मुर्छित?'सखि ! सोतो,
ब्रह्म-समाधि समाहिं ।'
प्रीति दुरावति किमि सखि?तेहि मग,
बुध 'कृपालु' नहिं जाहिं ॥

भावार्थ—(एक विरहिणी सखीके प्रेमके रहस्यको जाननेके लिए उसकी अंतरंग सखी प्रश्न करती है, एवं विरहिणी प्रेमको छिपाती हुई बातें बनाती है।)

सखीने पूछा कि अरी ! तुझे क्या हो गया है ? विरहिणीने कहा 'कुछ भी तो नहीं।' फिर सखीने पूछा, 'तू एकान्तमें बैठी-बैठी उदासीन-भावसे क्या सोचा करती है ?' विरहिणीने कहा, 'मैं ज्ञानमार्गके अनुसार अपने-ब्रह्म-स्वरूप

का चिन्तन करती हूँ ।' सखीने पूछा, तेरा शरीर क्यो काँपता है ?' विरहिणीने कहा, 'नरकके घोर दुःखोंका चिन्तन करके मैं कभी-कभी डर जाती हूँ ।' सखीने पूछा, 'तू रोती क्यों है ?' विरहिणीने कहा, 'मैं रोती नहीं, यह तो ब्रह्मानन्दका जल आँखोंसे गिरने लगता है ।' सखीने पूछा, 'तू लम्बी-लम्बी साँसें क्यों लेती है ?' विरहिणीने कहा, 'मैं इन्द्रियोंको वशमें करनेके लिए प्राणायामका अभ्यास करती हूँ ।' सखीने पूछा, 'तू बार-बार मूर्छित क्यों हो जाती है ?' विरहिणीने कहा, 'सो तो मैं समाधिमें लीन हो जाती हूँ ।' "कृपालु" कहते हैं कि अरी विरहिणी ! तू इतनी बातें बनाकर श्यामसुन्दरके प्रेमको क्यों छिपा रही है ? हम स्वयं ही प्रेममार्गमें जाना पसन्द नहीं करतीं ।

(४)

अरे मन ! मोहन सों बचि रहियो ।
हित की बात कहहुँ, भूलेहु जनि, गैल प्रीति की गहियो ।
छलिया के छल-छन्द-फन्द परि, जनि दारुण दुख लहियो ।
निज-बल्लभ इन्द्रिन-बिषयन सँग, बिरहानल जनि दहियो ।
लोक, वेद-मर्याद मेटि जनि, प्रेमसिंधु मधि बहियो ।
हम 'कृपालु' हैं जगके याते, हमरी लाज निबहियो ॥

भावार्थ—(एक विरहिणीको व्याकुल देखकर कवि अपने मनसे कहता है ।)

अरे मन ! श्यामसुन्दर से तुम बचे ही रहना । मैं तुम्हारी भलाईकी बात कर रहा हूँ । भूलकर भी प्रेमके मार्गमें मत जाना, अन्यथा उस छलियाके कपटजालमें फंसकर अत्यधिक दुःखका अनुभव करोगे । अरे मन ! यदि हमारी बात नहीं मानोगे तो अपनी स्वामिनी इन्द्रियोंके विषयों के साथ ही स्वयं भी विरहानल में जला करोगे, तथा लोक एवं वेदकी मर्यादाओंको नष्ट करके प्रेम के अगाध समुद्रमें बह जाओगे । "कृपालु" अपने मन को समझाते

हैं कि देखो मन ! हम संसारी हैं इसलिए हमारी लाज बचाना। अर्थात् यदि तुम श्यामसुन्दरके चंगुल में फँस जाओगे तो हम संसारी न रह सकेंगे।

(यह पद विनोदात्मक है।)

(५)

अहो हरि ! अब न बिरह सहि जात।
बिरहानल दृग-जलहुँ जलायो, लायो मीचहुँ घात।
आश-निराश ग्रंथि निरुवारत, इक पल कलप जनात।
इन मन-इन्द्रिन ते हम हारी, कोउ न सुनत इक बात।
यद्यपि समुझत प्रीति-रीति भल, तदपि न धीर बँधात।
जो भावे सो करिय, हमारो, एक तुमहिं सों नात।
कत 'कृपालु' अकुलात, रात ते, होत सदा परभात।

भावार्थ—एक विरहिणी कहती है कि हे प्यारे श्यामसुन्दर ! अब तुम्हारा वियोग किसी प्रकार सहा नहीं जाता। विरहकी आगने आँखोंके आँसुओंको भी जला डाला है, एवं मृत्यु भी विश्वासघात करना चाहती है, अर्थात् अब प्राणोंपर आ बीती है। 'प्रियतम अभी आते होंगे,' 'प्रियतम अब नहीं आयेंगे,' इसी प्रकारकी आशा-निराशा की उलझनों को सुलझाते हुए मुझे एक-एक क्षण कल्पके समान प्रतीत होता है। हम मन और इन्द्रियों से हार गयी हैं। कोई हमारी बात नहीं सुनता यद्यपि मैं प्रीतिकी रीतिको भली-भाँति समझती हूँ फिर भी मेरा हृदय किंचित् भी धैर्य नहीं धारण कर पाता। हे श्यामसुन्दर ! तुम्हें जैसा अच्छा लगे वैसा ही करो, किन्तु यह निश्चित समझना कि मेरा एक मात्र नाता तुम्हीं से है और अनन्तकाल तक रहेगा। उस विरहिणीकी दशा को देखकर समझाते हुए "कृपालु" कहते हैं कि अरी सखी ! तू इतनी अधिक क्यों व्याकुल हो रही है, रात्रिके पश्चात् सदा ही प्रभात हुआ करता है अर्थात् इस विरह अवस्थाके बाद मधुर-मिलन का ही आनन्द प्राप्त होगा।

(६)

ऊधो ! कहियो हरि समुझाय ।
हम सब उनहिं न कबहुँ बिसरिहैं, वे चाहे बिसराय ।
वे मेरे प्रियतम, प्राणेश्वर, हम अबला असहाय ।
हम सब भईं सनातन चेरी, वे चाहे ठुकराय ।
चितवत पंथ रैन-दिन दैहौं, अगनित जनम बिताय ।
पै 'कृपालु' को भय 'पिय जग सों, तव परतीत न जाय' ॥

भावार्थ—(ब्रज-गोपियाँ उद्धवसे अपने प्यारे श्यामसुन्दरके लिए संदेश भेजती हैं ।)

ऐ ऊधो ! प्रियतमसे यह समझाकर कहना कि हम सब तो उन्हें कभी नहीं भूल सकतीं, वे चाहे हमें भुला ही क्यों न दें । हे उद्धव । वे मेरे प्रियतम एवं प्राणोंके स्वामी हैं, तथा हम सब ब्रज-गोपियाँ केवल उन्हींके बल एवं सहारेपर हैं । हम सब तो अनन्तकालके लिए उनकी दासी बन चुकी हैं, वे चाहे कितना ही ठुकरायें । यह हम सब ब्रज-गोपियोंका दृढ़ निश्चय है कि दिन-रात प्रियतम की प्रतीक्षा करते हुए हम सब उनकी मिलन-माधुरीकी आशामें अनन्त जन्म बिता देंगी । "कृपालु" कहते हैं कि हे प्रियतम ! ब्रज-गोपियोंको केवल यही भय है कि कहीं तुम्हारे न आने से संसार का तुमसे विश्वास न उठ जाय, अर्थात् अल्पज्ञ लोग तुम्हारी अकारण-करुणाकी अन्तरंगता को न समझते हुए तुमको निष्ठुर न कहने लगें ।

(७)

ऊधो ! तुम अज्ञान निधान ।
हम श्रुति-ऋचन ज्ञान समुझावत, जिनते प्रगटत ज्ञान ।
ज्ञाता ज्ञेय, ज्ञान काको कह ? काको मानत आन ?

तुम ज्ञानी, हम सब अज्ञानी, यह कैसे रह भान।
ब्रजरज लता-पता बनि याचत, सनकादिक तजि ध्यान।
ज्ञान 'कृपालु' उनहिं समुझावहु, जिनकी कुब्जा प्रान ॥

भावार्थ—(वेदकी ऋचाओंकी अवतार, श्रीकृष्ण-विरहिणी ब्रज-गोपिकाएँ उद्धवसे कहती हैं।)

हे उद्धव ! तुम अत्यन्त ही अज्ञानी हो। हम सब वेदकी ऋचाओंकी अवतार स्वरूपा गोपियोंको तुम ज्ञान समझाने आये हो। तुम इतना भी नहीं जानते कि ज्ञान का प्रादुर्भाव हमारे द्वारा ही होता है। यह तो बताओ कि ज्ञाता (जाननेवाला), ज्ञेय (जानने योग्य) एवं ज्ञान किसको कहते हैं। तात्पर्य यह है कि ब्रह्मको जाननेवाला भी ब्रह्म है, एवं जिसको जानना है वह भी ब्रह्म है, एवं जिस ज्ञान से द्वारा जानना है वह भी ब्रह्म है। हे उद्धव ! तुम सर्वत्र ब्रह्मको देखनेवाले हो, फिर तुमको यह कैसे भान रहा कि हम सब अज्ञानी हैं। तुम नहीं जानते कि बड़े-बड़े ज्ञानियोंके दादा नित्य-जीवनमुक्त परमहंस सनकादिक भी लता-पता बनकर एवं अपनी निर्विकल्प समाधिको भुलाकर ब्रजकी धूलि चाहते हैं। "कृपालु" कहते हैं कि हे उद्धवजी ! यह ज्ञान तो उन्हींके लिए समझाना परम आवश्यक है जिनकी प्राणाधिक-प्रिय कुब्जा है।

(८)

ऊधो ! धनि तव ज्ञान प्रचार।
हम पूछति तुम सों बिनु बानी, को जग बोलनहार ?
बिनु पग गवनि, श्रवन बिनु श्रवनन, कतहुँ लख्यो संसार ?
बिनु कर कर्म, जीभ बिनु वक्ता, निज बुधि करिय बिचार।
श्रवन मनन कत तिमि बिनु मन बुधि, सो ढिग नन्दकुमार।
हँसब ठठाइ फुलाय गाल सँग, यह करि सक करतार।
गूदरि-ज्ञान 'कृपालु' जानि यह, खोलिय हरि दरबार ॥

भावार्थ—(श्रीकृष्ण-वियोगिनी ब्रज-गोपिकाएँ उद्धव से कहती हैं।)

हे उद्धव ! हम तुमसे पूछती हैं कि बिना वाणीके संसारमें कौन बोल सकता है ? बिना पैर के चलना, बिना कान के सुनना भला कैसे सम्भव है ? तथा बिना हाथके कर्म करना एवं बिना जीभके बोलना कैसे सम्भव है ? इस बातको तुम्हीं अपनी बुद्धिसे सोचो । ठीक इसी प्रकार जिसका मन एवं बुद्धि श्यामसुन्दर के पास है, वह तुम्हारे ब्रह्मज्ञानका श्रवण, मनन किस प्रकार कर सकता है । हे उद्धव ! खिलखिलाकर हँसना एवं गाल भी फुलाना यह दोनों ही विरोधी कार्य है, यह एक साथ वे ही कर सकते हैं । अतएव "कृपालु" कहते हैं कि यह ज्ञानगुदड़ी जाकर उन्हींके दरबारमें खोलो, ब्रजमें इसका ग्राहक कोई भी नहीं है ।

(९)

ऊधो ! धन्य तुम्हारो ज्ञान ।
'सब कुछ ब्रह्म' कहत ज्ञानी-जन, तुम कह हमहिं 'अयान' ।
पुनि अधिकारिहु भेद न जानत, करन चहत कल्यान ।
जिनको मन लै गयो श्याम, सो, कैसे धरिहैं ध्यान ।
यह छल-ज्ञान उनहिं समुझाइय, जो छल-कपट निधान ।
ह्याँ 'कृपालु' नहिं चलिय ठगोरी, खोलिय अनत दुकान ।।

भावार्थ—श्रीकृष्णवियोगिनी ब्रज-गोपिकाएँ ऊद्धवसे कहती हैं कि हे उद्धव ! तुम्हारे ज्ञानको धन्य है, जो ऐसी अज्ञानता की बातें करते हो । ज्ञानीजन तो, 'ब्रह्मके अतिरिक्त कुछ है नहीं' ऐसा कहते हैं, किन्तु तुम ऐसे विचित्र ज्ञानी हो जो हम सबको अज्ञानी कहते हो । फिर तुमको कदाचित् यह भी ज्ञान नहीं है कि साधन-चतुष्टय-सम्पन्न जीव ही ज्ञानमार्गका अधिकारी होता है । फिर भला तुम किसीका कल्याण करने किस प्रकार निकले हो । अरे उद्धव ! जिसके मनको श्यामसुन्दर अपने साथ ही ले गये हैं, वह भला किस

मनसे चिंतन आदि करे। यह कपटमय ज्ञान उन्हीं श्यामसुन्दरको समझाना जो छल एवं कपटके भण्डार हैं। "कृपालु" कहते हैं कि हे उद्धवजी ! यहाँ तुम्हारा यह ठगपना नहीं चल सकता, यह प्रेमनगर है, अतएव अब कृपा करके कहीं अन्यत्र इस दुकानको खोलिए।

(१०)

ऊधो ! धन्य हमारो भाग।
प्रियतम प्राण-सखा प्रिय दर्शन, हर्ष बुझी बिरहाग।
यह मन नहिं अब हाथ हमारे, रह्यौ प्रेम-रस पाग।
रोम रोम मोहन मोहिनि-छबि, उरझी अति अनुराग।
कौनेहुँ जनम अवशि पिय मिलिहैं, यह आशा उर लाग।
ज्ञान 'कृपालु' परमहंसन कहँ, किमि जानें हम काग॥

भावार्थ—(श्रीकृष्णविरहिणी ब्रज-गोपियाँ उद्धवको धन्यवाद देती हुई कहती हैं।)

हे उद्धव ! हम ब्रज-गोपियाँ अत्यन्त ही भाग्यशालिनी हैं, एवं हम सब परम धन्य हैं। प्राणाधिक-प्रिय श्यामसुन्दरके प्राणसखाके मधुर-दर्शनोंके आनन्द से हम लोगोंकी विरहाग्नि शान्त हो गयी। हे उद्धव ! प्रेमरसमें सराबोर मेरा मन अब मेरे ही हाथमें नहीं है। क्या करूँ ? मेरे प्रत्येक रोम-रोममें प्रियतमकी सलोनी सूरत दृढ़ अनुरागपूर्वक उलझ चुकी है। एवं हृदयमें पूर्ण विश्वासयुक्त आशा है कि किसी-न-किसी जन्ममें प्रियतम अवश्य मिलेंगे। "कृपालु" व्यंगभरे शब्दोंमें कहते हैं कि हे उद्धव ! ज्ञान तो परमहंस-रूपी बड़े-बड़े हंसोंके लिए हैं, हम सब प्रेमके बंधनमें बँधे हुए कौवे इसे क्या समझ सकते हैं ?

(११)

ऊधो ! भली करी तुम आये।
यह ब्रज इक जादू की नगरी, ज्ञानिहुँ ज्ञान गँवाये।

श्रीयुत करन परमहंसन कहँ, यह ब्रज हरि प्रगटाये।
नीरस ज्ञान सरस करिबे को, माधव तोंहि पठाये।
योगीराज शम्भु सनकादिक, जे आये बौराये।
बचन 'कृपालु' गूढ़ सुनि ऊधो, बूड़े थाह न पाये।

भावार्थ—(श्रीकृष्ण-वियोगिनी नित्यसिद्धा-गोपियाँ उद्धवसे कहती हैं।)

हे उद्धव ! तुमने बड़ा ही अच्छा किया जो यहाँ आ गये। यह ब्रज जादूकी एक विचित्र नगरी है, जिसमें बड़े-बड़े ज्ञानियोंका भी ज्ञान समाप्त हो जाता है। वास्तवमें तो इस नगरीका जादू ज्ञानियोंपर ही विशेषरूपसे प्रभाव डालता है। आत्माराम, पूर्णकाम, योगीन्द्र, अमलात्मा परमहँसको ही श्रीयुत करने के लिए, अर्थात् श्रीपरमहँस बनानेके लिए पूर्णतम-पुरुषोत्तम-ब्रह्म-श्रीकृष्णने मर्त्यलोकमें यह अपना गोलोक-रूपी ब्रज प्रकट किया है। हे उद्धव ! प्यारे श्यामसुन्दरने तुम्हारे प्रेमरस-शून्य नीरस ज्ञानको ही सरस करनेके लिए तुम्हें हम लोगोंके पास भेजा है। ज्ञानियोंके सम्राट् योगीराज भगवान् शंकर एवं नित्य-जीवन-मुक्त परमहंस सनकादिक जो भीं इस ब्रजमें आये, सब-के-सब प्यारे श्यामसुन्दरके प्रेम में दीवाने हो गये। "कृपालु" कहते हैं कि गोपियोंके इन रहस्य भरे मार्मिक वचनोंको सुनकर उद्धव प्रेमरसामृत सिन्धुमें इतने डूब गये कि फिर ऊपर न आ सके। अर्थात् ब्रजदेवियोंकी कृपासे उद्धवको वह अलौकिक प्रेम प्राप्त हो गया, एवं वे उसमें निमग्न होकर कृतार्थ हो गये।

(१२)

ऊधो ! हम जानति सब बात।
वे मेरे, मैं उनकी सनातन, तुम नहिं समुझि सकात।
जल अरु बीचि भिन्न सोइ भाखत, जाकी मति भरमात।
बिरह अगिनि बिरहिनि-मन कंचन, दुति दूनी दमकात।

तुम भोरे ज्ञानी अति कोरे, बीचहिं मारे जात।
अटपट रीति 'कृपालु' प्रीति की, जहँ बिधि बुधि बौरात॥

भावार्थ—(श्रीकृष्णकी वियोगिनी व्रज-गोपिकाएँ उद्धवसे कहती हैं।)

हे उद्धव ! हम सब श्यामसुन्दर के अंतरंग रहस्योंको भली-भांति जानती हैं। वे सदासे हमारे हैं और सदा रहेंगे, एवं इसी प्रकार हम भी सनातनसे उनकी ही हैं, किन्तु यह रहस्य तुम नहीं समझ सकते। जल एवं तरंगकी भिन्नता वास्तविक रूपसे उसीको भासित होती है जिसकी बुद्धि में किसी प्रकारका भ्रम आ जाता है। हमारी-उनकी भी बिल्कुल इसी प्रकार एकता है। यदि तुम यह कहो कि तुम लोगोंको वियोगका दुःख है तो यह भी तुम्हारा भ्रम ही है। विरह रूपी अग्निमें विरहिणीका मनरूपी स्वर्ण और भी दुगुनी चमकको प्राप्त करता है जिसे विरहिणी ही समझती है। तुम अत्यन्त ही भोले-भाले एवं शुष्क वेदान्ती, व्यर्थ ही हमारे-उनके बीचमें पड़कर चकरा रहे हो। "कृपालु" कहते हैं कि अरे उद्धव ! तुम नहीं समझते कि प्रीतिकी रीति अत्यन्त ही विचित्र होती है। जिसका बहिरंग स्वरूप देखकर ब्रह्माकी बुद्धि भी अपनी सुधि-बुधि खो बैठती है। (सख्य-लीलामें श्रीकृष्णको ग्वालोंसे छीन-छीन-कर रोटी खाते देखकर ब्रह्माका मोह।)

(१३)

ऊधो ! हरि सों कहियो जाय।
मग जोहत जिमि तृषित चातकिन, घन-श्यामहिं दृग लाय।
तिमि प्रेमामृत-तृषित सखिन नित, घनश्यामहिं अकुलाय।
पै जो उनहिं मधुपुरिहिं भावै, जनि पावें दुख आय।
हम सब उनहिं सुखी देखन चह, तिन सुख सुखी सदाय।
इमि 'कृपालु' कहि सखिन मौन भई, उधो दृग बरसाय॥

भावार्थ—श्रीकृष्ण-वियोगिनी नित्यसिद्ध-गोपियाँ संदेशवाहक उद्धवसे

कहती है कि हे उद्धव ! तुम हमारे प्यारे श्यामसुन्दरसे जाकर कहना कि जिस प्रकार जल की प्यासी चातकियाँ स्वातीके काले बादलोंकी टकटकी लगाये प्रतीक्षा करती रहती हैं, उसी प्रकार प्रेमामृतकी प्यासी व्रजगोपियाँ भी प्यारे श्यामसुन्दरकी प्रतीक्षा में अत्यन्त ही व्याकुल रहती हैं । फिर भी उनसे कह देना कि यदि उन्हें मथुरा ही अच्छी लगती हैं तथा उन्हें यहाँ आनेमें कष्ट होता है, तो हम हृदयसे कहती हैं कि वे यहाँ आकर दुःखी न हों । हम सब व्रजगोपियां उन्हें सदा ही सुखी देखना चाहती हैं । उन्हींके सुखमें हम अपना सुख समझती हैं । "कृपालु" कहते हैं कि इस प्रकार हृदयको विदीर्ण कर देनेवाली बातोंको कहकर गोपियाँ चुप हो गईं, एवं उद्धव उनकी इस निष्कामताको देखकर प्रेम-विभोर हो गये, तथा आँखोंसे आँसू बहाने लगे ।

(१४)

कान्ह की, बात रही अब कान ।
वे दिन जब नित नव-रस बरसत, ह्वै गये सपन समान ।
वे बातें जनु भईं कहानी, 'सदा ऋणी निज जान' ।
वे सब दिव्य विलास-रास भये, इन्द्रजाल उनमान ।
वे यमुना-तट बंशीबट अरु, बृन्दाबन भये आन ।
वे 'कृपालु' गो, गोप, ग्वालिनी, बिनु प्रियतम पियरान ॥

भावार्थ—श्रीकृष्णवियोगिनी व्रजगोपियाँ अपने-आप कहती हैं कि श्यामसुन्दरकी वे रसमयी बातें अब कानमें ही रह गईं, अर्थात् अब वे रस अत्यन्त दुर्लभ हो गये । वे दिन, जबकि नित्य ही प्रियतम श्यामसुन्दरके द्वारा नये-नये रस बरसाये जाते थे, अब स्वप्नके समान हो गये । प्रियतमकी वे बातें कि ऐ गोपियों ! मैं तुम लोगों से कभी भी उऋण नहीं हो सकता । मैं सदा ही तुम लोगोंका ऋणी रहूँगा', कहनेमात्रकी हो गयीं । वे प्रियतमके द्वारा प्राप्त दिव्य रास-विलास भी इन्द्रजालके समान लुप्त हो गया । वे यमुनातट, वंशीवट एवं

वृन्दावन भी मानों दूसरे-से प्रतीत होते हैं। "कृपालु" कहते हैं कि वे गायें एवं गोप तथा ब्रज-गोपिकाएँ प्रियतम श्यामसुन्दरके विना पीली पड़ गई हैं।

(१५)

कुँवरि ! तू कितै गई डरपाय ?
रहि-रहि कम्प, पुलक तनु सिगरे, स्वेद-बिन्दु दरसाय।
सोवत कबहुँक उचकि चौंकि उठि, भाजति इत-उत धाय।
कबहुँक हँसत ठठाइ, कबहुँ कहि, हाय ! दृगन झरि लाय।
कबहुँक कछु बतराति आपु ही, कबहुँक मौन लखाय।
कबहुँक दृग आनँद जल बरसत, कबहुँक कुपित जनाय।
कबहुँक ताण्डव नृत्य कबहुँ पुनि, पुनि सलज्ज बनि जाय।
कबहुँक रहति चेतना, कबहुँक, तोहि मूरछा आय।
ललिता यौं 'कृपालु' उठि बोली, 'लागी बुरी बलाय'॥

भावार्थ—(किशोरीजीके प्रेमके चिह्नोंको देखकर एक सखी यह समझकर कि किशोरीजी कहीं डर गई हैं, उनसे पूछती है।)

हे किशोरीजी ! तुम कहाँ डर गयीं ? रह-रहकर तुम्हारे सारे शरीरमें रोमांच हो उठता है, शरीर काँपने लगता है एवं अत्यधिक पसीना निकलता है। तुम कभी सोते-सोते चौंककर अचानक बैठ जाती हो, एवं पुनः उठकर इधरउधर भागने लगती हो। कभी खिलखिलाकर हँसती हो, कभी हाय ! हाय !! कहकर आँखोंसे आँसू बरसाती हो। कभी अपने-आप ही कुछ बात सी करती हो, एवं कभी अत्यन्त ही मौन साध लेती हो। कभी तो तुम्हारी आँखोंसे आनन्दके आँसू बरसने लगते हैं, एवं कभी क्रुद्ध-सी प्रतीत होती हो। कभी तो ताण्डव नृत्य सरीखा नाचती हो एवं कभी अत्यन्त ही लज्जाशील बन जाती हो। तुम्हें कभी तो संसारका भान रहता है और कभी मूर्च्छा आ जाती

है। "कृपालु" कहते हैं कि इतनेमें ही ललिताने सांकेतिक भाषामें कहा कि इनके कोई बुरी बलाय लग गई है। ललिताका वास्तविक अभिप्राय यह है कि किसीसे लगन लगी हुई अत्यन्त ही बुरी बलाय होती है, अर्थात् किशोरीजीकी प्यारे श्यामसुन्दरसे लगन लग गई है। उन्हें न तो भूत लगा है और न कहीं डरी ही हैं।

(१६)

जियत न मरत न जिय तन भात।
लखि चित धन-घनश्यामहिं चितघन,
घनश्यामहिं अकुलात।
उनहिं लखात कलप पल कल मोहिं,
कल पल कलप लखात।
उनहिं भात मुख-नलिन, अलिन, मोहिं,
अलिन, नलिन-मुख खात।
लखत पंखके किनके, किन के,
किनके नहिं बिलखात।
चितवत उत इतरात 'कृपालुहिं',
चितवत उत इत रात॥

भावार्थ—एक विरहिणी कहती है कि मेरा प्राण शरीरमें इस प्रकार रहता है कि न तो मैं उसे जीता हुआ ही कह सकती हूँ, और न मरा हुआ ही। घने, काले बादलोंको देखकर दिव्य-चिद्घन-स्वरूप श्यामसुन्दरके लिए मेरा चित्त और भी अधिक व्याकुल हो उठता है। प्रियतमको तो एक कल्प भी पलके समान मालूम पड़ता है, इसीलिये तो वे मथुरामें चैन की वंशी बजा रहे हैं। किन्तु मैं उनके कथनानुसार (मैं कल आऊँगा) उस कलके एक-एक पलको

कल्पके समान बिता रही हूँ। उन्हें तो मथुराकी चन्द्रमुखी सखी अत्यन्त ही मन भा रही हैं, पर मुझे कमलके ऊपर बैठे हुए भौंरे उनका स्मरण कराकर अत्यन्त ही दुःखी कर रहे हैं। मैं जहाँ भी कहीं मोरपङ्खके पड़े हुए टुकड़ोंको देखती हूँ तो प्रत्येकको देखते ही मोरपङ्खवाले श्यामसुन्दरके मधुर-मिलनके लिए अत्यन्त ही अधीर होकर तड़पने लगती हूँ। "कृपालु" कहते हैं कि श्यामसुन्दर तो मेरी ओर देखने में भी इतराते हैं, किन्तु मैं तो यहाँ रातभर उन्हींकी वाट देखती हुई इधर-उधर पागलों-सी घूमा करती हूँ।

(१७)

दृग-पट मुकुट लटक पै अटिक गयो।
जिन विषयन सों संग सदा सो,
तिन सों झट मुख मोरि मटकि गयो।
लोक-लाज बस बरबस हटकत,
भाजि सलोनी लटनि लटकि गयो।
पुनि कैसेहुँ हठ करि रोकत द्रुत,
भृकुटि-बंक बिनु शंक सटकि गयो।
पुनि ज्यौं बरज्यौं दृग दृग मिलि यौं,
लगि टकटकि एकटक जनु टकि गयो।
लखि 'कृपालु' दृग चारि हारि अब,
निज मन-बुधि पिय पगनि पटकि गयो॥

भावार्थ—(एक सखीका प्यारे श्यामसुन्दरसे मधुर-मिलन।)

मेरी आँखें श्यामसुन्दरके मोरमुकुटकी लटकपर अटक गई। जिन आँखों का अनादिकालसे जिन मायिक विषयोंका संग चला आ रहा था, उन आँखोंने अब उन समस्त विषयोंसे सदाके लिए मुख मोड़ लिया है। यद्यपि मैंने

सासारिक लज्जाके कारण हठात् आँखोंको मुकुटसे हटाया, फिर भी वे आखें वहाँसे हटकर मनोहर घुँघुराली लटोंमें जाकर अटक गयीं। फिर भी किसी प्रकार हठपूर्वक वहाँसे हटाया, किन्तु तत्क्षण ही वह भागकर नि:शंक टेड़ी भौंहोंमें आसक्त हो गईं। इसके पश्चात् फिर मैंने एक बार हटानेका प्रयत्न किया, एवं जैसे ही भौंहोंसे हटाया वैसे ही हमारी आँखें प्रियतमकी आँखोंसे इस प्रकार मिल गई, तथा टकटकी लगाकर इस प्रकार एकटक देखने लगीं, जैसे कि मानों चारों आँखोंको किसीने सी दिया हो। ''कृपालु'' कहते हैं कि जब प्रेमिकाने देखा कि अब किसी भी प्रकार आँखों-से-आँखें नहीं निकल सकतीं तब हारकर एवं खीझकर अपने मन एवं बुद्धिको भी प्रियतमके चरणोंपर पटक दिया। अर्थात् अपना सर्वस्व देकर श्यामसुन्दरकी सनातन प्रेयसी बन गई।

(१८)

धन्य चोर सिरमोर, मोर प्रिय,
पंख मोर प्रिय, शशिकुल-कारो।
कारो तम, कारो पखवारो,
कारो घन, कारो तनु, वारो।
जाही छिन छलिया, छिति आयो,
निज कारी-माया कर धारो।
ताते तजि बन्दीगृह, कारी,
कालिदिहुँ ते पार सिधारो।
कर करतूत धूत-मति यशुमति,
बनि सपूत जनु लेत सहारो।
नन्द-सदन निधि रतन सुनत पै,

चोरत, निज स्वभाव ते हारो।
लँगर नवनि, दधि, अम्बर हरि अब,
मो हरि मो हरि मोह रि प्यारो।
हा! मनमोहन के मन मोह न,
अब मन मोहन काह बिचारो।
जे बरजोर चोरचूड़ामणि,
दृश्य पदारथ चोरनहारो।
पै यह अदृश-अमोघ-ओघ-अघ,
नामहिं लेत भसम करि डारो।
चाहत भसम करन मो बिरहिनि,
इहै हेरि बिरहानल जारो।
यह 'कृपालु' को अति भय लागत,
जरि न जाय हिय-रूप तिहारो॥

भावार्थ—एक विरहिणी (व्यंगपूर्वक) कहती हैं कि मोरपङ्ख धारण किये हुए चन्द्रवंशीय कलंकस्वरूप एवं चोरों के सरदार मेरे प्रियतम श्यामसुन्दरको धन्य है। जिस समय उनका अवतार हुआ उस समय अन्धकार भी काला, पक्ष भी काला (कृष्ण पक्षकी जन्माष्टमी थी), एवं बादल भी काले थे तथा उनके शरीरका रंग भी काला हुआ और जैंसे ही उस छलियाने पृथ्वीपर पैंर रखे उसने अपनी कपटमयी काली योगमायाका भी अवलम्बन लिया। उसी योगमायाके द्वारा जेल छोड़कर (जेलके ताले सब खुल गये, तथा पहरेदार स्वयं सो गये) काली यमुनाको भी पार किया। (जेलका स्वरूप भी काला एवं यमुनाका स्वरूप भी काला)। इसके पश्चात् उस छलियाने उसी योगमायासे यशोदाको मोहित करके, उनका पुत्र न होते हुए

भी,पुत्र बनकर सहारा लिया। यद्यपि सुना जाता है कि नन्दके भवनमें रत्नोंका भंडार भरा पड़ा था, किन्तु फिर भी अपने कपट स्वभावसे हारा हुआ वह चोरी करने लगा (चोरीका भी काला स्वरूप)। उस छलियाने पहले तो दही-मक्खनकी चोरीकी फिर चीरहरण किया और अब उसने मेरे समस्त सांसारिक स्वजनोंकी ममताको भी चुरा लिया। तत्पश्चात् मेरे मनको चुराया। इतने पर भी उस मनमोहनको हृदयमें शान्ति नहीं मिली। संसारके बड़े-से-बड़े चोरोंके सरदार भी जो स्थूल पदार्थ संसारमें दिखाई पड़ते हैं उन्हींको चुरानेवाले होते हैं, पर इस छलियाने तो मेरे अनन्तजन्मोंके अनंतानंत समस्त अदृश्य पापोंको भी चुरा लिया, एवं भस्म कर डाला। यह सब करके भी जब उसे शान्ति न मिली तब मुझ विरहिणीको को भी जला डालनेकी इच्छासे मेरे हृदय में विरहकी आग लगा दी। "कृपालु" कहते हैं कि अपने-आपके जल जानेकी तो कोई भी चिन्ता नहीं है, पर कहीं इस झगड़ेबाजी में मेरे ही हृदयमें रहनेवाला वह मेरा प्यारा श्यामसुन्दर न जल जाय। अर्थात् हृदयमें ही विरहकी आग जल रही है, एवं वहीं प्रियतम भी निवास करते हैं, इसलिए प्रेमिकाको उपरोक्त भय है।

(१९)

निठुर मोंहि दै गयो विरह अपार।
लै सरबस, बरबस करि बस हरि, बस मधुपुरी मझार।
वयस-किशोरी, रति-रस-बोरी, बिकल सकल ब्रजनार।
धन्य रीत बिपरीत प्रीत की, धन्य मीत उपहार।
कुब्जहिं भोगिनि हमहिं बियोगिनि, योगिनि योग विचार।
लखि 'कृपालु' व्यवहार प्यार को, बार बार बलिहार॥

भावार्थ—एक विरहिणी कहती है कि निष्ठुर श्यामसुन्दर मुझे असह्य विरह-दुःख दे गया हैं। मेरा सर्वस्व लेकर, हठात् अपने वशमें करके स्वयं

जाकर मथुरामें बस गया है। यहाँ किशोर अवस्थावाली प्रेमरसमें सराबोर समस्त ब्रजगोपियाँ अत्यन्त ही व्याकुल हैं। प्रेमकी ऐसी उल्टी रीति एवं प्रियतमकी ऐसी ऐंठको बार-बार धन्यवाद। कुब्जा को तो भोग एवं मुझ विरहिणी के लिए योग, क्या ही सुन्दर विचार किया है? "कृपालु" कहते हैं कि प्रेमके ऐसे कपटमय व्यवहारकी मैं बार-बार बलैया लेता हूँ।

(२०)

पपिहरा पापी मोहिं सताय।
हौं तो आपुहिं जरी विरह-दव, तू जनि मोहिं जराय।
कल न परत मोहिं कैसेहुँ, इक पल, कलप समान बिताय।
कहा बैर मोते अध-रातिहिं, पी पी शब्द सुनाय।
तू तो जानत सहत बिरह-दुख, पुनि क्यौं मोहिं तड़पाय?
दै 'कृपालु' अँगुरी रहु कानन, खल सन कछु न बसाय।

भावार्थ—एक विरहिणी पपीहेकी बोली सुनकर उसे कोसती हुई कहती है कि अरे पापी पपीहरा! मैं तो अपने-आप ही विरहकी आगमें जल चुकी हूँ, फिर तू मुझे जलाकर और भी अधिक कष्ट क्यों देता है? मुझे तो अपने-आप ही प्रियतमके बिना एक क्षण कल्पके समान बीत रहा है। अरे पपिहरा। मुझसे तेरा क्या बैर है? जो अर्धरात्रिमें ही पी-पी बोल सुनाता हैं। तू भी तो स्वातीके बादलोंके दुःसह-विरहके दुःखका अनुभव करता है, फिर उस दुःखको जानते हुए भी मुझे दुःखी करनेसे तुझे क्या मिलता है? "कृपालु" कहते हैं कि अरी विरहिणी! तू अपने दोनों कानोंमें अँगुली दे ले। संसारमें दुष्टोंके आगे किसीका कुछ भी बस नहीं चलता।

(२१)

पिय बिनु, कैसेहुँ जिय नहिं चैन।
दरश दिवाने अति मनमाने, ठाने हठ दोउ नैन।

दृग बरसावत दिवस बितावत, तारे गिन गिन रैन ।
हिय सौं निकसति हूक छिनहिंछिन, मुख सों पिउ पिउ बैन ।
कहँ लौं प्रीति दुराइय आली, हाथन चन्द दुरै न ।
हौं 'कृपालु' तोंहि प्रथमहिं बरज्यौं, बचियो नैनन-सैन ।।

भावार्थ—एक विरहिणी अपनी अंतरंग सखी से कहती है कि हाय ! हाय !! मुझे तो प्रियतम श्यामसुन्दरके बिना एक क्षणको भी चैन नहीं हैं। मेरी दोनों आँखें प्रियतमके देखनेको अत्यन्त हठीली बन गई हैं, एवं उन्मत्त हो रही हैं। सारे दिन आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लगी रहती है, एवं सारी रात तारोंको गिन-गिनकर बिताती हूँ। हृदयसे बार-बार हूक उठा करती है, एवं मुखसे आहोंसे युक्त प्रियतम ! प्रियतम !! की ध्वनि निकला करती है। अरी सखी ! प्रेमको कहाँतक छुपाऊँ, भला चन्द्रमाको भी कोई अपने हाथोंसे छुपो सकता है। "कृपालु" कहते हैं कि उस अन्तरङ्ग सखीने कहा कि मैंने तो तुम्हें पहले ही रोका था कि श्यामसुन्दरके कटाक्षोंसे बची रहना, पर तुमने नहीं माना। अब तो यह सब होगा ही, तथा तुम्हें भोगना ही पड़ेगा।

(२२)

पिय बिनु, मो कहँ कछु न सुहाय ।
नैन निगोरे, नातहिं जोरे, इन्द्रिन लिये मिलाय ।
शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधहिं, इन्द्रिन पिय मनभाय ।
लखि इन्द्रिन रस-सागर, नागर, मनहूँ मिलि गयो जाय ।
इन्द्रिन, मन बौरात देखि, बुधि, आपु गई बौराय ।
प्रान पयान करन चह जब ही, बरजत सब मिलि धाय ।
इक 'कृपालु' को संग दियो बस, हाय ! हाय ! बस हाय ।।

भावार्थ—एक विरहिणी कहती है कि मुझे प्रियतम श्यामसुन्दरके बिना

कुछ भी अच्छा नहीं लगता। इन हठीले नेत्रोंने विना समझे-बूझे ही प्रियतमकी रूपमाधुरीमें फँसकर उनसे अपना मधुर सम्बन्ध स्थापित कर लिया; एवं कान, नासिका, रसना, त्वचा आदि ज्ञानेन्द्रियों, को भी अपने पक्षमें कर लिया है। अब ये पाँचों इन्द्रियाँ, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन समस्त विषयोंको प्रियतममें ही चाहती हैं। समस्त इन्द्रियोंको प्रियतमके ही रसमें निमग्न देखकर मन भी जाकर उन्हीं से मिल गया है। इन्द्रियों एवं मनको इस प्रकार बौराते हुए देखकर बुद्धि भी अपनी सुधि-बुधि खो बैठी अर्थात् वह भी उसी पक्ष में हो गई। अब अकेला प्राण जैसे ही शरीर से निकलना चाहता है वैसे ही इन्द्रिय, मन, बुद्धि सभी आकर उसे बरबस रोक देती हैं, अर्थात् सबकी यह सलाह होती है कि प्रियतमके मिलनेकी आशा रखो। "कृपालु" कहते हैं कि मुझ विरहिणीका संग 'हाय ! हाय !!' से युक्त आहोंने ही दिया।

(२३)

प्राण हित पावस-ग्रीषम धायो।
ग्रीषम वरषा होड़ परी अब, प्रलय-काल चलि आयो।
इत तो अति प्रदीप्त-बिरहानल, सब तन आग लगायो।
उत दोउ नैन-बलाहक जल लै, निशि-दिन ही बरसायो।
प्रथम नाथ ! ज्यौं पिय दवानल, दुखियन प्राण बचायो।
पिउ 'कृपालु' त्यौं पिउ बिरहानल, प्राण कण्ठ चलि आयो॥

भावार्थ—विरहिणी कहती है कि वर्षा एवं ग्रीष्म ऋतुओंके झगड़े में हमारा प्राण अब नहीं बच सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रीष्म एवं वर्षा ऋतु में परस्पर होड़ लग गई है, ऐसी ही अवस्था को वेद-पुराण प्रलयकाल कहते है। एक ओर तो अत्यन्त प्रदीप्त विरहकी आग मेरे समस्त शरीरको जला रही है, दूसरी ओर नेत्ररूपी बादल जल लेकर निरन्तर ही वर्षा कर रहे हैं। हे नाथ ! जिस प्रकार आपने द्वापरमें ब्रज-वासियोंके प्राण बचाने-

के लिए दावानलका पान किया था, उसी प्रकार "कृपालु" कहते हैं कि मेरे विरहानलका भी पान कर लीजिए, अन्यथा मेरे प्राण अब निकलना ही चाहते हैं। विरहानलके समाप्त होने पर वर्षा स्वयं ही समाप्त हो जायगी।

(२४)

बताओ सखि ! कैसे धरूँ मैं धीर ?
जो रातें पल सम मधु बातें, करत बीत गईं वीर ।
ते अब पल पल कटत न मानों, द्रुपदसुता को चीर ।
जिन अँखियन जल नेकहुँ आवत, पिय रह होत अधीर ।
तिन अँखियन सों सदा एकरस, बहत रहत अब नीर ।
जिनते होत पलकहू न्यारे, उठति रही उर पीर ।
सुनति 'कृपालु' कहानी उनकी, 'थे कोउ श्याम शरीर' ॥

भावार्थ—(एक विरहिणी प्रीतम श्यामसुन्दरके वियोगमें अपनी अंतरंग सखीसे कहती है।)

अरी सखी ! तूही बता कि मैं धैर्य किस प्रकारसे धरूँ। अरी सखी ! प्रियतम श्यामसुन्दरके साथ मधुर-मधुर बातें करते हुए जो रातें उस समय एक क्षणके समान व्यतीत हो जाया करती थीं, उन्हीं रात्रियोंका आज एक-एक पल भी काटे नहीं कटता। वह रात द्रोपदीके चीरके समान बढ़ती ही जाती है। मेरी जिन आँखोंमें थोड़ासा भी आँसू देखकर प्रियतक व्याकुल हो जाया करते थे, उन्हीं आँखोंसे अब निरन्तर एक-तार आँसू बहते रहते हैं। जिन श्यामसुन्दरसे एक क्षणके लिए भी पृथक् होनेपर मेरे हृदयमें असह्य पीड़ा हुआ करती थी, "कृपालु" कहते हैं कि आज उन्हीं श्यामसुन्दरकी कहानी-मात्र सुना करती हूँ कि ब्रजमें कभी कोई श्यामसुन्दर थे।

(२५)

बलि जाउँ कपट चटसार की ।
जहँ राजा भये छलिन-शिरोमणि, प्रजा कपट आगार की ।
जहाँ बिकत कुल कानि आनि सब, अति भोरी ब्रजनार की ।
जहाँ लूटि बैराग सिखावत, धनि सो निलज लबार की ।
जहँ तन, मन अरु प्रान हरन करि, अरपत पीर अपार की ।
जहँ 'कृपालु' अस होत ठगोरी, बात बनावत प्यार की ॥

भावार्थ—(व्रज-गोपियाँ उद्धवसे श्रीकृष्णके प्रेमकी विनोदमयी निन्दा करती हुई उनके वियोगमें उद्धवसे कहती हैं ।)

हम उस कपटके महाविद्यालयकी बलिहार जाती हैं, जहाँ कपटियोंके सरदार प्रधान-अध्यापक-रूप सम्राट् हैं, एवं जिनके पढ़ाये हुए शिष्य-रूपी प्रजावर्ग भी कपटके भण्डार-स्वरूप हैं । जिस राज्यमें अत्यन्त ही भोली-भाली ब्रज-गोपियोंकी कुलकी मर्यादाएँ विका करती हैं, एवं जहाँपर तन, मन, प्राण सर्वस्व लूटकर उन्हें योग, वैराग्य सिखाया जाता है । ऐसे निर्लज्ज एवं लबरा सम्राट्को धन्य है, जहाँपर ब्रज-गोपियोंका सर्वस्व हरण करके उन्हें असह्य विरह-वेदना प्रदानकी जाती है । "कृपालु" कहते हैं कि जहाँ खुल्लमखुल्ला ऐसी ठगोरी (लूट) हुआ करती है, वहाँ भी प्रेम की बड़ी-बड़ी बातें बनाई जाती हैं ।

(२६)

बार इक आओ प्राणाधार !
अब तुमको कोउ ग्वाल न कहिहैं, कहिहैं राजकुमार ।
'राधा-कृष्ण' नाम तजि, कहिहैं, 'कुब्जा-कृष्ण' पुकार ।
'वासुदेव' कहि टेरिहैं अब, नहिं, कहिहैं 'नन्दकुमार' ।

ब्रजबासी सब 'महाराज' कहि, करिहिं पुष्प-बौछार।
चढ़ि 'कृपालु' सिहासन आओ, लें हम प्रजा निहार॥

भावार्थ—(ब्रजगोपियाँ प्यारे श्यामसुन्दरके मथुरा चले जानेके बाद विरह-व्याकुल होकर कहती हैं।)

हे प्राणाधार श्यामसुन्दर! एक बार तो आ जाओ। (यदि तुम्हें यह भय हो कि हमसे गोपियाँ पूर्वकी भाँति ही प्रेमपूर्वक घृष्टतापूर्ण व्यवहार करेंगी, जैसा कि सदा करती आई हैं, तो हम सब विश्वास दिलाती हैं कि अब ऐसा न होगा।) अब तुमको हम लोगोंमें से कोई भी 'ग्वाल' नहीं कहेंगी वरन् सब लोग 'राजकुमार' कहा करेंगी, एवं 'राधा-कृष्ण' नामकी पुकार छोड़कर 'कुब्जा-कृष्ण' की पुकार किया करेंगी। हे श्यामसुन्दर अब तुमको कोई भी 'नन्दकुमार' नहीं कहेगी वरन् सब लोग वासुदेव कहा करेंगी। समस्त ब्रजवासी अब तुमको 'महाराज' कहकर पुष्पोंकी वर्षा किया करेंगे। "कृपालु" कहते हैं कि यदि 'प्रियतम' के नाते न आ सको तो 'सम्राट्' के नाते ही सिहासनपर बैठकर एक बार आ जाओ, एवं हम सब प्रजाके अधिकारसे ही तुम्हें जी भरकर देख लेंगे।

(२७)

भ्रमर! तू जनि गुन-गुन गुंजार।
मधुर बैन मन कपट-कतरनी, लोटत चरण मझार।
एक सुमन तज़ि अपर सुमन सों, छिन छिन करत बिहार।
जा हरजाई सौतन गुन-गन, गाइ करिय मनुहार।
जस राजा तस प्रजा मधुपुरी, सबै कपट व्यवहार।
अब न लागिहै राउरि माया, कीजै जतन हजार।
अंध 'कृपालु' बिचारि धरत पग, लगें ठेह इक बार॥

भावार्थ—(किशोरीजी अपने चरणोंपर गुंजारते हुए भौंरेको देखकर दिव्य उन्मादकी अवस्थामें, श्रीकृष्णको संकेत करके भौंरेसे कहती हैं।)

अरे भौंरे! तू गुन-गुनकी मधुर गुंजार मत कर। तू मुखसे तो मधुर बोलता है, किन्तु मनमें कपट-कतरनीको लिए हुए मुझे ठगनेके निमित्त मेरे चरणोंपर लोट रहा है। अरे भौंरे! मैं भली-भाँति जानती हूँ तू एक पुष्पको छोड़कर दूसरे पुष्पपर, एवं दूसरे पुष्पको छोड़कर तीसरे पुष्पपर, इसी प्रकार एक-एकको छोड़ता हुआ दूसरे-दूसरे पुष्पपर विहार किया करता है। अरे हरजाई! अर्थात् अनेकोंसे प्रेम करनेवाले भौंरे, मेरे सामने से हट जा, एवं जिन प्रियतमके गुणगान तू अपनी ध्वनिमें मुझे सुना रहा है, उसे जाकर कुब्जा आदिको सुनाकर उन्हें प्रसन्न कर। मथुरामें जैसा राजा है वैसी ही प्रजा भी हैं। अर्थात् श्यामसुन्दरकी तरह तेरा भी व्यवहार कपटमय ही है, किन्तु अब तू चाहे कितने ही उपाय क्यों न करे, मुझे ठग नहीं सकता। ''कृपालु'' कहते हैं कि अरे भौंरे! अन्धा भी एक बार ठोकर लग जानेपर फिर बड़ी ही सावधानी से पैर रखता है।

(२८)

भ्रमर! तू बृथा करत मनुहार।
जानि गई मैं भली-भाँति तोहि, मिठबोलनो लबार।
कपटपुरी बन गई मधुपुरी, बसत सबै ठगहार।
मृषा बदत सब वेद ब्रह्म को, करुणा को भण्डार।
प्रेमनगर को लूटि बनायो, कपटिन की चटसार।
अब 'कृपालु' लै जाहु और कहुँ, खोलहु कपट बजार॥

भावार्थ—श्रीवृषभानुनन्दिनी राधिकाजी अपने चरणोंपर गुनगुनाते हुए भौंरेको देखकर दिव्य उन्मादकी अवस्थामें भौंरेसे बात करती हुई श्यामसुन्दरका निमित्त लेकर उसे फटकारती हैं। राधिकाजी समझती हैं कि इस भौंरेको छलिया श्यामसुन्दरने मेरे पास मनानेको भेजा है।)

अरे भौंरे ! तू व्यर्थ ही छलिया श्यामसुन्दरकी आज्ञानुसार मुझे मनानेका प्रयत्न कर रहा है। मैं तुझे अच्छी प्रकार समझ चुकी हूँ कि तू केवल मीठी-मीठी बातें ही बनाना जानता है, वास्तविकता कुछ भी नहीं है। मथुरा तो श्यामसुन्दरके पहुँचते ही कपट की नगरी बन गई है, एवं उस नगरीमें कपटी लोग ही निवास करते हैं। श्यामसुन्दरको वेदोंने झूठे ही दयाका सागर बताया है। उस कपटीने तो प्रेमनगरको लूटकर उसे कपटका विद्यालय बना डाला है। "कृपालु" कहते हैं कि अरे भौंरे ! अब तू और कहीं जाकर अपने कपटका व्यापार कर, मैं तेरे कपटमें नहीं आ सकती। तेरा तथा उस छलियाका स्वरूप तथा कार्य एक-सा ही है।

(२६)

मुझ बिरहिनि को बिरह सतावे।
बिपति हमारी सुनु री सहेली,
पिय बिनु छिनहूँ चैन न आवे।
ज्यौं जल हीन मीन तन तलफै,
त्यौं पिवु बिनु पल कलप बिहावे !
प्रियतम प्राणनाथ मग जोहत
निशि-दिन नैनहुँ नीर बहावे।
कोउ तो हाय ! दया करि सजनी,
सुन्दर-श्याम सों आनि मिलावे।
आवें न आवें, अरी ! पिय सों कोइ,
मुझ बिरहिनि की बिथा सुनावे।
लोक-रीति समुझाउ 'कृपालुहिं',
अंतहुँ कन्त तो कण्ठ लगावे ॥

भावार्थ—(एक विरहिणी अपनी अन्तरंग सखीसे कहती है।)

अरी सखी ! मुझे प्रियतमका वियोग अत्यन्त ही दुःखदायी हो गया है। तू ही मेरी विपत्तिको सुन ! प्रियतमके बिना मुझे एक क्षणके लिए भी कहीं चैन नहीं मिलता। जिस प्रकार जलके बिना मछली तड़पती है, उसी प्रकार प्रियतम के बिना मुझे भी एक-एक क्षण कल्पके समान लग रहा है। प्राणेश्वर श्यामसुन्दरकी प्रतीक्षा करती हुई मेरी आँखें निरन्तर ही आँसू बहाती रहती हैं। हाय ! हाय !! कोई भी तो दया करके मुझे मेरे प्यारे श्यामसुन्दरसे मिला दे। यदि वह न आ सकें तो कम-सेकम मुझ विरहिणीकी विरह-वेदनाको ही जाकर कोई उन्हें बता दे। "कृपालु" कहते हैं कि कोई जाकर उनको यह सांसारिक नियम ही समझा दे कि अब मेरे प्राण निकल रहे हैं। बिदाईके समय लोकमें भी प्रियजन अवश्य मिलते हैं, इस समय तो लोक-रीतिके अनुसार ही एक बार मेरे प्रियतम मुझसे मिल लें।

(३०)

मैं कैसी करूँ ? मोंहि कछू न भाये।
पिउ आवन, मनभावन, पावन,
दृग सावन-ऋतु लाये।
रहि रहि हूक उठत हिय सजनी,
प्राण कंठ चलि आये।
उचकि, चौंकि चकि जकि सब यामिनी,
भामिनि जागि बिताये।
ऋतु-बसंत, शुक पिक, केकी धुनि,
उलटी मोंहि तड़पाये।
कब 'कृपालु' मोंहि रसिकशिरोमणि,
कर गहि कंठ लगाये॥

भावार्थ—प्रियतम श्यामसुन्दरके वियोगमें एक विरहिणी कहती है कि मैं क्या उपाय करूँ। प्रियतमके बिना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। उनके मधुर-मिलनका रसास्वादन करनेके लिए मेरी आँखोंने आँसुओंकी झड़ी लगा रखी है। अरी सखी ! थोड़ी-थोड़ी देरमें मेरे हृदयमें बार-बार हूक-सी उठा करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानों अब प्राण निकलना ही चाहते हैं। मैं सारी रात कभी उचकती हूँ, कभी चौंककर बैठ जाती हूँ, एवं कभी कुछ बकने लगती हूँ। इस प्रकार सारी रात जागकर ही बिता देती हूँ। मुझे वसंतऋतुके दृश्य एवं तोता, कोयल तथा मोरोंकी ध्वनि भी अत्यन्त व्याकुल बना देती है। "कृपालु" कहते हैं कि वह दिन कब आयेगा जब रसिकशिरोमणि प्यारे श्यामसुन्दर मेरा स्वयं हाथ पकड़कर मुझे अपने गलेसे लगायेंगे।

(३१)

रैन-दिन तलफि रहे दोउ नैन।
दृग बरसावत, दिवस बिताबत, तारे गिन गिन रैन।
कोटि-यतन करि करि हौं हारी, नेकु न आवत चैन।
हार-सिगार भार सम लागत, बिष सम सखियन-बैन।
काहू सों कछु कहत बनै नहिं, कहे बिनाहु सरै न।
करत 'कृपालु' विचार हार गये, हाथन चन्द दुरै न।।

भावार्थ—विरहिणी कहती है कि मेरी दोनों आँखें प्रियतम श्यामसुन्दरकी रूप-माधुरीके लिए निरन्तर तड़पती रहती हैं। सारा दिन आँसू बहाते हुए बीत जाता है, एवं सारी रात तारे गिनते हुए बीतती है। मैं करोड़ों प्रयत्न करके हार गई, किन्तु किंचित् भी चैन नहीं मिलता। समस्त आभूषण एवं शृंगारकी वस्तुएँ प्रियतमके वियोगमें भार-सी लगती हैं तथा अंतरंग सखियोंकी मधुर वाणी भी विषके समान प्रतीत होती है। यह ऐसी बात है कि न तो किसीसे कहते ही बनती है और न बिना कहे जी ही हल्का होता है। 'कृपालु' कहते हैं कि मैं तो अपनी पंडिताईसे विचार करते-करते थक गया,

किन्तु इसी निर्णयपर पहुँचा कि जिस प्रकार चन्द्रमा हाथोंसे नहीं छिपाया जाता, उसी प्रकार उमड़ता हुआ प्रेम भी प्रेमिकाके द्वारा अधिक देर तक छिपाया नहीं जा सकता ।

(३२)

रैन-दिन बिरहिनि तलफत जात ।
दई ! दई !! दइ !!! हाय ! हाय !! कहि,
पुनि पुनि अति अकुलात ।
कुंज-पुंज टेरत हेरत हरि,
सुन्दर श्यामल गात ।
तारे गिन गिन छिन छिन बितवति,
कालनिशा - सम रात ।
ग्रह-ग्रहीत जिमि नाचति गावति,
हँसति रुदति बतरात ।
बैरी बिरह 'कृपालु' लगायो,
प्राण लेन की घात ॥

भावार्थ—विरहिणी कहती है कि दिन एवं रात तड़पते हुए ही व्यतीत होती है । मैं बार-बार विरहमें व्याकुल होकर 'हाय दई ! हाय दई !! कह-कर आहें भरा करती हूँ । प्रत्येक कुंजमें अपने प्यारे श्यामसुन्दरको पुकारती हुई ढूंढ़ा करती हूँ । एक-एक क्षण तारे गिन-गिनकर कालनिशाके समान रात्रि व्यतीत करती हूँ । भूत लगे हुए के समान कभी नाचती हूँ, कभी गाती हूँ, कभी रोती हूँ, कभी हँसती हूँ एवं कभी अपने-आप ही प्रियतमसे उनके वियोग-में बातें किया करती हूँ । "कृपालु" कहते हैं कि इस विरहरूपी शत्रुने अब मेरे प्राण लेनेकी सोच ली है ।

(३३)

लखो जनि, कान्ह की मुसकान ।
जो चाहो भूतल पर अपनी, लोक आन अरु बान ।
लखर्ताहि बिधि-मर्याद वेद की, छूटि जाति कुल-कान ।
तर्क, बितर्क, कुतर्क आदि सब, बिलबिलात अभिमान ।
'हौं बड़' 'हौं बड़ बड़बड़ात जो, उड़त कपूर समान ।
'हौं अपराधी' 'कुटिल' 'नीच' इमि, कहि ढरिहौ अँसुआन ।
बिगरिय आपु बिगारिय औरहुँ, यह व्यापार न आन ।
हम 'कृपालु' जन्मांध भले अति, पंडित चतुर सुजान ।।

भावार्थ—एक विरहिणी श्यामसुन्दरके वियोगमें खीझकर सांसारिक जीवों को सावधान करती हुई कहती है कि अरे सांसारिक जीवो ! यदि तुम संसारमें अपनी लौकिक आन-बान रखना चाहते हो तो भूलकर भी श्यामसुन्दर-की मुस्कान न देखना, क्योंकि देखते ही वेदकी कही हुई वर्णाश्रम-व्यवस्थाकी मर्यादा एवं वंश-मर्यादा सभी-कुछ छूट जायगी। तुम जो स्वाभिमानपूर्वक भगवद्विषयोंमें तर्क ही नहीं वरन् वितर्क एवं कुतर्क तक करते रहते हो वह सब नष्ट हो जायगा। 'हम सबसे बड़े हैं, हम सबसे बड़े हैं', इस प्रकार जो सदा ही बड़बड़ाते रहते हो, वह सब उनको देखते ही कपूर के समान उड़ जायगा। अरे सांसारियो ! उस मुस्कानके देखनेपर तुम अपने-आपको अपराधी, कुटिल एवं नीच आदि कहते हुए आँखोंसे निरन्तर आँसू बहाओगे। इतना ही नहीं वरन् अपने-आप बिगड़कर फिर औरोंको भी विगाड़ोगे। बस यही तुम्हारा निरन्तर का कार्य हो जायगा। "कृपालु" अपने लिए कहते हैं कि हम तो अपने कुसंस्कारोंकी कृपासे अच्छा हुआ जो जन्मसे ही अन्धे हुए (जन्मान्धके लिए कुछ भी देखना असम्भव है), फिर साथ ही हम परम चतुर, ज्ञानी पंडित भी हैं।

(३४)

लगी री मोंहि, श्याम-दृगन की चोट।
पलक न हाय ! पलक दृग लागत, भये पलक ते ओट।
ब्याकुल बिनु अपराध प्रान भये, कीन दृगन ने खोट।
मिल्यौ जाय अब मनहुँ दृगन सों, तोरि कानि-कुल-कोट।
अब हौं बिलपति प्रति-कुंजन, उर, धरे बिरह की पोट।
तितनोइ खोट 'कृपालु' नन्दको, ढोटा, जितनोइ छोट ॥

भावार्थ—एक विरहिणी कहती है कि मुझे श्यामसुन्दरकी आँखोंकी चोटने घायल कर दिया है। अब उनके पलकोंसे ओट होतेही एक क्षणको भी चैन नहीं पड़ती, एवं आँखोंकी नींद भी चली गयी। यद्यपि लड़कपन या उद्दण्डता मेरी आँखोने ही की थी, मेरे प्राणोंका कोई भी दोष नहीं था। फिर भी 'और करे अपराध कोउ और पाव फलभोग' के अनुसार अब प्राण भी अत्यन्त व्याकुल हो रहे हैं। मनने भी प्राणोंसे विश्वासघात किया, एवं वंश-परम्पराके मर्यादा-रूपी किलेको तोड़कर आँखोंसे जा मिला। अब मैं हृदयमें विरहका बोझ लिए हुए, एवं प्रत्येक कुंजमें प्यारे श्यामसुन्दरसे मिलनके लिए विलाप करती हुई भटक रही हूँ। "कृपालु" कहते हैं कि हाय ! हाय !! यह नन्दका ढोटा जितना ही छोटा है उतना ही खोटा भी है।

(३५)

लाल को, जाल भली मैं जानी।
सुनु सखि तोंहि बताऊँ उनकी, सिगरी कपट कहानी।
तजि पितु मातु बन्दिगृह छल बस, बन्यौ पूत नँदरानी।
मोरपंख सिर भेद जनावत, 'अहि अहार, मधुबानी'।

गुंजमाल, बनमाल रूप-छल, महँगी कौड़ी कानी ।
तन घन बिच पटपीत न थिर रह, दामिनि गुन उनमानी ।
बिपुल छिद्र, छूछो हिय मुरली, जेहि सुनि हम बौरानी ।
किमि 'कृपालु' इमि प्रगट बखानत, निगम 'नेति' जेहि मानी ।।

भावार्थ—एक विरहिणी झुंझलाकर विनोदमयी कटूक्ति द्वारा कहती है कि अरी सखी ! मैं श्यामसुन्दरके जालको भली-भाँति जानती हूँ । अरी सखी ! मैं उनकी सारी ही कपटसे भरी हुई बातें बताती हूँ, सुन ! अवतार लेते ही माता-पितासे कपट करते हुए जेल छोड़कर यशोदाका पुत्र बन गया । अरी सखी ! उसके सिरपर मोरपंख यही तो भेद बताता है कि जैसे मैं (मोर) साँपोंको खाता हूँ किन्तु अत्यन्त ही मधुर बोलता हूँ, ठीक इसी प्रकार श्यामसुन्दर भी हैं । गुञ्जमाला एवं वनमाला भी देखनेमात्रके लिए ही हैं, उसका मूल्य एक कौड़ी भी नहीं । उसके शरीर-रूपी बादलपर फहराता हुआ पीताम्बर यही तो सिद्ध करता है कि चपलाके समान मेरी प्रीति भी चपल है । इसी तरह उसकी मुरली भी, जिसका हृदय छूछा है एवं जिसमें अनेकानेक छिद्र हैं, जिसे सुनकर हम दीवानी हो जाती हैं, श्यामसुन्दरका पूर्ण परिचय देती है । "कृपालु" कहते हैं कि जिसे वेदोंने 'नेति नेति' कहा है उसे दोषरूपमें क्यों प्रकट वर्णन करती है ?

(३६)

श्याम ! अब बेगि बचाओ जी ।
बिरह-दुशासन प्रान हरन चह, बसन बढ़ाओ जी !
बिरह-ज्वाल सों जरी जात हौं, धाइ बुझाओ जी !
कहा करूँ ? कित जाउं ? हाय ! मैं, तुमहिं बताओ जी !
अब तो प्राण चलन चह प्रियतम ! धीर बँधाओ जी !
जो 'कृपालु' पिय किय अबेर तो, जियत न पाओ जी !!

भावार्थ—एक विरहिणी कहती है कि हे प्राणाधार श्यामसुन्दर ! विरह-रूपी दुःशासन मेरा प्राण-रूपी वस्त्र खींच रहा है; अब आकर शीघ्र ही मेरी रक्षा करो। मैं विरहकी आगमें जली जा रही हूँ, दौड़कर तुरन्त आग वुझा दो। हे प्रियतम ! तुम्हीं बताओ कि तुम्हारे बिना मैं कहाँ जाऊँ और क्या करूँ ? अब तो मेरे प्राण निकलना ही चाहते हैं, किसी भी प्रकार धीरज बँधा दो। "कृपालु" कहते हैं कि हे प्राणेश्वर ! अब यदि देर करोगे तो मुझे जीवित न पा सकोगे।

(३७)

श्याम ! हौं योगिनि भेष बनैहौं।
लोक, वेद, कुल-कानि-आनि तजि, त्रिकुटी ध्यान लगैहौं।
जटाजूट निज शीश बँधैहौं, अँग विभूति लगैहौं।
कंथा पहिरि पाणि लै खप्पर, अनशन देह सुखैहौं।
धरि अवधूत स्वाँग जनु शंकर, घर घर अलख जगैहौं।
जो 'कृपालु' पिय तबहुँ न पैहौं, योग-अगिनि जरि जैहौं॥

भावार्थ—एक विरहिणी कहती है कि हे श्यामसुन्दर ! अब मैं तुम्हारे मधुर-मिलनके लिए योगिनिका वेष बनाऊँगी। लोक, वेद, एवं वंशकी समस्त आन-बानको छोड़कर त्रिकुटीके मध्यमें ध्यान लगाऊँगी। अपने सिरपर जटा-जूट बँधाऊँगी, एवं सारे शरीरमें भस्म लगाऊँगी। गुदड़ी ओढ़कर एवं हाथमें कमंडल लेकर बिना अन्न-जलके उपवास द्वारा अपने शरीरको सुखा दूँगी। मैं अवधूतोंकी तरह स्वाँग बनाकर शंकरजीके समान घर-घरमें 'अलख' 'अलख' का नारा लगाऊँगी। "कृपालु" कहते हैं कि इतना करनेपर भी यदि प्रियतम-को दया न आयेगी एवं वे दर्शन न देंगे, तब मैं योगकी अग्निमें जलकर भस्म हो जाऊँगी।

(३८)

श्रीराधे ! तोरे कौन बलाय लगी ?
चिबुक पानि धरि रहति बिसूरति, जनु पिय-प्रेम पगी।
सतराने, अलसाने नैना, जनु कहुँ रैन जगी।
छिन आँगन छिन बाहर भाजति, छिन जनु रहत ठगी।
प्रगटत सात्विक-भाव प्रेम-नदि, जनु अंबुधि उमगी।
कत 'कृपालु' यह भेद दुरावति ? हौं तो तोरि सगी ॥

भावार्थ—(प्रियतम श्यामसुन्दरके प्रेममें विभोर वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिकाजीसे उनकी एक परम अन्तरंग सखी पूछती है।)

हे किशोरीजी ! तुम्हें कौनसा रोग लग गया है ? तुम अपनी ठोढ़ीपर हाथ रखकर न जाने क्या चिंतन किया करती हो, मानों प्रियतमके प्रेममें उन्मत्त हो। तुम्हारी आँखें अत्यन्त ही मदभरी एवं संकोच से युक्त हैं, मानों रातभर जागरण किया हो। तुम क्षण-क्षणमें कभी आँगनमें, कभी बाहर पागल-सी घूमसी फिरती हो, पुनः उदासीन-सी होकर बैठ जाती हो। तुम्हारे शरीरमें आठों सात्विक भाव बार-बार प्रकट होते हैं, मानों प्रेम-रूपी नदी प्रेमास्पद-रूपी समुद्रकी ओर अत्यन्त ही वेग से जा रही हो। "कृपालु" कहते हैं कि हे किशोरीजी। यह अपना प्रेमका रहस्य मुझसे क्यों छिपा रही हो ? मैं तो तुम्हारी अन्तरंग सखी हूँ।

(३९)

सखी ! कोउ देउ बैद बुलवाय।
हिय बिच शोथ होत जनु हमरे, रहि रहि हाय ! पिराय।
हिरदय गति नित बढ़त जात, कोउ, हिय जनु सुई चुभाय।
सिगरो तन मम तपत विषम-ज्वर, रैन नींद न आय।

छिन छिन बाढ़त सब रुज सखि ! लखि, दृग पावस-ऋतु लाय।
एक व्याधि-वश नर मर आली ! हमरे अमित बलाय।
कत 'कृपालु' अकुलात अबहिं का ? आगे परी लखाय ॥

भावार्थ—(एक भोली-भाली विरहिणी श्यामसुन्दरके प्रेममें दीवानी, प्रेमको रोग समझकर अपनी सखीसे कहती है।)

अरी सखी ! मुझे कई शारीरिक कष्ट हैं अतएव कोई जाकर वैद्यको बुला दे। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे हृदयके अन्दर कोई फोड़ा हो रहा है, क्योंकि वह बार-बार पीड़ा करता है, तथा मेरे हृदयकी गति भी नित्यप्रति बढ़ती ही जा रही है। हृदयमें जैसे कोई सूई-सी चुभो रहा है। मेरा सारा शरीर विषमज्वर (मलेरिया) से तप रहा है, तथा रातमें नींद भी नहीं आती, आँखोंसे पानी निकलता रहता है, एवं प्रतिक्षण बढ़ता ही जा रहा है। अरी सखी ! एक रोगसे ही मनुष्य मर जाता है, मुझे तो अनेकों रोग हैं। "कृपालु" व्यंगभरे शब्दोंमें कहते हैं कि अरी प्रेम-रुग्ण सखी ! ये ऐसे रोग हैं कि अभी क्या हुआ है ? आगे-आगे मालूम पड़ेगा। इसके लिए श्यामसुन्दर ही जब वैद्य बनकर आवें तभी ये रोग जा सकते हैं।

(४०)

सखी ! तोय योग, बियोग, कि दोय ?
खान-पान कछु नेक न भावत, सिगरी रैन न सोय।
सजन-सनेही सकल जगत के, अरि सम दीखत तोय।
नासा-अग्र-भाग अवलोकत, सुधि-बुधि दीनी खोय।
मौन धारि बैठी जनु जग महँ, जड़, चेतन नहिं कोउ।
योगिनि और बियोगिनि दोउन, के यह लच्छन होय।
तू 'कृपालु' सखि ! इनमें को है ? साँचु बता दे मोय ॥

भावार्थ—एक सखी एक विरहिणीसे पूछती है कि तू अष्टाङ्ग-योग करनेवाली योगिनी है अथवा श्रीकृष्णप्रेमकी वियोगिनी है, या दोनों ही है। क्योंकि वे लक्षण तुझमें दिखाई पड़ रहे हैं जो योगिनी एवं वियोगिनी दोनोंमें ही होते हैं। तूने खाना पीना बिल्कुल छोड़ दिया है। सारी रात जागती ही रहती है; संसार के सम्बन्धी एवं कुटुम्बी सब तुझे दुश्मनके समान दिखाई पड़ते हैं। तू नासिकाके अग्र-भागमें देखती रहती है एवं अपनी देहकी सुधि-बुधि ही खो बैठी है। किसीसे भी न बोलती हुई मौन धारण करके पत्थरकी मूर्तिकी तरह बैठी रहती है, मानों तेरे लिए संसार ही नहीं है। उपरोक्त बातें योगी लोगोंमें भी होतीं हैं एवं श्रीकृष्णवियोगियोंमें भी होती हैं। अतएव "कृपालु" पूछते हैं कि अरी सखी ! तू मुझे सच-सच बता दे कि तू योगिनी अथवा वियोगिनी, इन दोनोंमें से कौन है ?

(४१)

सखी ! तोहि काउ की दीठि लगी।
अरुणारे अति नैन तिहारे, जनु कहुँ रैन जगी।
लोक, वेद, कुल कानि न मानत, नैनन लाज भगी।
कबहुँक रीझति खीझति कबहुँक, जनु कोउ ठगन ठगी।
कबहुँक अट्टहास करु आपुहि प्रेम-सिन्धु उमगी।
हम 'कृपालु' अब जानि गई तू, मोहन-प्रेम पगी॥

भावार्थ—(एक सखीका प्रियतमसे मधुर-मिलन, एवं दूसरी सखीके द्वारा रहस्योद्घाटन।)

अरी सखी ! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुझे किसी की नजर लग गयी है। संकेत यह है कि तेरी आँखें किसीकी आँखोंसे मिल गयी हैं। अरी सखी ! तेरी आँखें अत्यन्त ही मदसे युक्त लाल-लाल दिखाई पड़ रही हैं, जैसे तू कहीं सारी रात जागी हुई हो। तू लोक, वेद और वंशकी मर्यादाओंको भी छोड़

बैठी हैं, एवं तेरी आँखोंमें अब लज्जाका भी निवास नहीं है। अरी सखी ! तू कभी अकारण ही प्रसन्न दिखाई देती हैं एवं कभी अप्रसन्न दिखाई पड़ती है, जैसे कि तुझे किसी छलियाने अपने प्रेमसे छल लिया हो। कभी-कभी तो तू प्रेम-सिन्धुमें डूबती-उतराती हुई अत्यन्त ही उन्मत्तकी भाँति अपने-आप ही खिलखिलाकर हँसने भी लगतीं है। "कृपालु" कहते हैं कि इन सब लक्षणोंको देखकर मैं अब भली-भाँति समझ गई कि तू प्यारे श्यामसुन्दरके प्रेममें दीवानी हो गई है।

(४२)

सखी ! मैं सुनी कालि इक बात।
सखिन जूह जुरि-जुरि कालिन्दी, पुलिन रहीं बतरात।
एक सखी कह 'प्रान तजहु अब' मिलहिं न पिय किय घात।
अपर सखी कह "जब पिय सुनिहैं, तजि दैहैं निज गात"।
एक सखी पुनि यौं उठि बोली, "प्रान रहे केहि भाँत"।
अपर सखी कह "कोटि कल्प लौं, परखहु पद-जलजात"।
कह 'कृपालु' "ग्रीष्म-ऋतु बीते, आवति पुनि बरसात"॥

भावार्थ—(सखियोंके परस्पर किये हुए वार्तालापको सुनकर एक सखी दूसरी सखीसे कहती है।)

अरी सखी ! मैंने कल एक बात सुनी है। कल यमुनाके किनारे सखियोंका समुदाय इकट्ठा होकर परस्पर बातें कर रहा था। सर्वप्रथम एक सखीने समस्त सखियोंके समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि अरी सखियो ! अब हम सबको प्राण छोड़ देना ही उचित है, क्योंकि श्यामसुन्दरने विश्वासघात किया हैं, अब वे नहीं आयेंगे। दूसरी सखीने पहली सखी की बात काटते हुए कहा कि यह उचित नहीं हैं, क्योंकि जब हमारी मृत्युका समाचार प्रियतम पावेंगे तब वे भी अत्यन्त दुःखी होकर अपना प्राण छोड़ देंगे, अतएव अपने सुखके लिए प्रियतम-

को दुःखी करना यह प्रेमका लक्ष्य नहीं हैं। इसपर तीसरी सखीने कहा कि यह तो मैं भी जानती हूँ, पर यह बताओ कि किस प्रकार प्राण धारण करू ? इस पर चौथी सखीने कहा कि करोड़ों कल्प तक प्रियतमके दर्शनोंकी प्रतीक्षा करते हुए प्राण धारण करना चाहिए, क्योंकि निराशा प्रेमका स्वरूप नहीं है। प्राण तो कोई विरहिणी तब छोड़ना चाहेगी जब उसे प्रियतमके मिलनकी आशा ही न रह जाय। "कृपालु" समस्त सखियोंसे कहते हैं कि ऐ री सखियो ! चिन्ता मत करो ग्रीष्मऋतु-रूपी वियोगके बाद वर्षाऋतु-रूपी मधुर-मिलनका शुभागमन होगा ही।

(४३)

सखी ! मोहिं चन्द्रकिरन तड़पाय।
शशि अकाश बस, बास भूमि मम, तासों कछु न बसाय।
हरि अवतरि, खल बधत, तजत पै, सुत मानस मनभाय।
कहु चकोर ते 'करि अगस्त्य गुरु, इन किरनन पी जाय'।
राहु-केतु जुरवाउ जरा कहि, पुनि सो खाय पचाय।
यह 'कृपालु' खल-रीति पुरातन, जरे लोन भुरकाय॥

भावार्थ—(एक विरहिणी चन्द्रमाको कोसती हुई अपनी अंतरंग सखीसे कहती है।)

अरी सखी ! मुझे चन्द्रमाकी किरणें अत्यन्त ही कष्ट देती हैं। क्या करू ? मेरा कुछ वश नहीं है, क्योंकि मैं पृथ्वीपर रहती हूँ एवं वह आकाशमें रहता है। अरी सखी ! भगवान दुष्टोंको मारनेके लिए अवतार लिया करते हैं, किंतु इसे कदाचित् अपना मानसपुत्र समझकर छोड़ देते हैं। (वेदोंमें बताया गया है कि चन्द्रमा भगवान्के मनसे उत्पन्न होता है, एवं सूर्य नेत्रोंसे।) अरी सखी ! मेरा कुछ वश नहीं है। भगवान् पुत्र समझकर इसे नहीं मारते हैं तो ऐसी दशा में एक काम कर कि चकोर पक्षीके पास जाकर उससे कह कि वह अगस्त्यमुनि

के पास जाकर उनसे दीक्षा लेकर पान करनेकी विद्या सीख ले, तथा इस चन्द्रमा की समस्त किरणोंको पी जाय (अगस्त्य मुनिने एक बार सारा समुद्र पी डाला था), फिर झगड़ा ही समाप्त हो जाय। (थोड़ी देर सोचकर) किंतु वह पक्षी है, मनुष्य की बात कैसे समझेगा। अरी सखी! तू ऐसा कर कि तू जरा नामकी राक्षसीके पास चली जा एवं उससे कह कि वह राहु (बिना धड़का) एवं केतु (बिना सिरका) को फिरसे जोड़ दे ताकि चन्द्रग्रहणके समय राहु चन्द्रमाको खाकर पेटमें ही सदाके लिए पचा डाले। (जरा नामकी राक्षसीने ही शरीरके मध्य भागसे चीरे हुए एक विधवाके पुत्रको जोड़कर जरासन्ध नामक महान् दैत्य बना दिया था।) "कृपालु" कहते हैं कि अरी सखी! दुष्टोंका सदासे यह स्वभाव चला आया है कि वह दुःखी जीवोंको और भी दुःखी करते रहते हैं।

(४४)

सखी! यह बड़ अचरज मोंहि आवत।
रसिकन पिया-मिलनहूँ सों अति, मधुर बियोग बताबत।
मोरे मत यह दन्त-कथा सब, जरे लोर भुरकावत।
बिरहानलहूँ सों दावानल, अति लघु अनल जनावत।
नतु कत पिय मृत देखि समुद तिय, अपनो देह जरावत।
यह 'कृपालु' कछु अकथ कहानी, अनुभव-गम्य लखावत॥

भावार्थ—एक विरहिणी अपनी अंतरंग सखीसे कहती है कि हे सखी! रसिकलोग प्रियतमके वियोगकी मधुरताको मधुर-मिलनकी मधुरतासे भी अत्यन्त मधुर बतलाते हैं, यह सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। मेरे दृष्टिकोणसे तो यह रसिकों का वाक्य व्यँगरूपसे विरहिणियोंके जलेपर नमक लगानेके लिए ही है। मैं तो ऐसा समझती हूँ कि लोकमें प्रकट, स्थूल अग्निसे भी अत्यन्त अधिक ताप विरहकी अग्निमें होता हैं। इसका प्रमाण यह हैं कि

यदि ऐसा न होता तो सती स्त्री अपने पतिके मरनेपर विरहकी आगसे डरकर सहर्ष स्थूल आगमें जलकर अपने सतीत्वका परिचय क्यों देती ? "कृपालु" कहते हैं कि यह बात कहने-सुनने समझने-समझानेकी नहीं है । यह तो केवल अपने ऊपर बीतनेकी ही है, जिसे केवल विरहिणीका अनुभूत हृदय ही जानता है ।

(४५)

सखी ! ये दृग न दृगन सुख पाये ।

निरखत ही छबि नव-नीरद-तनु, आनँद-जल भरि आये ।
पुनि बिछुरत ही श्याम सुरति करि, दृग अँसुवन झरि लाये ।
दुहूँ भाँति पिय लखि न सकति तिय, बिनु देखे घबराये ।
बिधि बुधि गइ सठियाय हाय ! सो, अँखियन पलक बनाये ।
करि 'कृपालु' पिय दृगपट पलकनि, क्यौं न कपाट लगाये ? ।।

भावार्थ—(एक विरहिणी अपनी अंतरंग सखीसे कहती है ।)

अरी सखी ! इन आँखोंको देखने का सुख कभी न मिला । क्योंकि यह जब ही नवीन बादलोंकी कान्तिके समान चिन्मय देहवाले श्यामसुन्दरको देखती है, तभी इन आँखोंमें आनन्दके आँसू भर आते हैं जिससे श्यामसुन्दर नहीं देख पाती एवं श्यामसुन्दरके वियोगमें उनका स्मरण करके आँखोंमें जल भरा रहता है । अतएव इन आँखोंको प्रियतमके दर्शनका सुख कभी नहीं मिल पाता । इसके अतिरिक्त ब्रह्माकी बुद्धि भी भ्रष्ट-सी हो गयी जिसने आँखोंमें पलक बनाकर प्रियतमके मिलनेमें और भी एक व्यवधान-सा पैदा कर दिया है । "कृपालु" कहते हैं कि अरी सखी ! तू इस झगड़े में क्यों पड़ती है ? तू अपने प्रियतमको आँखोंके कमरेमें बन्द करके पलकोंके किवाड़ लगाकर नित्य ही मधुर-मिलनका अनुभव किया कर ।

(४६)

सखी ! शशि किरन अगिनि तनु लायो ।
नाम सुधाकर, काम दवाकर, किन गुरु तोंहि सिखायो ?
उदधि-निहित बड़वानल सों या, हालाहल सों पायों ।
गिरि मंदरगिरि चूर चूर तोंहि, कियो नांहि बचि आयो ।
पियत पयोनिधि ऋषि अगस्त्य कस, तोंहि न उदर पचायो ?
किमि "कृपालु" बड़वानल सम शशि, उदधि न उदर दुरायो ॥

भावार्थ—एक विरहिणी चन्द्रमाकी किरणोंसे व्याकुल होकर अपनी अंतरंग सखीसे कहती है कि अरी सखी ! इन चन्द्रमाकी किरणोंने तो मेरे सारे शरीरमें आग लगा दी हैं । अरे दुष्ट चन्द्रमा ! तेरा नामतो सुधाकर अर्थात् अमृतकी किरणोंको बरसानेवाला है, पर तेरा काम दवाकर अर्थात् आग बरसानेवाला है । यह निकृष्ट कार्य तुझे किस निकृष्ट गुरुने सिखाया है । समुद्रमें स्थित बड़वानल (पानीकी आग) से अथवा हालाहल (समुद्रसे निकला हुआ विष) से यह जलानेका काम सीखा है । अरे दुष्ट ! जब इन्द्रके वज्रके भयसे मंदराचल पर्वत समुद्रमें गिरा था, तब तू उससे दबकर चूर-चूर होनेसे क्यों बच गया ? अर्थात् अच्छा होता कि तू तभी नष्ट हो गया होता, अथवा, जब अगस्त्य मुनिने समुद्रका पान किया था तब भी तू उनके पेटमें क्यों नहीं पच गया । "कृपालु" कहते हैं कि सबसे बड़ी भूल समुद्रकी है जो उसने बड़वानलकी तरह चन्द्रमाको भी अपने भीतर ही नहीं रखा, वरन् समुद्र-मंथनमें चन्द्रमाको प्रकट कर दिया ।

(४७)

सखी ! हम इन पाँचन ते हारे ।
लोचन लखन कमल-लोचन चह, निशि-दिन बहत पनारे ।

रसना श्याम-नाम-रस चाखन, हित नित पियहिं पुकारे ।
दिव्य सुगन्ध हेतु जनु नासा, दीरघ श्वास निकारे ।
सुधा-मधुर-मधु पिय मुख बानी, सुनन श्रवन हठ डारे ।
रोम रोम चह परस पिया को, स्वेद, कम्प विस्तारे ।
अब 'कृपालु' की कौन सुनै, जब, पंच एकमत वारे ।।

भावार्थ—एक विरहिणी अपनी सखीसे कहती हैं कि अरी सखी ! मैं तो इन पांचों ज्ञानेन्द्रियोंसे हार चुकी । नेत्र कमलनयन श्यामसुन्दरको देखनेके लिए दिन-रात आँसुओंके पनारे बहाया करते हैं । रसना निरंतर ही श्याम नामका वास्तविक दिव्य रसास्वादन करनेके लिए प्रियतमकोही पुकारा करती है । मेरा शरीरका रोम-रोम प्रियतमके सुमधुर स्पर्शके हेतु स्वेद एवं कम्प प्रकट करता है । नासिका प्रियतमके चिन्मय देहकी दिव्य सुगन्धके लिए ही मानों लम्बी-लम्बी सासें निकालती रहती है और कान अमृतसे भी अत्यन्त मधुर प्रियतमके मुखकी वाणी सुननेके हेतु हठपूर्वक अड़े हुए हैं । "कृपालु" कहते हैं अब मेरी भला कौन सुनेगा, जब ये पांच ज्ञानेन्द्रिय-रूपी पंच एकमतवाले हैं । कलयुगमें तो बहुमत ही माना जाता है ।

(४८)

सखी ! ये कारे सब ठगहार ।
इत चातक अनन्य-रति घन उत, चपला संग बिहार ।
पिक निज सुत कागा घर राख्यौ, कपट-भेद उर धार ।
भ्रमर भ्रमत रस लेत रैन-दिन, विकसित कुसुम अपार ।
हम गोपिन को कियो बियोगिनि, दियो कूबरिहिं प्यार ।
अब 'कृपालु' पुनि पछिताने का ? जब बाजी गइ हार ।।

भावार्थ—एक विरहिणी प्यारे श्यामसुन्दरके वियोगमें खीझकर कहतीं है कि अरी सखी ! जितने भी लोग काले रंग के हैं वे सभी ठगने वाले होते हैं ।

अरी सखी ! देख, स्वातीके वादलोंका अनन्य-प्रेमी पपीहा तो इधर दिन-रात पी-पी की रटना लगाये रहता है, किन्तु फिर भी वह काला बादल उसकी उपेक्षा करता हुआ बिजली के साथ विहार करता है। कोयलको देख, वह भी काली है, अतएव हृदयमें महान् कपट रखकर अपने बच्चेको कौएके पास पालने-पोसनेके लिए रख आती है। भौंरेको देख, वह भी काला है अतएव स्वार्थमयी भावनासे अनंतानंत फूलोंका रस लेता हुआ पिछले रस लिये हुए फूलोंको सदा ही छोड़ता जाता है अर्थात् वह किसी भी फूलसे प्रेम नहीं करता। ठीक इसी प्रकार यह काला (श्यामसुन्दर) हम गोपियोंको वियोग देकर मथुरामें कुब्जासे प्रेम कर रहा है। "कृपालु" कहते हैं कि अब पछतानेसे क्या होता है, जबकि दाँव पहले ही हार चुकी। अर्थात् अब तो उसी कालेसे तेरा स्वार्थ सिद्ध होगा, उसकी निन्दा क्यों कर रही है ?

(४६)

सताये शशि सिगरी निशि हाय ।
रत्नाकर-कुल-कानि आनि तजि, शिव-सिर-थितिहुँ लजाय।
बिरहिणी-बध-कुकलंक अंक धरि, निशि मयंक मुसुकाय ।
करत कुमुदिनी तप जल बिच जो, तेहि शठ दूरि बसाय ।
कोटि-हलाहल गरल उग्रतर, शशि बिष मोंहि जनाय ।
ताही सों 'कृपालु' डरि शंकर, शशि निज शीश चढ़ाय ।।

भावार्थ—एक विरहिणी चन्द्रमाको कोसती हुई कहती है कि हाय ! हाय !! यह चन्द्रमा तो मुझे सारी रात दुःख देनेपर तुला हुआ है और मुझे जला रहा हैं। संसारमें दुष्टता यातो कुल-परम्परासे होती है या संगसे होती है, किन्तु इस चन्द्रमाका तो कुल भी रत्नाकर अर्थात् समुद्र है और इसका संग भी भगवान् शंकरका ललाट है, फिर यह ऐसा जलानेका कुत्सित कार्य क्यों करता है ? यह चन्द्रमा ऐसा निर्लज्ज है कि विरहिणियोंकी हत्याका कलंक

कालिमा-रूपसे अपने हृदयमें रखकर रातमें समस्त संसारके समक्ष मुस्कराता है, एवं उसकी प्रेमिका कुमुदिनी जो उसके लिए निरंतर जलमें निमग्न होकर तपस्या करती है, उसको इस दुष्टने अपनेसे बहुत दूर कर रखा है। मेरी समझसे तो चन्द्रमाके विषका ताप शंकरजीके द्वारा पीये हुए हलाहलसे भी अत्यन्त तेज है। "कृपालु" कहते हैं कि इसीसे तो भगवान् शंकर हलाहल विषको पी गये परन्तु इस चन्द्रमा-रूपी विषको डरके मारे अपने सिरपर ही धारण कर रखा है।

(५०)

हमारो जीवन-धन घनश्याम।
भली बुरो जैसी हूँ पी की, कहा और सों काम ?
सुरति साँवरी कबहुँ न बिसरति, पल छिन आठो याम।
भुक्ति, मुक्ति तजि दुहुँनि पिशाचिनि, गावत पिय-गुन-ग्राम।
करम-कीच अरु योग-रोग तजि, लियो प्रेम बिनु दाम।
अस 'कृपालु' रस तजि ज्ञानिन को, भयो बिधाता बाम।।

भावार्थ—एक विरहिणी कहती है कि हमारे तो जीवनके सर्वस्व एकमात्र श्यामसुन्दर ही हैं। मैं भली-बुरी जैसी भी हूँ, उन्हींकी हूँ। मेरा संसारसे क्या स्वार्थ होगा ? श्यामसुन्दरकी रूप-माधुरीका मैं दिन-रात आठों-पहर निरंतर चिंतन करती रहती हूँ। वह छवि एक क्षणको भी नहीं भूलती। संसारके सुख एवं मोक्ष इन दोनों ही डाकिनियोंको छोड़कर एकमात्र प्रियतमके गुणोंको गाया करती हूँ। कर्मकांड-रूपी कीचड़ एवं योग-रूपी रोगका सर्वथा परित्याग करके बिना मूल्यके ही अमूल्य प्रेम प्राप्त कर लिया है। "कृपालु" ज्ञानियोंपर तरस खाते हुए कहते हैं कि वे कितने अभागे हैं जो ऐसे मधुर-रसको छोड़कर निरंतर ही नीरस ब्रह्म-ज्ञान-रसमें भटक रहे हैं। उन्हें उन ब्रह्म-ज्ञानियोंके सिरमौर भगवान् शंकर, सनकादिक, जनकादिक,

शुकादिकोंसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए जो अपने नीरस ब्रह्म-ज्ञानको छोड़कर सगुण-साकार सरस-प्रेम रसके दीवाने बन गये हैं।

(५१)

हमारो सहज सनेही श्याम।
दृग अँसुवन सों पोय हार नित, पहिरावत उर-धाम।
ललित-त्रिभंग अनंग-विमोहन, सुमिरति आठो याम।
रसना सों निसि-वासर छिन छिन, गावति हरि-गुन-ग्राम।
श्रवन सुनत नित प्रियतम-चरचा, सुधा-मधुर-मधु-नाम।
हम 'कृपालु' उनके, वे मेरे, कहा जगत सों काम ?॥

भावार्थ—एक विरहिणी कहती है कि हमारे तो श्यामसुन्दर स्वभावसे ही प्रेमी हैं, अर्थात् उनसे बिना प्रेम किये मुझसे रहा नहीं जाता। मैं अपने प्रियतमको निरंतर ही आँसुओंकी मालाएँ गूंथ-गूँथकर, अपने हृदयके ऊपर जिसमें प्रियतमका निवास है, पहनाया करती हूँ। (दोनों आँखोंसे आँसू बहकर दो धाराओंमें होते हुए वक्षस्थलके बीचमें जाकर मिल जाते हैं, जिससे एक मालाका स्वरूप बन जाता है।) ग्रीवा, कमर एवं पैर तीनों जगहसे ठेढ़े अनन्त-कोटि कामदेवोंको मोहित करनेवाले श्यामसुन्दर का आठों पहर स्मरण किया करती हूँ, एवं वाणीसे दिन-रात प्रतिक्षण उन्हींके गुणोंको गाया करती हूँ। "कृपालु" कहते हैं कि वे हमारे 'प्रियतम' हैं और मैं उनकी 'प्रेयसी' हूँ, संसार से मुझे क्या लेना देना है?

(५२)

हाय दई ! यह कैसी भई री।
केहि बिधि ? कासों ? कहूँ आपनी, जार प्रेम की बात नंई री।
देखन को छोटा अति खोटा, नन्द-ढोटाहि ठगाय गई री।

भई लटू मैं भटू पटू ह्वै, नेकु हँसनि मन बेच दई री।
पलक शब्द बिपरीत भयो अब, विष-बेलरि उर माहिं बई री।
सिगरो जग सूनो सो दीखत, विरह घटा नैनन उनई री।
यह 'कृपालु' पिय प्रेम विषामृत, परम चतुर दै शीश लई री।।

भावार्थ—एक विरहिणी एक सखीसे कहती है कि हाय ! यह तो बड़ा ही बुरा हुआ। अब इस परपुरुष-रूप श्यामसुन्दके प्रेमकी बातको किस प्रकार किसीसे कहूँ। देखनेमैं तो वह नन्दका लाल छोटा ही है, किन्तु वह इतना खोटा है कि मुझ अत्यन्त चतुरको भी ठग लिया। अरी सखी ! मैं चतुर होते हुए भी थोड़ी-सी मुस्कानके ऊपर अपने मनको वेचकर उसपर दीवानी हो गयी। अब हमारे लिए एक-एक पल कल्पके समान हो गया है (पलक शब्दका उल्टा कलप) एवं हृदय में विरहकी विष-वेल फैल गयीं है। मुझे सारा संसार शून्य-सा प्रतीत होता हैं, एवं विरहके बादल आँखोंसे आँसू बरसा रहे हैं। ''कृपालु'' कहते हैं कि अरी सखी ! यह विष एवं अमृतसे मिला हुआ प्रेम जो तुझे मिला है वह बड़े-बड़े ज्ञानियोंके लिए भी दुर्लभ है। इसको पानेके लिए तो अत्यन्त ही चतुर अपना शीश प्रदान करते हैं।

(५३)

हाय ! मोरा, पिय बिनु जिय घबराये।
बरसों बीत गये गये घर सों, परसों कितक बिहाये।
कहँ लौं मन समुझाउँ सखी ! जब, मनहूँ भये पराये।
सुधा समान बैंन सखियन के, विष सम मोंहि जनाये।
छिन आँगन छिन बाहर भाजति, कितहूँ चैन न आये।
कबहूँ तो 'कृपालु' पिय हिय हूँ, 'हाय !' लगेंगी जाये।।

भावार्थ—(जब श्यामसुन्दर गोपियोंको छोड़कर मथुरा चले गये तब एक विरहिणी अपनी विरह-व्यथाको अपनी अन्तरंग सखीसे बताती हैं।

हाय सखी ! मेरा मन प्रियतम श्यामसुन्दरके बिना अत्यन्त ही घवड़ा रहा है। अरी सखी ! उन्होंने कहा था कि परसों ही आ जायेंगे, किन्तु बरसों बीत गये उनका अभीतक परसों नहीं समाप्त हुआ। अरी सखी ! अपने मनको किस प्रकार एवं कहाँतक समझाऊँ और अगर समझाऊँ भी तो वह भी तो उन्हींके पास चला गया है, फिर हमारी बात मन समझ ही कैसे सकता है ? मेरी परम अंतरंग सखियोंके अमृततुल्य मीठे वचन भी मुझे विषके समान प्रतीत हो रहे हैं। मैं क्षण-क्षणमें कभी घरमें आती हूँ कभी 'प्रियतम आते होंगे', इस आशामें भागती हुई घरके बाहर जाती हूँ, किन्तु कहीं भी चैन नहीं मिलता। "कृपालु" कहते हैं कि अरी विरहिणी। तू घवड़ा मत, कभी तो प्यारे श्यामसुन्दरके हृदयमें तेरी यह 'हाय ! हाय !' की ध्वनि अवश्य ही प्रभाव डालेगी एवं उन्हें विवश होकर आना पड़ेगा।

(५४)

हाय ! मोंहि पिय बिनु कछु न सुहाय।
मंद मंद मुसकान कान्ह की, रोम रोम रहि छाय।
बनत न भनत अनत इन बातन, जात न नात दुराय।
खोई खोई सी मोंहि लखि सखि, पूछति मृदु मुसुकाय।
इत हौं लाजन मरी जात, उत, बिरहा गाज गिराय।
अब 'कृपालु' पिय कल कहँ जिय कहँ, जब हिय गयो हिराय॥

भावार्थ—हाय ! हाय !! प्रियतम के बिना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। प्यारे श्यामसुन्दरकी मन्द-मन्द मुस्कान मेरे रोम-रोममें समा गयी है। न तो इन बातोंको किसीसे कहते ही बनता है और न उसका प्रेम ही छुपाते बनता है। मुझे खोई-खोई-सी देखकर सखियां मुस्करा-मुस्कराकर पूछती हैं—ए री सखी ! तुझे आजकल क्या हो गया है ? इधर तो मैं लज्जाके मारे मरी जाती हूँ, उधर वियोगका दुःख वज्रपातके समान कष्ट दे रहा है।

"कृपालु" कहते हैं कि हे प्रियतम ! अव तो मुझे एक क्षणके लिए भी चैन नहीं है क्योंकि मेरा हृदय ही तूने हर लिया है ।

(५५)

हो रसिया ! कस सुरति बिसारी ?
लोक, वेद, कुल कानि आनि सब,
तजि आई पिय शरण तिहारी ।
मग जोहत अँखियाँ पथराईं,
हारी हेरि बिपिन बनवारी ।
तारे गिनत जात सब यामिनि,
पलक एक युग सम लग भारी ।
निर्मोही कस मोहि मोहि अब,
तड़पावत बेपीर मुरारी ।
जियन न देत, लेत नहिं प्रानहुँ,
दुहूँ भाँति अति बिपति हमारी ।
अब 'कृपालु' मो कहँ तजि माधव,
कूबरि बरि, निज करि, उर धारी ॥

भावार्थ—(एक विरहिणी प्रियतम श्यामसुन्दरके वियोगमें विलाप करती हुई कहती है ।)

हे रसिकशिरोमणि श्यामसुन्दर ! तुमने मेरी सुधि क्यों भुला दी है ? मैं तो लोक, वेद एवं कुलकी मर्यादा आदि सब-कुछ छोड़कर तुम्हारी शरणमें

आयी हूँ। हे श्यामसुन्दर ! तुम्हारी प्रतीक्षा करते-करते मेरी आँखें पथरा गयीं एवं बन-बनमें तुम्हें ढूंढ़कर मैं हार गयी। हे प्रियतम ! तुम्हारे बिना तारे गिन-गिनकर सारी रात बिताती हूँ, एवं एक-एक क्षण युगके समान भारी लगता है। हे निष्ठुर श्यामसुन्दर ! तूने मुझे मोहित करके अब क्यों तड़पानेकी ठानी है ? अरे बेपीर ! तू न तो चैनसे जीने ही देता है और न प्राण ही लेता है। दोनों ही प्रकारसे मुझे महान् कष्ट है। "कृपालु" कहते हैं कि अबतो श्यामसुन्दरने मुझे छोड़कर कुब्जाका वरण करके एवं उसे अपनी बनाकर, अपने हृदयमें रख लिया है, इससे मुझे भूल गये।

G. NO 813

प्रेम रस मदिरा

अन्य प्रकाशित ग्रन्थ

प्रेम-रस-सिद्धान्त

प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ भाग

(अर्थ सहित)